बिड़ला ग्रंथमाला—४

छिताईवार्ता

(नारायणदास कृत)

संपादक

डा० माताप्रसाद गुप्त

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

सं० २०१५

जिसके

गुरु ऋण से

मैं

कभी मुक्त नहीं हो सकता हूँ

उस

प्रयाग विश्वविद्यालय

के

प्रतीक स्वरूप

उसके सुयोग्य उप कुलपति

डॉ० श्री रञ्जन

को

साभार और सस्नेह समर्पित

राजा बलदेवदास बिड़ला

राजा बलदेवदास बिड़ला-ग्रंथमाला

प्रस्तुत ग्रंथमाला के प्रकाशन का एक संक्षिप्त-सा इतिहास है। उत्तर प्रदेश के राज्यपाल महामहिम श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी जब काशी नागरीप्रचारिणी सभा में पधारे थे तो यहाँ के सुरक्षित हस्तलिखित ग्रंथों को देखकर उन्होंने सलाह दी थी कि एक ऐसी ग्रंथमाला निकाली जाय जिसमें सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण ग्रंथ मुद्रित कर दिए जायँ। बहुत अधिक परिश्रमपूर्वक संपादित ग्रंथ छापने के लोभ में पड़कर अनेकानेक महत्वपूर्ण ग्रंथों को अमुद्रित रहने देना उनके मत से बहुत बुद्धिमानी का काम नहीं है। उन्होंने सलाह दी कि ये पुस्तकें पहले मुद्रित हो जायँ फिर विद्वानों को उनकी सामग्री के विषय में विचारने का अवसर मिलेगा। सभा के कार्यकर्ताओं को राज्यपाल महोदय की यह सलाह पसंद आई। हीरक जयंती के अवसर पर सभा ने जिन कई महत्वपूर्ण कार्यों की योजना बनाई उनमें एक ऐसी ग्रंथमाला का प्रकाशन भी था। सभा का प्रतिनिधि मंडल जब इन योजनाओं के लिये धन संग्रह करने के उद्देश्य से दिल्ली गया तो सुप्रसिद्ध दानवीर सेठ घनश्यामदास जी बिड़ला से मिला और उनके सामने इन योजनाओं को रखा। बिड़ला जी ने सहर्ष इस प्रकार की ग्रंथमाला के लिये २५०००) रु० की सहायता देना स्वीकार कर लिया। इस कार्य के महत्व का उन्होंने तुरंत अनुभव कर लिया और सभा के प्रतिनिधिमंडल को इस विषय में कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं हुई। बिड़ला परिवार की उदारता से आज भारतवर्ष का बच्चा-बच्चा परिचित है। इस परिवार ने भारतवर्ष के सांस्कृतिक उत्थान के लिये अनेक महत्वपूर्ण दान दिए हैं। सभा को इस प्रकार की ग्रंथमाला के लिये प्रदत्त दान भी उन्हीं महत्त्वपूर्ण दानों की कोटि में आएगा। सभा ने निर्णय किया कि इन रुपयों से प्रकाशित होनेवाली ग्रंथमाला का नाम श्रीघनश्यामदास जी बिड़ला के पूज्य पिता राजा बलदेवदास जी बिड़ला के नाम पर रखा जाय और इसकी आय इसी कार्य में लगती रहे।

—०—

परिचय

साहि छिताई को लै जाइ।
बिहना फूल्यौ अंग न माइ ।।※

लिखते हुए केशवदास (सं० १६१२–१६७४ वि०) ने हमारे लिए यह प्रमाण प्रस्तुत कर दिया कि जिस समय वे वीरसिंहदेव-चरित की रचना कर रहे थे उस समय भी लोक में 'छिताई' संबंधी ऐतिहासिक वृत्त विख्यात था और इतना अधिक विख्यात था कि संकेतमात्र से लोग समझ जाते थे। उक्त ऐतिहासिक घटना की ख्याति इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि जैसे भुनी मछली के पुनः उछल कर पानी में जा पड़ने की बात सुनते ही लोग समझ जाते थे कि प्रसंग राजा नल की कहानी का है उसी प्रकार किसी राजा के पतित होने और उसके परिवार वालों के उसके विरुद्ध हो जाने का संकेत पाते ही लोगों का ध्यान बरबस देवगिरि के राजा रामदेव द्वारा अलाउद्दीन खिलजी को अपनी पुत्री प्रदान कर अपनी जान बचाने की कथा की ओर चला जाता था।

※ लोभ उवाच—

सुनु दान, जिते नर दाता भए। तिनकों मैं दीरघ दुख दए॥
साधु सर (?) सब परम निसंक। मैं जत कियो राज ते रंक॥
मंत्री मित्र सत्रु ह्वै गए। जात हथ्यारन हाथन लए॥
दह पारीं भूँजी माछरी। कहूँ पुत्र कहुँ कामिनी करीं॥

छंद ३५–३६

दान उवाच—

दमयन्ती राजा नल बरे। देव अदेव सबै परिहरे॥
इहि दुख देवन कीनो कोह। नल दमयन्ती भयो बिछोह॥
तू बपुरा को दुख दे सकै। कैसे पंगु सिंधु को नकै॥
साहि छिताई को ले जाइ। बिहना फूल्यौ अंग न माइ॥

छंद ३८, ३९।

—वीरसिंहदेव चरित

इस सिलसिले में ध्यान देने योग्य बात केवल इतनी ही है कि दानियों को दुख देने की अपनी क्षमता का उल्लेख करते हुए लोभ किसी का नाम नहीं लेता। केवल इतना ही कहता है कि मैंने राजा को रंक के समान पतित कर दिया। उसके मित्र और मंत्री तक उसके शत्रु बन बैठे और उन्होंने उसके विरुद्ध शस्त्र भी ग्रहण किया।

आगे चलकर 'लोभ' उसी प्रवाह में यह भी कह जाता है कि मैंने भुनी हुई मछली को पुनः पानी में डाल दिया। स्त्री को कहीं और पुत्र को कहीं फेंक दिया। 'लोभ' के उक्त दर्प का उत्तर देते हुए 'दान' लोक में प्रचलित इस कथन के आधार पर कि 'राजा नल पर विपदा परी-भूंजी-मछरी दह में गिरी,' मछली का संकेत पकड़ कर कहता है कि नल पर जो विपत्ति पड़ी वह तेरे कारण नहीं, प्रत्युत सुरासुर की उपेक्षा कर दमयंती ने राजा नल को वर लिया था। फलतः देवगण दुखी होकर क्रुद्ध हुए और इसीलिये नल दमयंती में वियोग हुआ। तू बेचारा किसी को क्या दुख दे सकता है? कहीं पंगु भी समुद्र लाँघ सकता है?

अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट संकेत का स्वभावतः पहले ही उत्तर देने के बाद 'दान' को लोभ का वह संकेत याद आता है जिसमें उसने राजा को रंक के समान पतित करने और उसके परिजनों को उसका विरोधी बनाने का दावा किया था। तब तुरत ही दान यह भी समझ लेता है कि जैसे 'लोभ' के कथन का उत्तरार्द्ध नल की ओर संकेत करता है, वैसे ही उसके पूर्वार्द्ध का संकेत देवगिरि के राजा रामदेव की ओर है जिसकी दरियादिली का उल्लेख प्रस्तुत छिताई वार्ता में भी अनेक स्थलों पर मिलता है। जैसे किसी रंक की पुत्री को कोई बलशाली छीन ले और वह बेचारा समाज में पतित होकर रह जाय वैसी ही स्थिति अलाउद्दीन को पुत्री देने के कारण अपने समाज में देवगिरि नरेश रामदेव की हुई होगी और वह पतित भी माना जाता रहा होगा। इसलिये उसके मंत्री और मित्र भी उससे विमुख होकर विद्रोही हुए होंगे। ऐतिहासिक तथ्य है कि रामदेव का पुत्र भिल्लम तक उसका विद्रोही बन बैठा था।*

---

* रामदेव ने सुलतान के पास सूचना भेजी कि भिल्लम ने सुल्तान का विरोध आरंभ कर दिया है और मुझे भी उसके कारण विशेष कष्ट है। मैं कभी भी अपने बचन से न फिरूँगा। यदि सुलतान अपना कोई दास इस ओर

इस प्रकार संकेत मात्र से ही केशव के काल तक लोगों का ध्यान जिसकी ओर तत्काल चला जाता था उसी छिताई को आगे चलकर लोग इस प्रकार भूल गए कि वीरसिंह देवचरित की जो मुद्रित प्रति नागरी-प्रचारिणी सभा के आर्यभाषा पुस्तकालय में हैं उसमें छिताई के संबंध में पाद टिपप्नी में केवल यह लिखा गया है कि 'एक सुंदर स्त्री जिसे मुसलमान बादशाह ले गया था।'

आगे चलकर जायसी ग्रंथावली का संपादन करते समय 'बादशाह चढ़ाई खण्ड' में रतनसेन और राघवचेतन के संवाद के प्रसंग में जब यह चौपाई आई कि 'बोलु न राजा आपु जनाई, लीन्ह देवगिरि और छिताई' तो आचार्यवर रामचंद्र शुक्ल ने पादटिप्पनी में लिखा कि 'छिताई—कोई स्त्री (?)।' कोई स्त्री के आगे कोष्ठक में लगा हुआ प्रश्नवाचक चिह्न संभवतः यही संकेत करता है कि आचार्य शुक्ल जी को यह संदेह था कि छिताई किसी स्त्री का नाम है अथवा देवगिरि की तरह किसी दूसरे भूखंड का नाम।

संवत् १८८१ में ग्वाल कवि ने हम्मीर हठ नामक एक काव्य लिखा जो अप्रकाशित, अपूर्ण और कुछ अश्लील भी है। इस काव्य में उन्होंने अलाउद्दीन की एक मरहट्टी* बेगम का उल्लेख किया परंतु उस मरहट्टी

भेज दे तो षड्यंत्र का अंत हो जायगा। सुलतान ने यह सुनकर मलिक नायब को उससे युद्ध करने के लिए भेजा।...भिल्लम को सेना के पहुँचने की सूचना मिली। भिल्लम, राघव तथा रामदेव शाही सेना को देखकर बड़े घबड़ाए। सेना ने शहर में लूटमार आरंभ कर दी। राय को समस्त धन संपत्ति के साथ सुलतान की सेवा में भेज दिया। सुलतान ने राय का आदर सम्मान किया और उसे दो लाख सोने के तनके प्रदान किये। उसकी पदवी रायरांया निश्चित की और उसे देवगीर वापस जाने का आदेश दे दिया।

—'खिलजीकालीन भारत' में फुतुहुस्सलातीन का अनुवाद
(डा० सैयद अब्बास रिजवी)

* लिए संग बेगम सबै बादशाह सिरताज।
मारत फिरै शिकार बन साजै सस्त्र समाज॥

बेगम का नाम नहीं दिया। अर्थ यह कि उस समय तक उसका नाम लोगों की स्मृति से उतर गया था और केवल यह ऐतिहासिक तथ्य स्मरण रह गया था कि अलाउद्दीन की कोई बेगम मरहट्ठी भी थी।

संवत् १९०२ वि० में अर्थात् आज से प्रायः ११३ वर्ष पूर्व चंद्रशेखर वाजपेयी ने भी हम्मीर हठ[1] काव्य लिखा। उससे विदित होता है कि ग्वाल की तरह वाजपेयी जी को भी यह तो ज्ञात था कि अलाउद्दीन की कोई बेगम मरहट्ठी भी थी परंतु उसका ठीक नाम वे भी न जानते थे[2]।

उक्त हम्मीर हठ के संपादक श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' को भी मरहट्ठी बेगम ने उलझन में डाला। 'बेगम महति मरहट्ठी' पर टिप्पनी करते हुए उन्होंने लिखा कि 'मरहठी बेगम से यदि कमलादेवी समझें तो कालविरुद्ध पड़ता है, क्योंकि कमलादेवी रणथंभगढ़ की लड़ाई के पश्चात् पकड़ी गई थी। पर यह संभव है कि अलाउद्दीन बादशाह होने के पहले दक्षिण गया था तब कोई सुंदर मरहठी स्त्री वहाँ से लाया रहा हो और उसने उसे अपनी बेगम बना लिया हो।'

यों ठोस प्रमाणों के अभाव में 'रतनाकर' जी केवल अनुमान करके रह गये। परंतु उनका उक्त अनुमान भी वास्तविकता के कितने समीप पहुँच गया है यह वर्तमान काल में प्राप्त सामग्रियों के आधार पर सर्वथा स्पष्ट

बादशाह ने यह कही नवला अधिक अनूप।
मरहट्ठी बेगम कहैं ताको नाम स्वरूप॥
तब मरहट्ठी मृग पर धाई। चढ़ी तुरी मनु रूप निकाई॥

१—कर नभ रस अरु आत्मा, संवत् फागुन मास।
कृष्ण पच्छ तिथि चौथ रबि, जेहि दिन ग्रंथ प्रकास॥
(हम्मीर हठ)

२—खेलत सिकार झारखंड में अलाउदीन,
मारत मृगनि मृगनैनी लिए संग में।
बेगम महति मरहट्टी माहताब जैसी,
जागति जुन्हाई जाके जोबन तरंग में॥
—छंद २६ (हम्मीर हठ)

है। चंद्रशेखर कवि भी मरहठी बेगम का नाम इसीलिए नहीं दे सके क्योंकि उन्होंने किसी इतिहास ग्रंथ के आधार पर हम्मीर हठ की रचना न कर पटियाला नरेश के महल में बनी हुई चित्रावली के आधार पर की थी।[१] इसीलिए उनके काव्य में इतिहास इतना अधिक विकृत हो गया है कि जो देवल देवी गुजरात के राय कर्ण की पुत्री थी उसकी मांग अलाउद्दीन हम्मीर देव से करता है।[२]

इस प्रसंग में एक कौतूहलजनक बात यह भी है कि जोधराज ने अपने हम्मीर रासो[३] में अलाउद्दीन की देवल देवी संबंधी माँग के उत्तर में जैसे आगे चलकर चंद्रशेखर ने हम्मीर द्वारा मरहट्ठी बेगम की मांग करायी ठीक वैसे ही उनके प्रायः दो सौ वर्ष पूर्व 'चिमना' बेगम की मांग कराई। ध्यान[४] देने की बात यह है कि 'चिमणा' मराठी भाषा का शब्द है और गौरैया पक्षी के लिये प्रयुक्त होता है। नर को चिमणा और मादा को चिमणी कहते हैं। जोधराज ने संभवतः 'स्त्रियाम् टाप्' के आधार पर चिमणा ही रहने दिया है।

१—यह हम्मीर को रायसौ, चित्र लिख्यो लखि सार।
छंद बंद सेखर कियौ, निजमति के अनुसार॥
—छंद ३६८ (हम्मीर हठ)

२—सुनि कियौ कोप अलाउदीन। मोल्हन बुलाइ यह हुकुम कीन।
चढ़ि तू तुरंत रणथंभ जाइ। हम्मीर देव चहुआन राइ।
कहियौ बुझाइ गढ़वी गँवार। मत हो पतंग पावक मंझार॥८१॥
महिमा मंगोल दीजै निकारि। पुनि सहित दंड देवल कुमारि।
दीजै तुरंत दिल्ली पठाइ। × × × ॥८२॥
—हम्मीर हठ

३—चंद्रनागवसु पंच गिनि संवत माधवमास।
सुक्लसुतृतिया जीवजुत ता दिन ग्रंथ प्रकास॥
(सं० १७८५ वैशाख शुक्ल द्वितीया गुरुवार)

४—मैं हमीर चहुँवान साह सौं हम कछु चाहैं
चिमना बेगम एक और चिंतामनि साहैं
पाइक्क च्यारि पीरांसहित
कहत राव ये दिज्जिये।

इस प्रकार परवर्ती काल में छिताई की जो कथा सर्वथा विस्मृत कर दी गई वह सोलहवीं शताब्दी तक इतनी प्रसिद्ध रही थी कि अनेक कवियों ने या तो उस पर स्वतंत्र काव्य रचनाएँ कीं या अपनी अन्य रचनाओं में संदर्भ रूप से उसका उपयोग किया। संदर्भ रूप से उपयोग करनेवालों में मलिक मुहम्मद जायसी और आचार्य केशवदास का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। स्वतंत्र रूप से छिताई के संबंध में काव्य रचना करनेवालों में कम से कम तीन कवि अर्थात् नारायणदास, रतनरंग और जान कवि दिखायी पड़ते हैं। नारायणदास और रतनरंग के संबंध में प्रस्तुत ग्रंथ के विद्वान संपादक डाक्टर गुप्त ने सफलतापूर्वक सिद्ध कर दिया है कि जैसे माधवानल कामकंदला की कथा कवियों द्वारा बार बार पल्लवित की गयी थी ठीक उसी प्रकार कवि रतनरंग ने भी नारायणदास की रचना पर अपना रंग चढ़ाया है। रतनरंग ने उसी प्रकार नारायणदास का ऋण स्पष्टरूप से स्वीकार किया है जैसे आगे चलकर आलम कवि ने माधवानल कामकन्दला के संबंध में लिखा था कि—

'कछु अपनी कछु पर कृति चोरौं
जथा सकति कर अच्छर जोरौं
कथा संस्कृति सुनि कछु थोरी।
भाषा बाँधि चौपई जोरी॥'

रतनरंग ने नारायणदास की ही रचना पर हाशिया चढ़ाया था। अतः दोनों की रचनाओं में बहुत साधारण सा अंतर दिखाई देता है। अर्थात् नायक के नाम के दो रूप हो गये हैं। एक में सौंरसी तो दूसरे में सुरसी। दोनों ही कवियों की रचनाएँ खंडित रूप में प्राप्त हैं परंतु छिताई के ही संबंध में लिखी गई जान कवि की 'कथा छीता की' अपने पूर्ण रूप में उपलब्ध है। वह हिंदुस्तानी एकडेमी, इलाहाबाद में मौजूद है। उसमें कुल २८८ छंद हैं। उसका निर्माण काल[1] सं० १६९३ वि० और प्रतिलिपिकाल १७८४[2] वि० है। कवि ने ग्रंथ की रचना शाहजहाँ के शासनकाल में की

१—सोरह सै जु तिरानुवें कथा कथी यहु जान।
कातिक सुद छठ पूरनं छीताराम बषान॥
—जान कवि कृत कथा छीता की

२—हिंदुस्तानी एकेडमी वाली प्रति की पुष्पिका में लिखा है—

'इति छीता की कथा संपूरन भई। संवत् १७८४ मिति चैत वदी ५ लिखतं फतेहचंद ताराचंद का डीडवानिया अगरवाला।' इति।

थी। नारायणदास और रतनरंग की रचनाओं की कथा डाक्टर माताप्रसाद जी ने दे दी है परंतु जान कवि की कथा उन दोनों से पूर्वार्द्ध में कुछ भिन्न है और नायक के नाम के संबंध में दोनों से सर्वथा स्वतंत्र है। अतः उसका यह सारांश दे देना अप्रासंगिक न होगा कि—

दक्षिण में देवगिरि के राजा की पुत्री छीता परम रूपवती थी। उसके रूप की प्रशंसा पश्चिम के राजकुमार राम के कानों तक पहुँची। राम के हृदय में छीता के रूप की प्रशंसा सुन पूर्वानुराग जागा। उसने छीता को प्राप्त करने के लिये अनेक प्रयत्न किए परंतु सफलता हाथ न लगी। विवश होकर राजकुमार राम अपने कुछ साथियों सहित सहसा देवगिरि पहुँच गया और राज-पुरोहित के घर उसने डेरा डाला। अतिथि और फिर राजकुमार समझ कर पुरोहित ने राम का अच्छा सत्कार किया। फलतः दोनों में मित्रता हो गई और पुरोहित ने राम को छीता का दर्शन कराने के लिये कई बार प्रयत्न किया। एक दिन जब कि छीता मंदिर में पूजा करने के लिये गई तो राम ने उसे देख लिया। छीता उस समय बालिका मात्र थी अतः राम के प्रति उसके मन में किसी भी प्रकार का रससंचार नहीं हुआ। परंतु राम के हृदय में जो पूर्वानुराग केवल रूपश्रवण से उत्पन्न हुआ था वह प्रत्यक्ष दर्शन से और भी पुष्ट हो गया। फलतः राम ने अपने साथियों को आदेश दिया कि वे घर जायँ और राजधानी से सेना लेकर शिकार खेलने के बहाने लौट आयें। इस प्रकार जब राम की सेना आ गई और वह उसको साथ ले आखेट का बहाना बनाकर नगर तक आ गया तब देवगिरि नरेश ने उसका स्वागत किया और उसके संमान में भोज भी दिया। जब राजकुमार राम ने छीता से अपने विवाह का प्रस्ताव किया तो राजा ने जो पहले ही राजकुमार के रूप की सराहना कर चुका था अपने पुरोहित को बुलाकर उसकी संमति मांगी। पुरोहित भी पहले से ही मिला हुआ था अतः उसने शुभ लग्न स्थिर किया और उसी समय राजा ने वाग्दान कर दिया। परंतु चूंकि राजकुमारी अभी छोटी थी अतः विवाह का मुहूर्त तीन वर्ष बाद के लिये निश्चित किया गया। जब विवाह का दिन निकट आया तो देवगिरि नरेश ने महलों में चित्रकारी के लिये दिल्ली से चित्रकारों को बुलवाया। दिल्ली का सुलतान अलाउद्दीन देवगिरि नरेश का मित्र था। उसने शाही चित्रकारों को देव-गिरि भेज दिया। चित्रकारों ने आकर समूचे महल को चित्रों से सजा दिया।

इसी बीच उन्होंने राजकुमारी छीता को भी देख लिया और उसका भी एक चित्र बना लिया। दिल्ली लौटने पर चित्रकारों ने उक्त चित्र सुलतान के सामने पेश किया। चित्र देखते ही अलाउद्दीन छीता पर आसक्त हो गया और उसे प्राप्त करने के लिये उसने तत्काल देवगिरि पर चढ़ाई कर दी। वह धोखे से छीता को पा गया और उसे दिल्ली ले आया। जब राम ने यह सुना तो फकीर का वेश बनाकर वीणा बजाते हुए वह छीता के महल तक पहुँचा। उधर छीता ने सुलतान का प्रस्ताव ठुकरा दिया था और वह राजकुमार राम के प्रेम में व्याकुल रहने लगी थी। अतः वीणा की झंकार सुनते ही वह समझ गई कि राजकुमार ही फकीर के वेश में आया है। वह आँसू बहाने लगी। अलाउद्दीन ने उसे रोते हुए देख लिया। असहाय अवस्था में भी दोनों के इस सच्चे प्रेम को देखकर वह पिघल गया। उसने छीता से राम का विवाह तो कराया ही साथ ही राम को मनसबदार बनाकर उसकी प्रतिष्ठा भी बढ़ाई।

स्पष्ट है कि जानकवि[1] की कथावस्तु नारायण दास और रतनरंग की

१—जान कवि ने बड़ी लंबी आयु पाई थी। उन्होंने जहाँगीर के शासनकाल में कंवलावती, शाहजहाँ के शासनकाल में पुहुपवरिखा और औरंगजेब के शासनकाल में नल दमयंती की रचना की थी। पं० मोतीलाल मेनारिया ने इनके संबंध में लिखा है कि ये 'मुसलमान जाति के कवि मुगल सम्राट शाहजहाँ' के समय में जयपुर राज्य के फतहपुर परगने के नवाब थे। इनका असली नाम अलफ खाँ था। लेकिन कविता में अपना उपनाम 'जान' लिखा करते थे। इनके पिता का नाम मुहम्मद खाँ तथा दादा का नाम ताज खाँ था। इनका रसमंजरी नामक ग्रंथ मिला है' आदि। श्री अगरचंद नाहटा ने इनके विषय में लिखा है कि—'फतहपुर (जयपुर) के कायमखानी नवाबों के वंश में अलफ खाँ के पुत्र न्यामत खाँ 'जान' कवि थे। इनके अन्य भाई दौलत खाँ, शरीफ खाँ, जरीफ खाँ और फकीर खाँ थे। ये दौलत खाँ के छोटे और अंतिम तीन भाइयों से बड़े थे। इनका वंश चौहान था जिसका कवि को अपने जीवन में बड़ा गर्व था। अतः कायम रासो भी कवि की एक और कृति है। पुहुप वरखा रचना में भी जान पड़ता है कि अलफ खाँ का पुत्र दौलत खाँ था। प्रस्तुत हस्तलेख में इनकी छोटी बड़ी ६८ रचनाएँ हैं।

कथावस्तुओं की तुलना में सीधी और साफ है। प्रेमाख्यानक काव्यों की इस परंपरा का निर्वाह करते हुए कि अंत में नायक नायिका का मिलन होना ही चाहिए, छिताई अथवा छीता कथा के सभी कवियों ने अलाउद्दीन द्वारा अंत में नायिका का नायक से मिलन कराने की बात लिखी है यद्यपि डाक्टर माताप्रसाद गुप्त ने इतिहास से सिद्ध कर दिया है कि अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद जो उथल पुथल हुई थी और जिसमें 'प्रसाद' जी के शब्दों में—

'रूपवाले, शीलवाले, प्यार से पले हुए
प्राणी राजवंश के
मारे गये'

उसी हलचल में छिताई का गर्भजात ६ बरस का बालक शहाबुद्दीन उमर भी तख्तनशीन हुआ था और कुतुबुद्दीन मुबारकशाह द्वारा उसके राज्यच्युत किए और अंधा तथा पंगु बनाये जाने पर या तो छिताई अपनी करतूतों के कारण मारी गई या शेष जीवन बंदिनी के रूप बिताने के लिये विवश हुई।[1] अतः यह सिद्ध है कि छिताई जब कुमारी थी तभी अलाउद्दीन को

१—कुतुबुद्दीन ने अपने भाई शिहाबुद्दीन को राजा राजसिंहासन से पृथक् करके उसकी उंगलियाँ कटवा डालीं और उसे ग्वालियर भेजा जहाँ उसके अन्य भाई कैद थे। —अजाइबुल असफार (डा० अब्बास रिजवी कृत अनुवाद) सुल्तान कुतुबुद्दीन ने राजसिंहासन पर विराजमान होने के दो मास उपरांत सुलतान अलाउद्दीन के लघु पुत्र मलिक शिहाबुद्दीन को जो कि राजसिंहासन पर विराजमान था ग्वालियर भिजवा दिया। उसकी आँखों में सलाई फिरवा दी (अंधा करवा दिया।'—तारीखे फीरोजशाही (जियाउद्दीन बरनी) वह बालक जिसे सुल्तान ने अपने स्थान पर बादशाह बना दिया था, रामदेव की पुत्री छिताई का पुत्र था। जब उसने खान को कुशलता से प्रबंध करते देखा तो ईर्ष्या के कारण उसे विष दे देने की योजना बनानी प्रारंभ कर दी। खान के एक हितैषी ने उसे उस षड्यंत्र की सूचना दे दी। राज्य के स्तंभों ने खान से कहा कि बालक बादशाही के योग्य नहीं होते अतः आपको बादशाह बन जाना चाहिए। उनके आग्रह पर मुबारकशाह राजसिंहासन पर विराजमान हो गया।

[फुतुहुस्सलातीन—एसामी]

प्राप्त हो गयी और आजीवन उसके महलों में ही रही। यही कारण कि उसके कल्पित पति का नाम नारायण दास और नारायण दास से प्रभावित रतनरंग सौरसी और सुरंसी लिखते हैं तो जान कवि एकदम उसका नाम राम रख देते हैं। इसका कारण संभवतः यही है कि जान कवि ने छिताई का शुद्ध रूप छीता समझा है और छीता तथा सीता शब्दों में जो ध्वनिसाम्य है उसके सहारे नायक के नाम की कल्पना राम आसानी से कर ली। आज हमारे पास निश्चित रूप से यह निर्णय करने का कोई साधन नहीं है कि वास्तव में रामदेव की उस पुत्री का नाम क्या था जो अलाउद्दीन की बेगम बनी थी। केवल एसामी ने अपने ग्रंथ फुतूहुस्सलातीन में उसका नाम 'झतयापर्ला' लिखा है। इतिहास को यह भी पता नहीं है कि अलाउद्दीन के हरम में कुल कितनी स्त्रियाँ उसकी पत्नी के रूप में रहती थीं। इसमें कोई संदेह नहीं कि उनकी संख्या विशाल होगी। जायसी ने कवि सुलभ निश्चिन्तता के साथ अलाउद्दीन के मुख से कहला दिया है कि—

'सात दीप महँ चुनि चुनि आनी। सो मोरे सोरह सै रानी।'[1]

अलाउद्दीन की कम से कम पाँच बीबियों का पता इतिहास को है[2]। संभवतः उसने गुप्त रूप से अपना प्रथम विवाह मलिक संजर की बहिन माहरू से किया था। यही मलिक संजर आगे चलकर अलप खाँ बना था। प्रकट रूप मे उसका दूसरा[3] विवाह उसके चाचा सुल्तान जलालुद्दीन की पुत्री से

१—जियाउद्दीन बरनी ने तारीखे फीरोजशाही में सुल्तान अलाउद्दीन और काजी मुगीस का जो संवाद उद्धृत किया है उसमें मुगीस ने शराके आधार पर उस भारी खर्च का विरोध किया है जो अलाउद्दीन अपनी स्त्रियों और अपने अंतःपुर पर व्यय करता था। उसी प्रसंग में अलाउद्दीन अपने संबंध में कहता है कि—'काजी मुगीस, मैंने कोई किताब नहीं पढ़ी किंतु कई पुश्त से मुसलमान हूँ तथा मुसलमान का पुत्र हूँ।' उधर इस्लामी शराके अनुसार एक साथ चार पत्नियाँ तक रखना धर्मानुकूल माना जाता है।

२—अलाउद्दीन का अपने एक चचा की पुत्री से संबंध था। इस बात से उसकी धर्मपत्नी खिन्न रहती थी'' 'उस लड़की का नाम माहरू था। यह अलप खां की बहिन थी। —'खलजीकालीन भारत' में अब्दुल्ला बिन उमर का उद्धरण।

३—सुल्तान जलालुद्दीन ने मलिक छज्जू के विद्रोह को शांत करने के पश्चात बदायूं से लौटते समय अपने भतीजे और दामाद सुल्तान अलाउद्दीन

हुआ था। उसकी तीसरी पत्नी सुल्तान मुइज्जुद्दीन की पुत्री[1] थी जो सुल्तान बल्बन का पौत्र और बुगरा खाँ का पुत्र था। गुजरात की कमला[2] (अमीर खुसरो के शब्दों में कमलादी) भी उसकी पत्नी बनी थी और रामदेव की पुत्री झतयापली पर तो हम प्रस्तुत प्रसंग में विचार ही कर रहे हैं।

डाक्टर माताप्रसाद गुप्त का झुकाव झतयापली और छिताई नामों में दूसरा ही नाम ग्रहण करने की ओर है। दूसरी ओर 'भारतीय प्रेमाख्यान काव्य' में डाक्टर हरिकांत श्रीवास्तव छिताई का संबंध खिताई शब्द से स्थापित करने का संकेत करते दिखाई पड़ते हैं।[3] परंतु इतिहास तो यह भी बताता है कि तुर्कों की एक शाखा का नाम 'खिताई' था जैसे नासिरुद्दीन के बारहवें राज्यवर्ष का विवरण लिखते हुए तबकाते नासिरी में मिनहाज सिराज कहता है कि युद्ध से लौटते समय रविवार ६ रबीउलअव्वल ६५५ हि० (२४ मार्च १२५७) ई० को मलिक संजान ऐबक खिताई घोड़े से गिरकर

को कड़े की अक्ता देकर उस ओर भेजा। —'खलजी कालीन भारत में बरनी के तारीखे फीरोजशाही का अनुवाद।

१—सुल्तान अलाउद्दीन के दो प्रिय दास थे। एक का नाम बशीर और दूसरे का मुबश्शिर था। मुख्य खातून अर्थात् अलाउद्दीन की विधवा तथा सुल्तान मुइज्जुद्दीन की पुत्री ने उन्हें बुलवाया। —खलजीकालीन भारत में 'अजाइबुल असफार' का अनुवाद।

२—करण की रानी कमलादी बड़ी रूपवान थी। खान ने विजय के उपरान्त वापस होकर समस्त धन संपत्ति तथा हाथी घोड़ों के साथ साथ गुप्त रूप से कमलादी को भी पेश किया। सुल्तान ने उसे अपनी रानी बना लिया।

—दिवल रानी-खिज्र खाँ (खुसरो)

३—इतिहास को रामदेव की कन्या का ज्ञान नहीं। कथा ने उसे छिताई के नाम से पुकारा है। यही नाम पद्मावत, वीरसिंह देवचरित आदि में भी है। जान कवि ने इसे छीता के नाम से पुकारा है। इतिहास में छिताई से मिलते जुलते 'खिताई' नाम के नगर का उल्लेख है। रशीदुद्दीन जामिउत्त-वारीख में लिखता है कि 'खिताई' होकर माबर से (इसकी राजधानी द्वार समुद्र है) जो सड़क आई है वह बावल तक जाती है।

भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य, पृ० २१३-२१४

मर गया। 'उसी ग्रंथ में मलिक सैफुद्दीन ऐबक के संबंध में लिखा है कि 'मलिक सैफुद्दीन ऐबक युगानतत खिताई तुर्क था।'

कहने का तात्पर्य यह कि ऐसी कल्पनाओं से छिताई का नाम स्थिर करने में कोई सहायता नहीं मिल सकती। ठोस प्रमाण के अभाव में अधिक से अधिक केवल यह कल्पना की जा सकती है कि संभवतः उसका वास्तविक नाम 'छितिपाली' था जो फारसी लिपि में सरलतापूर्वक 'झतयापली' लिखा और पढ़ा जा सकता है। 'छितिपाली' से छिताई बन जाना तो कठिन नहीं ही है।

हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य

किसी भी भाषा के प्रेमाख्यानक काव्य क्यों न हों सबका आधार नर-नारी का पारस्परिक शाश्वत आकर्षण ही है। रति ही मनुष्य की वह सहज वृत्ति है जो शृंगार रस को जन्म देती है और शृंगार अपने यहाँ रसराज माना गया है। शृंगार की रसराजता के संबंध में साहित्य मनीषियों ने बहुत कुछ कहा है जिनमें दो बातें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। एक तो यह कि शृंगार रस की व्याप्ति मानव जीवन में आदि से अंत तक रहती है और दूसरी यह कि शृंगार से अन्य सभी रसों की उत्पत्ति हो सकती है जब कि अन्य रसों में यह शक्ति नहीं। यही कारण है कि सभी भाषाओं और सभी देशों के साहित्य में इस रस की रचनाएँ प्रचुरता से की गई हैं। हिंदी साहित्य भी इस सर्वमान्य नियम का अपवाद नहीं है।

जब हम हिंदी के प्रेमाख्यानक काव्यों का विश्लेषण करते हैं तब हमें उसके तीन मुख्य रूप दिखाई देते हैं जैसे शुद्ध प्रेमाख्यानक, रहस्यवादी प्रेमाख्यानक और प्रेमप्रभाव-निरूपक काव्य। शुद्ध प्रेमाख्यानक काव्य की संज्ञा केवल ऐसे काव्यों को दी जा सकती है जिनमें नर नारी के लौकिक प्रेम का चित्रण किया गया हो जैसे संस्कृत में नैषध और हिंदी में छिताई वार्ता। परंतु जिन काव्यों में नर-नारी के प्रेम के बहाने आत्मा परमात्मा के संबंध की चर्चा की जाती है वे रहस्यवादी प्रेमाख्यानक काव्य कहलाते हैं। मलिक मुहम्मद जायसी का पद्मावत इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। ऐसे ही काव्यों को सूफी काव्य भी कहा जाता है। अब रह गये प्रेम प्रभाव निरूपक काव्य। ऐसे काव्यों में या तो कोई कथा होती ही नहीं और यदि होती भी है तो अत्यंत नगण्य। सारा बल प्रेम प्रभाव के निरूपण पर ही दिया जाता है।

संस्कृत में 'मेघदूत', अपभ्रंश में 'संदेश रासक' और हिंदी में प्रसाद जी का 'आँसू' ऐसे ही प्रेमप्रभावनिरूपक काव्य हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि शुद्ध प्रेमाख्यानक और रहस्यवादी प्रेमाख्यानक काव्य प्रायः बाह्य वृत्ति निरूपक होते हैं जबकि प्रेम प्रभाव निरूपक काव्य मुख्यतया अंतर्वृत्ति निरूपक। ये अंतर्वृत्ति निरूपक काव्य प्रायः मुक्तक होते हैं परंतु उनमें नायक नायिका, नख-शिख वर्णन आदि का अभाव नहीं होता। मेघदूत में यक्ष और यक्षिणी नायक नायिका है तो 'आँसू' में 'प्रेम' नायक है और 'सुंदरता' नायिका। परंतु प्रेम काव्यों का अर्थात् इश्किया शायरी का जैसा वर्गीकरण इधर हुआ और हो रहा है वैसी कोई चीज हमारे संस्कृत साहित्य में नहीं मिलती। इस पर हमें आश्चर्य इसलिए नहीं होता क्योंकि संस्कृत में काव्य-रचना का उद्देश्य ही कुछ और था। आचार्य मम्मट ने उन उद्देश्यों की एक साथ जो सूची प्रस्तुत की है वह लोक प्रसिद्ध है[1]। ऐसी दशा में खालिस मनबहलाव के लिये लिखे गये प्रेम-काव्यों को संस्कृत में खोजना व्यर्थ आयास होगा। संस्कृत में जो काव्यों की लघुत्रयी और बृहत्त्रयी विख्यात है उनमें जहाँ जहाँ प्रेम प्रसंग आया है वहाँ प्रेम का चित्रण साधना के रूप में हुआ है, हाहाकार के रूप में नहीं। प्रेम का थोड़ा हाहाकारी रूप श्री हर्ष के नैषध में दिखाई पड़ता है। शायद यही कारण है कि मुसलमान कवियों को हिंदुओं की पौराणिक कथाओं में एक मात्र नल दमयंती की कथा ने अत्यधिक आकृष्ट किया है। ठेठ उर्दू तक की मसनवियों में नल दमयंती की चर्चा की गई और वे शीरीं-फरहाद की श्रेणी में बैठा दिये गये।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस्लाम के प्रवेश के पूर्व भारत में नल दमयंती और ऊषा अनिरुद्ध की पौराणिक और उदयन-वासवदत्ता की ऐतिहासिक प्रेम कथाएँ प्रचलित थीं और भारतीय संस्कृति के अनुरूप उनका रूप अत्यंत संयत था। परंतु जब भारतीय तुर्क अमीर खुसरो ने प्रेम के

१—काव्यं यशसेऽर्थं कृते व्यवहारविदे शिवेत रक्षतये।
सद्यः पर निवृतये कान्ता सम्मिततयो उपदेशयुजे॥

—'काव्य प्रकाश'

२—है न शीरीं न कोहकन का पता
अब कहीं है न नल दमन का पता —मसनवी जहरे इश्क।

भारतीयेतर आदर्शानुसार फारसी में शीरीं व खुशरो, मजनूं व लैला और हश्त बहिश्त (बहराम और दिलाराम) नामक प्रेम कथाओं को पद्यबद्ध करने के साथ ही दिवल[1] रानी व खिज्र खाँ नाम से समकालीन कथा पर भी काव्य रचना कर दी तो प्रतीत होता है कि उसके अनुकरण पर हिंदी में भी वैसी ही कथाओं पर काव्य रचना के लिए द्वार खुल गया। जहाँ तक ज्ञात है सर्वप्रथम मुसलमानों ने ही हिंदी में शामी कथाओं के ढंग पर रचनाएँ कीं। मुल्ला दाऊद की नूरक चंदा का नाम इस प्रसंग में लिया जा सकता है। साथ ही जायसी के साक्ष्य पर यह भी निश्चित है कि उनके पहले मुग्धावती, मृगावती, मधुमालती और प्रेमावती नामक रचनाएँ उक्त पद्धति पर प्रस्तुत की जा चुकी थीं। यह भी प्रायः निश्चित ही है कि उक्त सभी रचनाएँ इतिहास पर आश्रित न होकर लोक कथाओं पर लिखी गयी थीं। परंतु जैसे अमीर खुसरो ने 'दिवलरानी व खिज्र खाँ' की रचना ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर की थी ठीक उसी प्रकार जायसी ने पद्मावत और नारायण दास तथा रतन रंग ने 'छिताई वार्ता' की रचना की। पद्मावत और छिताई कथा या वार्ता में सबसे बड़ा अंतर यही है कि पद्मावत सूफी प्रेमाख्यानक काव्य है तो दूसरा विशुद्ध प्रेमाख्यानक।

कथा, वार्ता, आख्यान और चरित

प्रेमाख्यानक शब्द का अर्थ ही है प्रेम कहानी कारण आख्यान शब्द का प्रयोग कहानी के अर्थ में ही होता है। हमारी भाषा हिंदी में कथा, वार्ता और आख्यान तीनों ही प्रायः कहानी अर्थ में प्रयोग किये जाते हैं, परंतु तीनों में जो सूक्ष्म अंतर है उस पर प्रायः ध्यान नहीं दिया जाता। इधर यह एक नियम सा है कि किसी भी भाषा में एक वस्तु के लिये एक से अधिक शब्द नहीं हुआ करते। मिलता जुलता अर्थ रखनेवाले दो शब्द यद्यपि पर्यायवाची कहलाते हैं तथापि उन्हें पर्यायवाची कहना बहुत ठीक नहीं है। उदाहरण के लिये वारि, सलिल, पानी आदि शब्द जल के पर्यायवाची बतलाये जाते हैं परंतु ध्यान से देखने पर प्रतीत होता है कि उनके सबके अर्थ में भिन्नता

१—खुसरो ने अभी तक इस प्रकार की कोई कथा न लिखी थी। इसके अतिरिक्त फारसी साहित्य में भी इस प्रकार की कोई कविता वर्तमान नहीं, जिसमें किसी समकालीन राजा अथवा राजकुमार के प्रेम का उल्लेख हो— 'आदि तुर्क कालीन भारत—पृ० २८१।

है। पनाले में बहनेवाला जल पानी नहीं कहला सकता क्योंकि उसे कोई मनुष्य पीने के लिये जान बूझकर प्रस्तुत नहीं हो सकता। वह तो वही जल ग्रहण कर सकता है जो पानीय हो, पीने योग्य हो। इसी प्रकार नदियों का कलकल स्वर से बहने वाला निर्मल जल सलिल प्रतीत होता है और आकाश से बरसने वाला जल अम्बु। यह मान लेने पर यह जान लेना सरल होगा कि कथा, वार्ता और आख्यान शब्दों के अर्थों में भी कुछ भिन्नता है। इसी के साथ चौथा शब्द चरित भी है जो कभी कभी उन्हीं अर्थों में प्रयुक्त हो जाता है जो अर्थ कथा, वार्ता या आख्यान का साधारणतया समझा जाता है परंतु चरित्र शब्द का अर्थ किसी भी मनुष्य के जीवनव्यापी उस अनुकरणीय कार्यकलाप का पूर्ण वर्णन मात्र ही है जिसके द्वारा वर्ण्य व्यक्ति के जीवन की सारी घटनाओं के साथ ही उसके स्वभाव का भी पूर्ण परिचय प्राप्त हो सके। इस प्रकार रामचरितमानस का अर्थ है राम के जीवन भर की घटनाओं के वर्णन का सरोवर।

कथा शब्द का अर्थ केवल कहानी है जो किसी के संबंध में कही जाय। अतः कह सकते हैं कि कथा शब्द का सीधा अर्थ कोई भी वह कहानी है जिसका किसी के संबंध में कथन किया जाय। फलतः चरित और कथा में मुख्य अंतर यह मिलता है कि चरित प्रामाणिक और पूर्ण होना चाहिए जबकि कथा जीवन का आंशिक विवरण है जो प्रामाणिक भी हो सकता है और अप्रामाणिक भी।

कथा के संबंध में यह भ्रम न जाने क्यों व्यापक हो गया है कि कथा मौखिक और गद्यात्मक[1] ही होती है। परंतु जब हम यह देखते हैं कि 'कथा' शब्द पद्यात्मक कथा सरित्सागर और सत्यनारायण की कथा से लेकर जायसी

१—'मृगावत में स्वयं कुतुबन, एक स्थान पर उसकी कहानी के विषय में चर्चा करता हुआ कहता है—

पहिले हिंदुई कथा अहाइ। फिन गान तुरकई लै गाहइ' इस अर्द्धाली में दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। एक तो पहले इसका रूप कथा का अर्थात् गद्यमय मौखिक था जिसे गान अर्थात् कविता का रूप दिया।'

—श्री 'अमर' संपादित 'त्रिपथगा' (ज्येष्ठ शक, सं० १८८०) में श्री दिलीपनारायण सिंह का प्रेमाख्यान काव्य परंपरा और मृगावत शीर्षक लेख।

के पद्मावत तक में 'कथा अरंभ बैन कवि कहा' के रूप में मौजूद है तो स्वभावतः प्रश्न होता है कि कथा को केवल गद्यात्मक या मौखिक ही कैसे कहा जाय और फिर कथा का 'गान' भी तुर्क के बहुत पहले कालिदास ने किया, ऐसी बात बताते हुए बोधा सामने आते हैं—

'सुन सुभान अब कथा सुहाई। कालिदास बहु रुचि सह गाई ॥'

कथा की कहानी कहने में यह बात भी नहीं भुलाई जा सकती कि जैसे बर्तन के साथ भांड़ा और गली के साथ कूचा युगलमूर्ति मुद्रा में उपस्थित होते हैं वैसे ही कथा के साथ वार्ता की संगत भी न जाने कब से बैठती रही है। जैसे चरित जीवन के संपूर्ण कार्यकलाप का प्रामाणिक पूर्ण विवरण है और कथा जीवन के किसी विशेष प्रसंग का प्रामाणिक वर्णन उसी प्रकार वार्ता किसी के भी जीवन के किसी वृत्त की व्याख्यात्मक विवृत्ति है जो परंपरागत और मौखिक भी हो सकती है। 'वार्ता' से ही 'बात' शब्द बनता है। सायणी चारणीरी बात का अर्थ चारणी सायणी की वार्ता ही है। अब रह गया आख्यान जिसका अर्थ केवल लोकप्रसिद्ध पुरातन वृत्त है। महाभारत में जहाँ जहाँ लोकप्रसिद्ध पुरातन वृत्त उद्धृत किए गए हैं वहाँ वहाँ उन्हें आख्यान ही कहा गया है जैसे शाकुंतलोपाख्यान, नलोपाख्यान या नकुलोपाख्यान आदि।

कथा की एक विशेषता यह भी देखने में आती है कि उसके पढ़ने या सुनने का क्या फल है यह भी निर्देश किया जाता है जैसे सत्यनारायण कथा सुनने का यह फल बताया जाता है कि 'ईप्सितं च फलं भुक्त्वा चान्ते सत्यपुरं व्रजेत्' अर्थात् इस लोक में इच्छित सुखों को भोगकर मरने पर सत्यलोक में जाय वैसे ही छिताई-कथा के लेखक रतनरंग ने भी कथा—श्रवण का फल बताते हुए कहा है कि—

'रतनरंग कवि देखि बिचारि
करी कथा सो अम्रित सार
इतनी कथा सुनै दै कान
तिनकौ फुरै गंग अस्नान'

शायद गंगा स्नान का महत्व अपभ्रंश काल में ही बहुत बढ़ गया था[1],

---

1—वासु महारिसि एउ भणइ
जइ सुइसत्थु पमाणु।

इसीलिये रतनरंग ने अपनी कथा के श्रवण का फल गंगा स्नान करने का पुण्य बताया। हिंदू और मुसलमान लेखकों द्वारा लिखी गयी कथाओं में यह भी अंतर ध्यान देने योग्य है। हिंदू कवि निर्द्वंद्वता के साथ अपनी कथा के श्रवण का फल गंगास्नान कह सकता है परंतु मुसलमान कवि ऐसा नहीं कह सकता। उसे तो यही कहकर संतोष करना पड़ेगा कि मेरी कथा के श्रवण का फल 'प्रेम की पीर' अर्थात् भगवत भक्ति है। जायसी ने पदमावत में कहा भी है—

मुहमद कवि यह जोरि सुनावा
सुना सो प्रेम पीर कर पावा'

इस प्रकार कथा की परिभाषा निश्चित हो जाने के बाद आलोच्य पुस्तक के नाम पर विचार करना चाहिए। डाक्टर गुप्त के इस कथन का विरोध नहीं किया जा सकता कि 'इसलिए जब तक कि और निश्चयात्मक कोई साक्ष्य प्राप्त न हो, रचना का नाम क० की पुष्पिका के आधार पर 'छिताई वार्ता' ग्रहण किया जा सकता है। परंतु श्री० प्रति में वर्णित छिताई वृत्त का नाम छिताई-कथा ही है इसमें भी संदेह न करना चाहिए और 'चरित छिताई आयौ छेउ' के आधार पर यह भी न कहना चाहिए कि 'श्री० के अनुसार रचना का नाम छिताई चरित है' कारण,

(१) श्री० प्रति में 'कथा' शब्द का प्रयोग बार बार हुआ है और 'चरित' शब्द का प्रयोग केवल एक बार। देखिए—

रतनरंग कवि देखि विचारि
करी कथा सो अम्रित सार
× × × ७५८
त्यौं बिनु कलस कथा आरंभ

मायहं चलण नवन्ता हं
दिवि गंगाण्हाणु ॥ —पुरानी हिंदी पृ० १८३।

(महर्षि व्यास यों कहते हैं कि यदि वेद शास्त्र प्रामाणिक हैं तो जो लोग अपनी माता के चरणों पर झुकते हैं उन्हें प्रतिदिन गंगा स्नान का फल प्राप्त होता है।)

लीनी बरणि कथा कवि रंग
इतनी कथा सुनै दै कान
तिनकौ फुरै गंग अस्नान ७५६
चरित छिताई आयौ छेउ
जयौ सकल मैं त्रिभुवन देउ ७६०

इसलिए अंत में जो 'चरित' शब्द आ गया है उसका अर्थ भी यहाँ 'कथा' ही समझना चाहिये ।

(२) श्री० प्रति की पुष्पिका में भी पुस्तक का नाम 'छिताई वार्ता' न देकर 'छिताई कथा' ही दिया गया है ।

(३) कथा श्रवण का फल होता है और यतः श्री० प्रति के अंत में भी कथा श्रवण का फल निर्दिष्ट है अतः पुस्तक का नाम तब तक छिताई कथा ही मानना चाहिए जब तक उसके विरुद्ध कोई निश्चित प्रमाण प्राप्त न हो जाय ।

पुस्तक का रचनाकाल

डा० माताप्रसाद गुप्त ने अपनी पांडित्यपूर्ण भूमिका में एक स्थल पर लिखा है कि इस बात की संभावना यथेष्ट है कि पद्मावत के रचयिता के सामने छिताईवार्ता का वही रूप था जो हमें 'क' में मिलता है और जायसी की रचना सं० १५९७ की है और छिताई वार्ता की रचना उससे बहुत पहले की है ।' परंतु डा० गुप्त से सहमत होने में एक साधारण सी बाधा यह है कि यदि जायसी के सामने छिताई वार्ता मौजूद थी तो उन्होंने जहाँ यह सूची दी है कि—

विक्रम धँसा प्रेम के बारा
सपनावति कहँ गएउ पतारा
मधूपाछ मुगधावति लागी
गगन पूर होइगा बैरागी
राजकुंवर कंचनपुर गयऊ
मिरगावति कहँ जोगी भयऊ
साधे कुंवर खंडावत जोगू
मधुमालति कर कीन्ह वियोगू

प्रेमावति कहं सुरवर साधा
उषा लागि अनिरुध बर माँगा

वहीं उन्होंने एक अर्द्धाली और क्यों न लिख दी कि—

कुँवर सौरसी साहि रिझाई
लीन्ह माँगि निज नारि छिताई

और तब जब कि जायसी छिताई वृत्त से भली भाँति परिचित थे और पद्मावत में उन्होंने उसका नाम तीन तीन बार लिया था। अतः कहा जा सकता है कि जहाँ उन्होंने सपनावती, मुगधावती, मृगावती, और प्रेमावती आदि का नाम लिया वहीं उन्हें 'छितावती' नाम लेने में भी कोई संकोच न होता यदि उनके समक्ष छिताई संबंधी कोई काव्य उपस्थित रहता।

छिताई वार्ता को 'पद्मावत' से पहले की रचना मानने में आसाधारण बाधा स्वयं छिताई वार्ता का वह छंद है जहाँ कवि अलाउद्दीन से कहलाता है कि

यौं बोलै ढिल्ली कौ धनी
मैं चितौर सुनी पदमिनी
बाँध्यौ रतनसेन मैं जाइ
लै गो बादिलु ताहि छिड़ाइ ॥

—पृ० ४६, छंद ३५१

नवीन ऐतिहासिक शोधों से यह सिद्ध हो चुका है कि पद्मिनी की कथा जायसी की कल्पना मात्र है, कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं। चित्तौड़ की चढ़ाई में अमीर खुसरो अलाउद्दीन के साथ था। वह मृत पति के साथ जल जाने वाली हिंदू नारियों का बहुत बहुत बड़ा प्रशंसक था।[१] अतः इसमें संदेह नहीं कि यदि पद्मिनी के जौहर जैसी कोई घटना घटी होती तो वह उसका उल्लेख अवश्य करता परंतु उसने जौहर तो क्या, पद्मिनी का भी उल्लेख कहीं नहीं किया है।

१—खुसरवा दर इश्क़बाजी
कम ज हिंदू ज़न मबास,
कज़ बराए मुर्दा सोज़द
जिन्दा जाने खेश रा ॥

ऐ खुसरो! प्रेमपथ में हिंदू स्त्रियों से तू मत पिछड़। पति के शव के साथ जीवित ही जल जाने वाली उन नारियों का तू अनुकरण कर।

जियाउद्दीन बरानी भी अलाउद्दीन का समकालिक इतिहासकार है। वह भी न तो पद्मिनी का उल्लेख करता है और न यही कहता है कि चित्तौड़ पर चढ़ाई का कारण किसी नारी का सौंदर्य था। यह तो केवल परंपरागत जनश्रुति है[१]।

यही नहीं, अलाउद्दीन के समकालिक या जायसी के पहले के किसी भी इतिहासकार ने पद्मिनी का उल्लेख कहीं नहीं किया। फारसी इतिहासों और हिंदी काव्यों में पद्मिनी विषयक जितने उल्लेख मिलते हैं वे सब जायसी के बाद के हैं।

डा० किशोरीशरणलाल ने निर्भ्रांत और अकाट्य रूप से यह सिद्ध कर दिया है कि पद्मिनी मलिक मुहम्मद जायसी की कल्पना है। 'जायसी की उक्त कहानी जिसमें प्रेम, दुस्साहसिकता और विषाद तीनों का सुंदर संमिश्रण है, बहुत शीघ्र लोकप्रिय हो गई और अत्र तत्र सर्वत्र उक्त कहानी कही सुनी जाने लगी। फारसी इतिहासकारों ने भी, जो तथ्य और कल्पना में विशेष भेद नहीं करते थे, तत्काल इस कहानी को सच्चे इतिहासों में जिनमें फरिश्ता और हाजीउद्दबीर के भी इतिहास शामिल हैं, ऐतिहासिक तथ्य के रूप में ग्रहण कर लिया[२]।' चूँकि फरिश्ता ने अपना इतिहास जायसी के सत्तर बरस बाद लिखा इसलिये बहुत संभव है कि नारायण दास ने

१—इफ ट्रेडिशन इज टु बी बिलीवूड, इट्स कौज वाज हिज इनफैचुएशन फौर राजा रतनसिंह्स क्वीन पद्मिनी आफ एक्सक्विजाइट ब्यूटी। बट् दिस फ़ैक्ट इज नौट एक्सप्लिसिट्ली मेंशंड इन एनी कंटेम्पोरेरी क्रानिकल ऑर इंसक्रिप्शन।—ऐन ऐडवांस्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया (२) भाग, पृ० ३०२।

२—दिस स्टोरी ऑफ मलिक मुहम्मद जायसी इन ह्विच रोमांस, ऐडवेंचर ऐंड ट्रेजेडी आर औल ब्यूटीफुली इंटरमिक्स्ड, वेरी सून ग्रिप्ड दि पौपुलर माइंड ऐंड हियर देयर ऐंड एव्री ह्वेयर दि स्टोरी ऑफ पद्मिनी वाज टोल्ड ऐंड रीटोल्ड। दि पर्शियन क्रानिक्लर्स हू डिड नौट वेरी मच केयर टु डिस्टिंग्विश बेट्वीन फिक्शन ऐंड फैक्ट रेडिली ऐक्सेप्टेड इट ऐज ट्रू हिस्ट्री सो दैट आफ्टर दि टाइम औफ मलिक मुहम्मद जायसी दि पद्मिनी एपिसोड इज मेंशंड ऐज ए हिस्टौरिकल फैक्ट इन मेनी हिस्टोरिकल वर्क्स इनक्लूडिंग दोज औफ फरिश्ता ऐंड हाजीउद्दबीर।—हिस्ट्री औफ दि खलजिज (डा० किशोरीशरण लाल), पृ० १२२-२३।

जिस समय छिताई-वार्त्ता की रचना की उस समय 'पद्मावत' ही उनके सामने मौजूद हो और तब निश्चय ही पद्मिनी की कहानी उन्हें 'पद्मावत' से ही ज्ञात हुई होगी। ऐसी स्थिति में यह भी कहा जा सकता है कि अपनी इस उक्ति के लिये कि—

'कवीअण कहइ नरायणदास
मरइ फूल जीवइ दिन बास'

कवि नारायणदास जायसी की इस पंक्ति के ऋणी हैं कि—

'फूल मरै पै मरै न बासू'

परंतु मेरी धारणा है कि 'मरइ फूल जीवइ दिन बास' और 'फूल मरै पै मरै न बासू' दोनों ही किसी लोक-गीत के भाव हैं जिसका बुंदेलखंडी रूप श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने अपनी 'विराटा की पद्मिनी' के अंत में इस उद्धरण के साथ प्रस्तुत किया है कि—

'उड़िगे फुलवा रहि गइ बास।'

फिर जायसी की रचना सं० १५६७ की है जिस समय दिल्ली में शेरशाह राज कर रहा था। छिताई-वार्ता की जो दो प्रतियाँ उपलब्ध हैं उनमें से एक अर्थात् क० प्रति का प्रतिलिपिकाल सं० १६४७ है और दूसरी अर्थात् ओ० प्रति का संवत् १६८२। इस प्रकार क० प्रति पद्मावत के पचास वर्ष बाद की है और ओ० प्रति पचासी वर्ष बाद की। इस तथ्य पर अनुमान का आधार लेकर कहा जा सकता है कि जायसी की रचना को प्रसिद्धि प्राप्त करने में कम से कम बत्तीस वर्ष लगे होंगे और यदि छिताई वार्ता की रचना उसके प्रतिलिपि काल से बीस ही वर्ष पूर्व हुई तो उसका रचना काल संवत् १६२७ हो सकता है। भाषा की प्राचीनरूपता का कारण यह हो सकता है कि वह राजस्थानी से प्रभावित है।

संवत् १६२७ की विशेषता

संवत् १६२७ के बाद छिताई के संबंध में सहसा जो उद्धरणी आरम्भ हुई उसका परिचय हमें इस प्रकार प्राप्त होता है कि नारायणदास और रतनरंग के बाद जान कवि ने भी 'कथा छीता की' लिखी और केशव ने भी अपने वीरसिंह देव चरित में उसका स्मरण किया। जान कवि के बारे में यह निश्चित ही है कि वे राजस्थानी थे और नारायणदास तथा रतनरंग

भी राजस्थानी ही प्रतीत होते हैं। अतः यह प्रश्न स्वाभाविक है कि क्या कारण है कि अकबर के समकालीन और उसके बाद के राजस्थानी कवियों को छिताई पर काव्य रचना का शौक सहसा क्यों चर्रा उठा। जहाँ तक हिंदी में अलाउद्दीन संबंधी प्रबंध और फुटकल काव्यों का संबंध है मेरी जानकारी में इतनी रचनाएँ हैं जैसे—

जायसी	(१)	पदमावत, रचनाकाल संवत् १५९७।
नारायणदास और रतनरंग	(२)	छिताई कथा, रचनाकाल अज्ञात, प्रतिलिपिकाल संवत् १६४७ और १६८२।
जानकवि	(३)	कथा छीता की, रचनाकाल संवत् १६९३, प्रतिलिपि-काल संवत् १७८४।
जानकवि	(४)	कथा खिजर खाँ शाहजादे व देवलदे की।
लालचंदलब्धो-दय या लब्धोदय	(५)	पद्मिनी-चरित, रचनाकाल १७०२, प्रतिलिपिकाल संवत् १७५१।
हेमरतन	(६)	गोरा बादल पद्मिनी चौपाई संवत् १७६०।
जटमल	(७)	गोरा बादल की बात।
जोधराज	(८)	हम्मीर रासो, रचनाकार सं १७८५।
ग्वालकवि	(९)	हमीर हठ।
चंद्रशेखर	(१०)	हम्मीर-हठ।
वीरेंद्र	(११)	पद्मिनी, रचनाकाल संवत् १९९९।
प्रसादजी	(१२)	प्रलय की छाया।
राजस्थानी गद्य में	(१३)	बात सायणीचारिणी री।
श्यामनारायण पांडे	(१४)	जौहर

अलाउद्दीन जैसे क्रूर और निरंकुश नरेश के संबंध में इतने अधिक ग्रंथों की रचना वस्तुतः कौतूहलजनक है परंतु जब हम उक्त ग्रंथों के रचे जाने के कारणों पर विचार करते हैं तब हमारा कौतूहल प्रशमित हो जाता है और हम इस तथ्य तक पहुँच जाते हैं कि हिंदी में अलाउद्दीन संबंधी रचनाओं के कुल चार उद्देश्य हैं जैसे—

(१) अलाउद्दीन की प्रतिभा, क्रूरता और निरंकुशता का चित्रण।
(२) क्षत्राणियों की सतीत्व-निष्ठा का प्रदर्शन।

(३) राजपूती वीरता का दिग्दर्शन।

(४) राजस्थानी नरेशों द्वारा मुगल सम्राटों को कन्यादान की प्रथा के समर्थनार्थ पुरानी नजीर का प्रस्तुतीकरण।

जहाँ तक इस्लाम में दीक्षित होकर भारत में आनेवाले मध्यएशियाई बर्बरों के और विशेषतः अलाउद्दीन के अत्याचारों का प्रश्न है उसका चित्रण राजस्थानी गद्य में 'सायणीचारणी री बात' में और प्रसाद जी की 'प्रलय की छाया' जैसी रचनाओं में प्राप्त होता है। चारणी री बात में जहाँ अलाउद्दीन सायणी को डाइन कहकर भूगर्भ में डलवा देता है वहीं प्रसाद जी तत्कालीन अत्याचारों का वर्णन यों करते हैं जैसे—

सोचने लगी थीं कुलवधुएँ, कुमारिकायें
जीवन का अपने भविष्य नये सिर से'
उसी दिन
बींधने लगी थी विषमय परतन्त्रता।'

क्षत्राणियों अथवा भारतीय नारियों की सतीत्व[1] निष्ठा का चित्रण करने के उद्देश्य से लिखे गये ग्रंथ हैं संख्या १, ६, १२ और १४ तथा राजपूती वीरता के उद्घाटन के उद्देश्य से लिखे गये ग्रंथ हैं संख्या ७, ८, ९, १० और ११। परंतु छिताई संबंधी तीनों ग्रंथों का उद्देश्य राजस्थानी कवियों द्वारा राजस्थानी नरेशों को शायद इस लज्जा से बचाने के लिए कि उन्होंने स्वेच्छया अपनी पुत्रियाँ मुगलों को दीं केवल यह नजीर प्रस्तुत करना है कि उनके बहुत पहले राजा रामदेव भी स्वेच्छया ऐसा ही कर चुका था। अलाउद्दीन दिल्ली का पहला मुसलमान बादशाह था जिसने हिंदू नरेशों की स्त्रियों और पुत्रियों को अपने हरम में दाखिल कर उन्हें अपनी बेगम का पद प्रदान किया था।

१—इस संबंध में अमीर खुसरो का एक फारसी शेर उल्लेख्य है। भारतीय संस्कृति से अनभिज्ञ तुर्क जब किसी हिंदू स्त्री को छेड़ देते थे तो वह उसे 'दुर दुर मुए' कहकर गाली देती थी। शेर यह है—

रफतम बतमाशाए किनारे जूए— दीदम ब लबे आब जने हिंदूए।
गुफतम् सनमा बहाए जुल्फत चे बुवद—फरियाद बर आवुर्द कि 'दुर दुर मूए'॥

अर्थात् मैं एकदिन पानी के किनारे सैर करने गया। वहाँ तट पर मैंने एक हिंदू महिला को देखा। मैंने उससे कहा कि तेरे केश कितने सुंदर हैं। इस पर उसने चिल्लाकर कहा कि दुर दुर मुए।

वही पहला मुसलमान नरेश था जिसे अपने राज्य की रक्षा के लिए रामदेव जैसे समर्थ नरेश ने स्वेच्छया अपनी पुत्री प्रदान की थी। उसके बाद और अकबर के पहले तक जितने सुल्तान दिल्ली के तख्त पर आरूढ़ हुए वे केवल हिंदू राजाओं को नष्ट भ्रष्ट कर उनकी स्त्रियों को यदि किसी कारण वे आत्मघात न कर सकीं तो पकड़ लाते थे और क्रीतदासी के समान उनके साथ अत्यंत अपमानजनक व्यवहार करते थे।[1] आगे चलकर अलाउद्दीन की अपेक्षा अधिक उदार भावना से अकबर ने राजपूत नरेशों से वैवाहिक संबंध स्थापित करने की परंपरा चलाई और यह परंपरा संवत् १६२७ से ही चली[2] जबकि कालिंजर विजय के बाद अकबर की सैनिक धाक ऐसी जमी कि सन् १५७० अर्थात् संवत् १६२७ में बीकानेर और जैसलमेर के राजाओं ने अकबर के समक्ष घुटना ही नहीं टेका बल्कि अपनी लड़कियां भी उसे ब्याह दीं। अकबर की चलाई हुई उक्त परंपरा फर्रुखसियर तक अबाध गति से चलती रही यह इतिहास का एक साधारण विद्यार्थी भी जानता है। ऐसी स्थिति में मेरी यह धारणा शायद सही है कि प्रस्तुत ग्रंथ की रचना संभवतः नजीर के रूप में ही की गयी थी। प्रस्तुत धारणा को इस तथ्य से और भी बल प्राप्त होता है कि छिताई वार्ताकारों ने अलाउद्दीन को सहृदय

१—सुल्तान मुहम्मद तुगलुक के ईदी दर्बारों का विवरण प्रस्तुत करता हुआ इब्ने बतूता लिखता है कि 'सर्वप्रथम काफिर राजाओं की पुत्रियां जो उस वर्ष युद्ध में बंदी बनाई जाती हैं, आकर नाचती गाती हैं। तत्पश्चात् वे अमीरों तथा मुख्य परदेशियों को प्रदान कर दी जाती हैं। इसके उपरांत अन्य काफिरों की पुत्रियां आकर नाचती गाती हैं। जब वे नाच गा चुकती हैं तो सुल्तान उन्हें अपने भाइयों, संबंधियों, मलिकों के पुत्रों आदि को दे देता है।'

—तुगलुक कालीन भारत भाग १ पृ० १८९।

२—दि आकुपेशन ऑफ कालिंजर ग्रेटली स्ट्रेन्थेंड अकबर्स मिलिटरी पोजीशन ऐण्ड मार्क्स ऐन इमपोर्टेन्ट स्टेप इन दि प्रोग्रेस ऑफ मुगल इंपीरियलिज्म। इन १५७० रूलर्स ऑफ बीकानेर ऐंड जैसलमेर नौट ओनली सबमिटेड टु दि मुगल एंपरर बट् औलसो गेव देयर डौटर्स इन मैरेज टु हिम।—मेडिवल इंडिया (डा० आर० सी० मजूमदार, डा० एच० सी० राय और डा० के० के० दत्त)।

भी चित्रित किया है और काल विरुद्ध यह भी दिखाने का क्रांतिकारी साहस किया है कि एक हिंदू राजकुमार की पत्नी एक मुसलमान सुल्तान की बेगम बनने के बाद पुनः अपने पूर्व पति की पत्नी बन सकती है। परंतु आचार्य केशवदास ने जहाँ छिताई प्रसंग का उल्लेख किया है वहाँ उन्होंने अलाउद्दीन का मजाक उड़ाया है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि जहाँ राजस्थानी कवि अलाउद्दीन के चरित्र पर चूना फेरने का प्रयत्न करते प्रतीत होते हैं वहीं बुंदेलखंडी केशव यह कहते हैं कि 'साहि छिताई को ले जाइ, बिहना फूल्यो अंग न माइ।' बेहना निम्नस्तर के मुसलमानों जैसे धुनियां, जुलाहा आदि को कहा जाता है।[1] अतः जैसे यह कह कर किसी का उपहास किया जाता है कि 'छछूंदर के माथे चमेली का तेल' वैसे ही केशव का कथन है कि 'बिहना फूल्यो अंग न माइ।' विधर्मी और विजातीय को कन्या देने के संबंध में राजस्थानी और शेष भारतीय कवियों के दृष्टिकोण का यह अंतर भी हमारी धारणा की पुष्टि करता है कि छिताई संबंधी काव्य नजीर के रूप में ही प्रस्तुत किए गए।

स्थान काल पात्र की परिकल्पना के स्रोत

यदि यह माना जाय कि कवि नारायणदास और रतनरंग ने छिताई और देवगिरि का परिचय जायसी से प्राप्त किया तो यह भी मानना पड़ेगा कि अलाउद्दीन जैसे प्रसिद्ध सुल्तान के संबंध में फैली हुई जन वार्ता से उसके मुख्य सरदारों जैसे उलुघ खां और नुसरत खां के विषय में भी जानकारी प्राप्त की होगी और लोक प्रचलित किसी जनप्रिय कथा से ढांचा तैयार कर प्रस्तुत काव्य की रचना की। काव्य में जिन अन्य तुर्क सरदारों के नाम आये हैं वे सब काल्पनिक हैं! अलाउद्दीन के गण्यमान्य सरदारों और दरबारियों की पूरी सूची उपलब्ध है और उस सूची में उल्लिखित उलुघ और नुसरत नामों को छोड़कर और कोई नाम छिताई वार्ता में नहीं मिलता।

राघवचेतन

उक्त कविद्वय राघवचेतन के लिए भी संभवतः जायसी के ही ऋणी हैं। यह तो संयोग की बात है कि इतिहास में एक स्थान पर रामदेव और उसके पुत्र के नाम के साथ राघव नाम भी आ गया है। इसके अतिरिक्त जायसी

१—प्रसिद्ध कहावत है कि 'तुरकौ भये तो बेहना।'

के पूर्व राघव चेतन नाम का प्रयोग शायद काव्य में किसी ने नहीं किया था। छिताई वार्ता में प्रयुक्त हो जाने के बाद तो पद्मिनी विषयक काव्यों में राघव चेतन नाम को आशातीत प्रमुखता प्राप्त हुई। काल्पनिक पात्र की इससे अच्छी पहचान और क्या हो सकती है कि जो भी उसके बारे में लिखे कुछ नयी ही लिखे। राघव चेतन के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ है जैसे—

(१) उसे जायसी ने वामाचारी यक्षिणी साधक सिद्ध किया है[1] और बताया है कि अपनी उक्त साधना के बल पर वह छोटा मोटा चमत्कार भी दिखा दिया करता था।[2]

(२) छिताई वार्ताकार यह मान कर चले हैं कि जायसी द्वारा प्रसारित पद्मिनी संबंधी घटना अलाउद्दीन के देवगिरि अभियान के पहले ही घट चुकी थी। अतः स्वभावतः उन्होंने यह भी मान रखा होगा कि राघवचेतन ने सुल्तान अलाउद्दीन के पास पद्मिनी के रूप कावर्णन किया था और चित्तौड़ की चढ़ाई में भी वह अलाउद्दीन के साथ ही रहा अतः उस समय भी वह उसी के पास रहा होगा। इसी आधार पर नारायणदास और रतनरंग ने उसका चित्रण अलाउदीन के 'दलाल' के रूप में किया है।

(३) गोरा बादल की बात के रचयिता परवर्ती कवि जटमल नाहर ने यह कल्पना की है कि वह सिंघल से राजा के साथ आया था। वह कला कुशल था। एक बार जब राजा शिकार खेलने गया तो वहीं राघव चेतन ने पद्मिनी जैसी एक पुतली बनाई और उसकी जाँघ पर तिल भी बनाया जो वास्तव में पद्मिनी की जांघ पर भी था। यह देख राजा को उस पर संदेह हुआ और उसने उसे निकाल दिया। वह दिल्ली चला गया।

(४) पद्मिनी चरित्र अथवा गोरा बादल रण जय (रचना काल सं० १७०७) का लेखक लालचंद लब्धोदय (लब्धोदय) सबसे विलक्षण बात कहता है। उसके वर्णन से नहीं, एक स्थल पर स्पष्ट कथन से प्रतीत होता

१—राघव पूजि जाखिनी, दूइज देखाएसि सांझ।
बेद पंथ जे नहिं चलहिं ते भूलहिं बन मांझ॥

२—राघव दिस्टिबंध कबिह खेला।
सभा मांझ चेटक अस मेला॥

है कि राघव और चेतन दो[1] व्यक्ति थे। दोनों कथावाचक व्यास थे। उनका राजा ने बड़ा संमान किया और आज्ञा दी कि राजमहल में आकर तथा महिला-महल (रनिवास-अंतःपुर) में जाकर वे महाभारत की कथा सुनाया करें। एक दिन जब राजा पद्मिनी के पास क्रीड़ारत था उसी समय राघव वहाँ बिना सूचना दिए चला गया और इसी अपराध पर दरबार से निकाल दिया गया।

कहने का तात्पर्य यह कि राघव चेतन विषयक प्रथम कल्पना जायसी की प्रतीत होती है जो उनके पद्मिनी प्रवाद के साथ ही फैली है।

मोल्हन

छिताई वार्ता में राघवचेतन के साथ एक मोल्हन भी दौत्य करते हुए मिलते हैं। जायसी ने इसके नाम का प्रयोग नहीं किया है परंतु पंद्रहवीं शताब्दी में नयचंद्रसूरि नामक एक जैन कवि ने संस्कृत में हम्मीर महाकाव्य की रचना की। उसमें राणा हम्मीर के पास अलाउद्दीन के सेनापतियों उलुघ खाँ और नुसरत खाँ द्वारा प्रेषित दूत का नाम 'मोल्हन देव[2]' दिया है। स्पष्ट है कि छिताई-वार्ताकारों को 'मोल्हन' नाम उक्त हम्मीर महाकाव्य से ही मिला जिससे पुनः संवत् १६०२ में हम्मीरहठ लिखते समय चंद्रशेखर वाजपेयी ने 'मोल्हन' नाम प्राप्त किया। उन्होंने छिताई वार्ता से यह नाम नहीं प्राप्त किया। इसका प्रमाण यही है कि अलाउद्दीन की मरहट्ठी बेगम के बारे में जानकारी रखते हुए भी वे उसके नाम के बारे में अनभिज्ञ थे और उसका प्रयोग नहीं किया।

देवल देवी

छिताईवार्ता में पद्मिनी संबंधी अपनी विफलता का उल्लेख करता हुआ अलाउद्दीन यह भी कहता है कि—

१—राघव चेतन दोइ बसे चित्रकोट में व्यास।
रात दिवस विद्या तर्णोऽधिको कुछै अभ्यास॥
राजा मान दियो घणो भारत बांचैं आय।
राजलोक में रात दिन महिलअ महलै जाय॥

२—मते मतेऽत्रानुमतेमुनापि श्री मोल्हणं प्राग् विधिनानुशास्य
दिदेश संधानकृते हमीर राज्ञः समीपे कितवः प्रयातु॥
—हम्मीर महाकाव्य। सर्ग ११, छंद-२२।

रिणथंभौर देवै लगि गयौ
मेरो कामु न एकौ भयौ

अर्थात् देवल देवी को प्राप्त करने के लिये मैं रणथंभौर गया परंतु वहाँ भी मैं कार्य साधन में विफल रहा। यहाँ 'देवै' से तात्पर्य देवल देवी ही है यह पाठान्तर में दिये गये 'देवल' शब्द से भलीभाँति प्रकट हो जाता है। साथ ही रणथंभौर का उल्लेख उक्त देवल देवी को इतिहास प्रसिद्ध गुजरात नरेश कर्ण की पुत्री देवल देवी से पृथक् कर देता है। दूसरी ओर गुजरात की देवल देवी के संबंध में इतिहास जितना ही अधिक मुखर है उससे कहीं अधिक रणथंभौर वाली देवल देवी के संबंध में मौन। यह मौनता इतनी गंभीर है कि वह प्रमाणित कर देती है कि रणथंभौर की देवल देवी कोई ऐतिहासिक व्यक्तित्व न होकर किसी कवि की कल्पना ही है। मध्यकालिक भारतीय इतिहास में जहाँ जहाँ रणथंभौर का उल्लेख हुआ है उस प्रसंग में देवल देवी का उल्लेख कहीं नहीं किया गया। इतिहास बताता है कि सन् १३०१ ई० में अलाउद्दीन ने रणथंभौर पर चढ़ाई की थी। डाक्टर किशोरीशरणलाल ने उक्त चढ़ाई के कुल चार कारणों का उल्लेख किया है; जैसे—

(१) वह दिल्ली के समीप था। अमीर खुसरो ने लिखा है कि दिल्ली से रणथंभौर तक दो सप्ताह की यात्रा थी।

(२) अलाउद्दीन का चाचा सुल्तान जलालुद्दीन रणथंभौर की चढ़ाई में विफल हो चुका था।

(३) वह अजेय दुर्ग समझा जाता था और

(४) अलाउद्दीन के दो मुगल सरदारों मुहम्मद शाह और उसके भाई खेब्रू ने जालोर में विफल विद्रोह का नेतृत्व करने के बाद रणथंभौर के राणा हम्मीर के यहाँ शरण ली थी। मुसलिम इतिहासकारों के अनुसार रणथंभौर पर चढ़ाई का यही सर्वप्रधान कारण था*।

ऐसी स्थिति में रणथंभौर की काल्पनिक देवल देवी का पता काव्यों में खोजना चाहिये। हम्मीरहठ के रचयिता चंद्रशेखर वाजपेयी ने भी अलाउद्दीन द्वारा हम्मीर से 'दंड सहित देवल कुमारि' की जो माँग कराई अथवा नारायणदास ने देवल देवी के लिये रणथंभौर के विफल घेरे पर अलाउद्दीन

* एसामीका इतिहास फुतूहुस्सलातीन।

द्वारा जो विलाप कराया उसका स्रोत नयचंद्र सूरि का संस्कृत हम्मीर महाकाव्य है जिसमें देवल देवी का नाम दो बार आया है और जो राणा की पुत्री बतायी गयी है।* वही काव्य है जहाँ मोल्हन हम्मीर से देवल देवी की माँग उसी प्रकार करता है जैसे वह रामदेव से छिताई की माँग करता हुआ छिताईवार्ता में दिखाया गया है।[१] ऐसी स्थिति में विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि छिताई वार्ताकारों ने देवल देवी का नाम मोल्हन के नाम के साथ ही हम्मीर महाकाव्य से प्राप्त किया। जिसकी रचना संवत् १५४२ वि० में हुई।

चंद्रनाथ और चंद्रगिरि

चंद्रनाथ अवश्य ही ऐतिहासिक व्यक्ति हैं और पिछले खेवे के नाथ सिद्धों में उनका स्थान प्रतीत होता है क्योंकि मुख्य नाथ सिद्धों की सूची में उनका नाम नहीं मिलता और इसीलिए उनके बारे में जानकारी भी नगण्य सी ही है। आचार्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी 'नाथ सिद्धों की बानियाँ' नामक संपादित पुस्तक में एक स्थान पर चाँदनाथ का नाम दिया है। संभव है कि यही चाँदनाथ छिताई वार्ता के चंद्रनाथ हों। हैं वे नाथ योगी[२] ही इसमें संदेह नहीं क्योंकि आचार्य द्विवेदी जी ने उनके

---

* पुत्रीं देवल्ल देवीं च
दोर्भ्यामालिंग्य निर्भरं
नितरां निःश्वसन् क्रंदन
कष्टेन महता जहौ
—हम्मीर महाकाव्य, सर्ग १३–१८२

(१) हम्मीर ! राज्यं यदि भोक्तु मीहा
तत्स्वर्णलक्षं चतुरो गजेंद्रान्।
अश्वौरसानां त्रिशतीं सुतां च
दत्वा किरीटी कुरु नो निदेशं॥
—हम्मीर महाकाव्य, सर्ग ११–६०

२—डा० संपूर्णानंद द्वारा संपादित डाक्टर बड़थ्वाल के योग प्रवाह नामक लेखों की संकलित पुस्तक में एक स्थल पर लिखा है कि जटा रखना, भभूत रमाना, दंड कमंडलु धारण करना, कानों में मुद्रा पहरना, आड़बंद

संबंध में लिखा है कि 'चाँदनाथ संभवतः वह प्रथम सिद्ध थे जिन्होंने गोरक्षनाथ को स्वीकार किया था। इसी शाखा के नाग नाथी और पारस-नाथी नेमिनाथ और पार्श्वनाथ नामक जैन तीर्थंकरों के अनुयायी जान पड़ते हैं।'

श्री द्विवेदी जी के उक्त उल्लेख का ध्यान रखते हुये जब हम चंद्रगिरि की खोज करते हैं तो हमें अनेक चंद्रगिरि मिलते हैं और सब दक्षिण भारत[१]

और कौपीन धारण करना, मृगछाला रखना आदि आदि बातें उसमें उल्लिखित हैं जिनका योगियों के व्यवहार और वेष से संबंध है।—पृ० ९

उधर छिताई वार्ता में चंद्रनाथ का शिष्य होने पर सौंरसी जो वेश धारण करता है उसका वर्णन निम्नलिखित है—

मुद्रा स्रवननि खरे सुढार
चमकहिं चंद्रकांत आकार
जटा बांधि सिर खप्परु धर्‍यो
मानहु गोपचंदु अवतर्‍यो
पहिरी कठिन बज्र कोपीन
सोहै कंध दक्खिनी बीन
उज्ज्वल कोमल अंग विभूति
जटा जूट बांध्यो सिर सूति।

१—महिसुर राज्य के अंतर्गत हासन जिले के श्रवणबेलगोल नामक स्थान से उत्तर की ओर स्थित एक पर्वत। इस पर्वत की ऊँचाई ३०५२ फुट है। कन्नड़ भाषा में इसे त्रिक्कबेट्ट कहते हैं। चंद्रगिरि के नाम की सार्थकता लोग इस प्रकार बतलाते हैं—'इस पर्वत पर चंद्रगुप्त मुनि ने अपने गुरु भद्र-बाहु स्वामी की चरणपादुका की निरंतर सेवा करके ऐहिक लीला परिसमाप्त की है, इसलिए उनके चिरस्मरणार्थ ही इसके नाम में 'चंद्र' जोड़ दिया गया है।'

चंद्रगिरि भारतीय आदर्शभूत शिल्प कला से रचित अनेक जैन मंदिरों और विकसित कमलों से सुशोभित सुंदर सरोवर आदि से बहुत ही रमणीय है।...दक्षिण द्वार से प्राकार में घुसने पर बहुत से जैन मंदिर मिलते हैं। प्रथम ही मानस्तंभ तथा उसके पास ही महिषासुर नरेश द्वारा सुरक्षित और प्रस्तर—प्राचीरावगुंठित एक शिलालेख है। मिस्टर लुइस राइस साहब ने

में ही। इनमें भी दो चंद्रगिरि मुख्य हैं जिनमें से हासन जिलेवाला चंद्रगिरि जिसपर पार्श्वनाथ और नेमिनाथ के मंदिर भी हैं, छिताईवार्ता का चंद्रगिरि प्रतीत होता है जिस पर चंद्रनाथ योगी का निवास था।

भाव और भाषा

गुरुवर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने पद्मावत काव्य का आधार कोई लोक कहानी बताया था। उनके कथन का तात्पर्य यह था कि पद्मिनी और सुग्गे की कोई कहानी उस समय लोक में प्रचलित थी जो अब भी अवध में कही सुनी जाती है। उस कहानी में पद्मिनी शब्द जातिवाचक था जिसे जायसी ने व्यक्तिवाचक बनाकर ऐतिहासिक चौखटे में उक्त कहानी की तसवीर जड़ दी। अतः प्रश्न स्वाभाविक है कि जैसे जायसी ने एक लोक-विश्रुत कथा के आधार पर अपना काव्य रचा क्या वैसे ही नारायणदास के आगे भी कोई लोक कथा थी जिस पर ऐतिहासिक घटना का आरोप कर उन्होंने छिताई वार्ता का निर्माण किया।

इधर छिताईवार्ता में मुख्य विलक्षण बात यह दिखाई देती है कि अलाउद्दीन ने छिताई को पाकर भी सौरंसी के वाद्य वादन पर मुग्ध होकर उसे छिताई लौटा दी। शत्रु के हाथ पड़ी हुई अपनी प्रिया का उद्धार तो असंख्य लोक कथाओं का विषय रहा है परंतु कोई ऐसी कथा साधारणतया नहीं दिखाई पड़ती जिसमें किसी बलशाली ने बलपूर्वक किसी की प्रेमिका अपहृत कर ली हो और आगे चलकर उस प्रेमी के गाने बजाने पर रीझकर उसकी प्रेमिका उसे लौटा दी हो। परंतु संयोगवश एक लोक कथा हमें ऐसी अवश्य मिलती है जिसमें हूबहू यही बात दिखाई गयी है।

इसका आविष्कार किया है। इसमें लिखा है कि जब बारह वर्ष का दुर्भिक्ष पड़ा था तब भद्रबाहु स्वामी और उनके शिष्य चंद्रगुप्त महाराज ने मुनिसंघों के साथ रहकर समाधिमरण पूर्वक इसी (चंद्रगिरि) पर्वत पर अपने विनश्वर शरीर को छोड़ा है।

उपर्युक्त शिलालेख के उत्तर भाग में पार्श्वनाथ तीर्थंकर का पूर्वाभिमुख एक विशाल मंदिर है। इसके पास ही अशोक द्वारा निर्मित दो मंदिर हैं— एक अत्यंत रमणीय भारतीय शिल्पकला की अद्भुत प्रतिष्ठा की रक्षा करने वाला एक मंदिर है। इसमें नेमिनाथ तीर्थंकर की प्रतिमूर्ति विराजमान है।

—हिंदी विश्वकोष, ७वां भाग।

लोक कथाएँ प्रायः परंपरागत और मौखिक होती हैं। उनका मूल रूप प्रायः देशव्यापी होता है जो स्थानिक विशेषताओं के कारण प्रत्येक प्रदेश में थोड़ा परिवर्तित हो जाता है। भारतीय भाषाओं में लोक कथाओं के जो संग्रह इधर प्रकाशित हुए हैं उनके तुलनात्मक अध्ययन से यह तथ्य प्रकट हो जाता है। इधर हमारी हिंदी में एक तो लोक कथाओं का संग्रह ही कम हुआ है, दूसरे जो संग्रह हुआ भी है वह अत्यंत प्रचलित लोककथाओं का जिन्हें संग्राहकों ने किसी आयास के बिना ही संग्रह कर लिया है।

परंतु बंगाल में लोगों ने बाकायदे ऐसी लोक कथाओं का सायास संग्रह किया है। ऐसे लोगों में स्व० डा० दीनेशचंद्र सेन का नाम बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होंने ऐसी कथाओं का एक संग्रह 'बांग्लार पुरनारी' नाम से प्रकाशित किया था। उसमें अवश्य एक कहानी ऐसी मिलती है जिसका सारांश निम्नलिखित है—

किसी समय एक अंधा तरुण वंशीवादक सरिता तट पर खड़ा वंशी बजा रहा था। वह कांचन वर्ण था। उसकी वंशी ध्वनि सुनकर सभी मोहित हो उठे, यहाँ तक कि उस नगर की राजकन्या की इच्छा हुई कि वह उस अंधे तरुण पर अपना सर्वस्व निछावर कर उसकी चरण दासी बन जाय। राजा भी वंशी-ध्वनि सुनकर जाग उठे। वंशी ने उन्हें भी पागल बना दिया था। उन्होंने पता लगाने के लिए आदमी भेजा जिसने आकर उत्तर दिया कि कामदेव जैसा सुंदर एक तरुण वंशी बजा रहा है परंतु वह अंधा है और भिक्षा द्वारा पेट पालता है। राजा ने बुलाकर अंधे युवक को दो कामों पर नियुक्त किया। एक यह कि नित्य प्रातःकाल तुम मुझे वंशी बजाकर जगाया करो और दूसरा यह कि राजकन्या को भी वंशीवादन सिखा दो। समय पाकर राजकुमारी का विवाह हो गया परंतु वह उस अंधे युवक को भूल न सकी। अंधा युवक भी राजकुमारी के पिता का राज्य छोड़कर उसके पति के राज्य में पहुँचा और घूम घूम कर वंशी बजाने लगा। उसकी वंशी ध्वनि सुनते ही राजकुमारी जान गई कि उसका प्रिय अंधा युवक आ गया है। युवक के वंशी वादन से राजकुमारी का पति भी अत्यंत प्रभावित हुआ और उसने राजकुमारी से कहा कि तुम जो कहो वही मैं इसे दूँ। इस पर राजकुमारी ने उससे त्रिवचन लेने के बाद कहा कि तुम मुझे ही इसे प्रदान कर दो। वचनबद्ध राजा ने वैसा ही किया और राजकुमारी अपने प्रिय के साथ चली गयी।

उक्त कथा चौदहवीं शताब्दी में बंगाल में प्रचलित थी[1]। अतः संभव है कि चौदहवीं शताब्दी के बंगाल में प्रचलित उक्त लोक कथा किसी न किसी रूप में शेष भारत में भी प्रचलित रही हो और नारायणदास ने उसी का सदुपयोग किया हो।

जहाँ तक छिताईवार्ता की भाषा का प्रश्न है वह उतनी पुरानी प्रतीत नहीं होती जितनी कि समझी जा रही है। प्रतीत होता है कि कवि की अक्षमता और राजस्थानी प्रभाव ने मिलकर इस भ्रम की सृष्टि की है कि छिताईवार्ता की भाषा वीरगाथाकालिक और रीतिकाल की भाषा के बीच की कड़ी है। शब्दों के जो प्राकृत और अपभ्रंश रूप मिलते हैं वे राजस्थानी कवियों की उस प्रवृत्ति के द्योतक हैं जिनसे वे आज भी पूरी तौर पर छुटकारा नहीं पा सके हैं। ऐसी स्थिति में केवल एकाधिक कारकों के साथ 'ह' विभक्ति के प्रयोग और पयाल, सूको, क्रम, दारिउं, रयन जैसे शब्दों के आधार पर भी छिताई-वार्ता को जायसी से पूर्व की रचना सिद्ध करना बहुत कठिन होगा क्योंकि दारिउं का प्रयोग तो स्वयं जायसी ने भी अनेक स्थलों पर किया है[2]। राजस्थानी कविगण ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी तक अपभ्रंश-भाषा शैली का प्रयोग करते रहे हैं। पाताल का शुद्ध प्राकृत रूप पायाल[3] है और उन्नीसवीं शताब्दी के राजस्थानी महाकवि सूर्यमल्ल ने अपने वंशभास्कर में

१—गानटि जे भावे आमरा पाइतेछि ताहाते मने हय इहा चंडीदासेर किछू परवर्ती किंतु खूब परवर्ती नहे, ताहार प्रमाण भाषाय। इहार मध्ये जे सकल कथा ओ कवितार अंश दृष्ट हय ताहा चतुर्दश शताब्दीर शेष भागे बांगला साहित्ये प्रचलित छिलो। —पृ० २७३ बांगलार पुरनारी।

२—दारिउं बिंब देखि सुक लोभा।

या

उठी कोंप जस दारिउं दाखा।

अथवा

ऐसि चमक मुख भीतर होई। जनु दारिउं औ स्याम मकोई। आदि

३—पायाले मज्जन्तं खंधं दारुण भुअणमुद्धरिअं
तेण कमठेण सरिसं न य जाओ नेअ जम्मिहिई

—भोज का कूर्म शतक शिलालेख

पाताल के लिए पायाल शब्द का ही प्रयोग किया है[१]। शुष्क होने के अर्थ में सूकना[२] का प्रयोग भी वंश भास्कर में प्राप्त होता है। 'रतन' का 'रयन' तो नहीं परंतु 'गगन' के 'गैन'[३] रूप का प्रयोग सूर्यमल्ल ने धड़ल्ले से किया है। यही नहीं प्रभु के लिए 'पहु' और नगर के लिए 'नयर' भी उनकी रचना में स्थान स्थान पर मिलता है।[४] कर्म के अर्थ में 'क्रम' का प्रयोग भी उसमें है[५]। जैसे प्राकृत की हिंतों विभक्ति छिताईवार्ता में अनेक कारकों के साथ लगी दिखाई पड़ती है वही दशा वंशभास्कर में भी है।

छिताई वार्ता में 'ह' विभक्ति भिन्न भिन्न कारकों के साथ लगी मिलती है जैसे—

(१) अति सुख सुनि सुलितानह भयो (पृ० ५, छंद ७२)

(२) कहइ भरथरी मनह बिचारि (पृ० सं० २५, छंद २१६)

१—अभयसिहं अरु देव इत, कप्पि चलिय जिम काल।
सिर धरसत अजलोकसों, पय परसत पायाल॥
—सप्तम राशि द्वात्रिंश मयूख; छंद संख्या ५८।

२—मनहुँ ताल सुक्कैं जल मच्छे; हम नहिं गये छ सातक अंछे॥
—७म राशि अष्टत्रिंश मयूख छंद २

या

जिय भीरु मुक्किय क्यों बचैं सब नीर सुक्किय मच्छरी।
पृ० २४८४, छंद ७५

३—उड़ें गैन गिद्धी लगें पच्छ अग्गी—पृ० सं० ३२१७ छंद १०

४—घासीराम रसोरपति, पुत्तहि ग्रामक पंच।
दिय भूपति जयसिंह इत, पहु रचि नीति प्रपंच। २१
पुनि तजि पंचोलासकों, किय जयसिंह प्रयान।
प्रबिस्यो जैपुर निज नयर उद्धत विजय अमान। २५, ७ म राशि, पंचत्रिंशमयूख

५—चढि चल्लिय चहुवान छोरि बुंदिय छत्राधम
कोटा निबसथ मंगरोल तहं किय मुकाम क्रम। २४, ७ म राशि चतुस्त्रिंशमयूख।

उसी प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के सूर्यमल्ल ने भी किया है।[1] अतः इन आधारों पर जैसे नहीं कहा जा सकता कि सूर्यमल्ल भक्तिकाल के पूर्ववर्ती हैं वैसे ही यह भी नहीं कहा जा सकता कि छिताईवार्ताकार जायसी के पूर्ववर्ती हैं। रह गया स्थान स्थान पर 'न' की जगह 'ण' का प्रयोग। यह भी स्पष्टतः राजस्थानी प्रवृत्ति है। यही नहीं, आगे चलकर मुसलमान पात्रों से खड़ी बोली बोलवाने की जो प्रवृत्ति हिंदी में देखी गयी वह भी छिताई वार्ता में मौजूद है जैसे :—

(१) क्या क्या हुआ क्या होइगा (छंद २६२)
(२) मैं क्या कीना देवगिरि आइ (छंद ३२७)
(३) लाए भली दक्खिनी नारि (छंद ३२८)
(४) मैं भी कह्या आपने पेट, मेरा कह्या बना ही मेट (छंद ३६६)

एक बात और। कारण चाहे जो हो परंतु तथ्य यही है कि उद्भावना की जो मौलिकता संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में देखी गयी उसका हिंदी में प्रायः अभाव रहा है।

संस्कृत उक्तियों का शाब्दिक अथवा छायानुवाद करने का शौक वीरगाथा काल के बाद हिंदी में बेतरह बढ़ता गया। तुलसी का रामचरित मानस ऐसी अनुवादित उक्तियों से भरा पड़ा है और रीतिकाल में भी घनानंद और देव को छोड़कर, यद्यपि इन दोनों में भी संस्कृत उक्तियों की छाया कहीं कहीं आ गयी है, प्रायः शेष सभी कवियों ने संस्कृत उक्तियों का अत्यधिक अनुवाद किया है। हम साश्चर्य देखते हैं कि यही प्रवृत्ति छिताई वार्ता के लेखकों में भी है। जैसे जायसी ने नखशिख वर्णन में प्रायः संस्कृत नखशिख की छाया[2] ग्रहण की है और कहीं कहीं संस्कृत श्लोकों

१—उब्भिन्न नाम बिंदुमति ग्रामह
आय उहाँ बिरचिय विस्रामह (सप्तम राशि, ३४ मयूख, छंद २७)
दंतिय गंड्ढेराव सुदत्तह
मास रहत बारह मयमत्तह (सप्तम राशि, ३७ मयूख, छंद ४०)
बहुरि देवसिंहह बढ्यो (सप्तम राशि, यत्रस्त्रिंशमयूख, छंद १५३)

२—आचार्य शुक्ल लिखित जायसी ग्रंथावली की भूमिका।

का सीधा अनुवाद सा कर दिया है,[१] ठीक उसी प्रकार छिताई वार्ता में भी मौलिक उद्भावनाओं का दयनीय अभाव और संस्कृत की परंपरा के पालन का प्रयास पग पग पर दृष्टिगोचर होता है। इस संबंध में कतिपय उदाहरण अप्रासंगिक न होंगे जैसे—

(१) सरद सोम ससि (सम) बदन प्रकास
(संपूर्णशारद सुधाकर कांत वक्त्रा)
(२) मदन चाप सम भुंहइ (भौंहइ) तासु
(काम कार्मुकतया कथयंति भ्रूलतां)
(३) मृग सावक सम सोहइ लोल
(नतभ्रुवो लोचन कृष्णसारौ)
(४) उपइ (ओपइ) कंचन तिसो कपोल
(लावण्यं ललतीव कांचन शिला कांते कपोलस्थले)
(५) कुटिल केस सिर सोहइ बाल
कच काँवरि (कोंबर) जनि मधुकर माल
(विकच कच कलापः किंचिताकुंचितोऽयं
कुच कलश निवेशी शोभते श्यामलाद्या:
मधुरसपरितोषात् किंचिदुत्फुल्लकोशे
कमल इव निलीनाः पेटकाः षट्पदानां)
(६) अति सरूप सीता कौ हरण
अधिक विषै रावण कौ मरण
अधिक दान बलि गयौ पतार
अति कछुवै न भलो संसार।
(अति रूपेण वै सीता अति गर्वेण रावणः
अति दानाद्बलिर्बद्धो ह्यति सर्वत्र वर्जयेत्)

१—साम भुअंगिनि रोमावली। नाभी निकस कंवल कहं चली।
आइ दुऔ नारंग बिच भई। देखि मयूर ठमकि रहि गई॥
इस श्लोक की छाया पर निर्मित है कि—
नाभी बिलान्तरविनिर्गत पन्नगीयं, संप्रस्थिता नयन खंजन भक्षणाय।
नासामुदीक्ष्य गरुडभ्रममुद्वहन्ती गुप्तेव पीनकुच पर्वतयोरधस्तात्॥

और तो और, हम साश्चर्य यह भी देखते हैं कि नरहरि के जिस छप्पय पर[1] अकबर द्वारा गोबध बंद कराने की बात कही जाती है उसका भाव भी मृगों के वध के प्रसंग में छिताईवार्ता में मौजूद है जैसे—

जो दंतन त्रिन बयरी गहै
तिनहि संत आयसु इम कहै
ए त्रिण चरइ बसइ उद्यान
बिन अपराध बधइ अग्यान

(पृ० सं० २५, छंद २१४)

अतः इस निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए सभी को विवश होना पड़ेगा कि जब तक पद्मिनी वाला प्रकरण निर्भ्रांत भाव से छिताईवार्ता में प्रक्षिप्त सिद्ध नहीं कर दिया जाता या जब तक किसी नयी सामग्री के बल पर छिताईवार्ता की प्राचीनता को सिद्ध करने वाले अकाट्य प्रमाण नहीं मिल जाते तब तक उसे पद्मावत से पहले की रचना मानना बड़ा ही कठिन है।

प्रस्तुत पुस्तक का संपादन—कार्य पूर्ण कर लेने के बाद डाक्टर माताप्रसाद गुप्त को श्री अगरचंद नाहटा से छिताई वार्ता की कोई और प्रति प्राप्त हुई है। डाक्टर गुप्त का कथन है कि उस प्रति में जिस संवत का उल्लेख है उससे प्रमाणित हो जाता है कि उनकी यह धारणा सर्वथा सही है कि छिताई वार्ता की रचना पद्मावत से पहले हुई थी। उक्त प्रति मैंने नहीं देखी है अतः मैं इससे अधिक और कुछ कहने की स्थिति में नहीं हूँ कि यदि उस प्रति में भी पद्मिनी के लिए चित्तौड़ पर अलाउद्दीन की चढ़ाई का उल्लेख है तो उस प्रतिपर उल्लिखित संवत् की छान-बीन बड़ी ही सावधानी से करने की आवश्यकता है कारण समूची पुस्तक में एक भी ऐसा वाह्य या आभ्यन्तर साक्ष्य नहीं है जो उसे पदमावत से पहले की रचना सिद्ध कर सके। दूसरी ओर पुस्तक में ऐसे निषेधात्मक प्रमाण अवश्य हैं

१—अरिहु दंत तिनु धरत ताहि नहिं मारि सकत कोइ
हम संतत तिनु चरहिं वचन उच्चरहिं दीन होइ
अमृत पय नित स्रवहिं बच्छ महिथंभन जावहिं
हिंदुहिं मधुर न देहिं कटुक तुरकहिं न पियावहिं
कह कवि नरहरि अकबर सुनौ बिनवति गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोहिं मारियतु मुएहु चाम सेवइ चरन॥

जो उसके प्रारंभिक मुगलकाल की रचना होने का संदेह उत्पन्न करते हैं। ऐसे निषेधात्मक प्रमाण मुख्यतया युद्ध और शाही शिष्टाचार के प्रसंग में मिलते हैं जैसे युद्धोपयोगी अस्त्रशस्त्रों में तीर, धनुष, गुर्ज, नेजा, तलवार और गुलेल का ही वर्णन है जिनका प्रयोग साधारणतया अंग्रेजों के आने के पहले तक भारत में होता रहा परंतु खिलजी काल में अत्यधिक उपयोग में आनेवाले मंजनीक[1], मगरबी[2]; साबात[3], गरगच[4]; पाशेब[5], आदि युद्ध के उपकरणों और यंत्रों का उल्लेख एक बार भी नहीं किया गया है। इसी प्रकार साहबे आलम और शाहे आलम शब्दों का प्रयोग प्रायः मुगल राजकुमारों और बादशाहों को संबोधित करने में किया जाता था। खिलजी और तुगलक काल में तो बादशाह को 'आखुंदे आलम' कहकर संबोधित करने की प्रथा थी। प्रस्तुत पुस्तक में अलाउद्दीन के लिये शाहे आलम का प्रयोग एकाधिकबार हुआ है परंतु आखुंदे आलम का एक बार भी नहीं। ऐसी स्थिति में प्रस्तुत पुस्तक का काल निर्णय हो जाने पर या तो इतिहास के हाथ कुछ लगेगा या साहित्य को कुछ प्राप्त होगा।

आभार-निवेदन

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ऐतिहासिक और साहित्यिक शोध की दृष्टि से 'छिताई-वार्ता' का अपना महत्व है। इस ग्रंथ के रचनाकाल का

---

१ मंजनीक—पत्थर आग तथा अन्य शीघ्र जलनेवाले पदार्थ फेंकने की एक मशीन।

२ मगरबी—इसके विषय में कोई ज्ञान नहीं। इसका अर्थ तोप भी बताया गया है किंतु संभव है इसके द्वारा आग तथा शीघ्र जलने वाले पदार्थ फेंके जाते हों।

३ साबात—एक प्रकार का ढँका हुआ मार्ग जिससे आक्रमणकारी बिना अधिक हानि के सुगमतापूर्वक किले पर आक्रमण कर सकते थे।

४ गरगच—एक प्रकार का चलता फिरता मचान जिसे ऊँचा करके किले की दीवार के बराबर कर दिया जाता था और किले पर आक्रमण करने की सुविधा होती थी। कभी कभी इसपर छत भी होती थी······।

५ पाशेब—मिट्टी का मचान जो किले की दीवारों की ऊँचाई के बराबर बनाया जाता था इस पर आग और पत्थर फेंकने वाली मशीनें रखी जाती थीं। —खिलजीकालीन भारत

निश्चय कर लेने पर ही ये महत्त्वपूर्ण निर्णय किये जा सकेंगे कि पद्मिनी प्रकरण ऐतिहासिक वृत्त है या नहीं और पदमावत की रचना पहले हुई या छिताईवार्ता की। अतः ऐसा ग्रंथ संपादित कर हिंदी जगत के सामने रखने के कारण डा० माताप्रसाद गुप्त हमारे अकृत्रिम साधुवाद के अधिकारी हैं। अत्यंत वैज्ञानिक ढंग से प्राचीन पुस्तकों का संपादन करने के लिए वे सुविख्यात हैं और प्रस्तुत ग्रंथ का सर्वाङ्गपूर्ण और अत्यन्त उपयोगी संपादन करने में भी उन्होंने जो कठिन परिश्रम किया है वह इस ग्रंथ के पन्ने पन्ने और शब्द शब्द से प्रकट है। मैं उन्हें पुनः पुनः हार्दिक बधाई देता हूँ और उनसे विनीत आग्रह करता हूँ कि वे इसी प्रकार समय के अंधकार में लुप्त और गुप्त काव्य रत्नों को प्रकाश में लाते रहें।

बिड़ला ग्रंथमाला में मेरे सहायक श्री कल्पनाथ सिंह यों तो मुझे बराबर सहायता देते रहे हैं परन्तु इस ग्रंथ का परिचय लिखने के लिए सामग्री एकत्र करने में इस बार उन्होंने सर्वाधिक श्रम किया है। एतदर्थ उन्हें भी साधुवाद।

(अंत में कवि नारायणदास और रतनरंग की स्मृति के प्रति भी श्रद्धा प्रकट करना चाहिये क्योंकि उन लोगों ने रामदेव की पुत्री के ऊपर भारतीय स्त्रियों के एकांत समर्पण की भावना आरोपित कर उसके काल्पनिक पति सौंरसी के प्रति उसके गंभीर और अविचल प्रेम का निरूपण किया। साथ ही ये लोग इसलिए भी धन्यवादार्ह हैं क्योंकि जायसी के ब्रह्मानंद निरूपक काव्य 'पद्मावत' के जोड़ पर इन्होंने विषयानंद निरूपक काव्य छिताईवार्ता प्रस्तुत किया और इस प्रकार एक प्रेम कहानी द्वारा लोगों को आनंदित करते हुए रसखान के इस वचन को सार्थक कर दिखाया कि—

आनँद अनुभव होत नहिं
बिना प्रेम रसखान।
कै वह ब्रह्मानंद कै
विषयानंद बखान॥

—रुद्र काशिकेय
प्रधान संपादक
बिड़ला ग्रंथमाला, ना० प्र० सभा,
काशी।

———

प्रस्तावना

हिंदी जगत् को जान कवि लिखित 'छीता कथा' कुछ पहले से ज्ञात थी, किंतु वह सं० १६९३ की रचना है। १९४१ ई० में प्राचीन हिंदी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज में काशी की नागरी प्रचारिणी को इलाहाबाद म्यूनिसिपल म्यूज़ियम में—जो अब प्रयाग-संग्रहालय कहा जाता है—किसी रतनरंग द्वारा रचित 'छिताई चरित' का पहले-पहल पता लगा, जो निश्चित रूप से जान की रचना से पहले की कृति थी, क्योंकि उसकी प्राप्त प्रति का लिपि-काल सं० १६८२ वि० था।

इसके कुछ ही पीछे प्रसिद्ध राजस्थानी विद्वानों श्री अगरचंद नाहटा तथा श्री भँवरलाल नाहटा को बीकानेर के खरतरगच्छीय जैन भांडार में किसी नारायणदास द्वारा रचित 'छिताई वार्त्ता' की एक प्रति प्राप्त हुई, जिसका लिपि-काल सं० १६४७ वि० था।

इन राजस्थानी विद्वानों ने 'छिताई वार्त्ता' शीर्षक देते हुए मई १९४२ ई० में 'विशाल भारत' में तत्संबंधी एक लेख प्रकाशित किया, जिसमें उक्त 'वार्त्ता' की कथा का सार देते हुए कहा कि रचना उसमें वर्णित घटना के लगभग ढाई सौ वर्ष बाद की है।

इसके अनंतर वैशाख सं० २००३ की 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में श्री बटेकृष्ण ने 'छिताई चरित' शीर्षक देते हुए इलाहाबाद म्युनिसिपल म्यूज़ियम में प्राप्त उक्त प्रति के आधार पर रचना की कथा का सार दिया और उसकी ऐतिहासकता पर विचार किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने उपर्युक्त राजस्थानी विद्वानों के लेख का उल्लेख करते हुए लिखा कि यद्यपि दोनों—अर्थात् 'छिताई वार्त्ता' और 'छिताई चरित'—की कथा एक ही है, दोनों दो भिन्न कवियों की रचनाएँ हैं।

इन लेखों में दिए हुए कथा-सार को पढ़ने के अनंतर दोनों में गहरा साम्य देखकर मेरी धारणा यह हुई कि तथाकथित दोनों रचनाएँ संभवतः एक ही रचयिता अथवा रचयिताओं की कृति हैं, अन्यथा उनमें से एक दूसरी

पर अत्यंत निकट रूप से आधारित है। रचना का ऐतिहासिक महत्व प्रकट ही था, उसकी प्रतियाँ भी बहुत पुरानी थीं—इतनी पुरानी प्रतियाँ हिंदी के ग्रंथों की इनी-गिनी ही प्राप्य हैं; इसलिए मेरा अनुमान यह भी हुआ कि रचना पुरानी होनी चाहिए—कम से कम इतनी पीछे की वह न होनी चाहिए जितनी पीछे की उसे उपर्युक्त राजस्थानी विद्वानों ने माना है। इन्हीं धारणाओं से प्रेरित होने के कारण मुझे उसके संबंध में कुछ और निश्चयात्मक रूप से कार्य करने की आवश्यकता प्रतीत हुई।

फलतः कुछ समय बाद, मैंने प्रयाग संग्रहालय से 'छिताई चरित' की प्रति माँग ली, और श्री अगरचंद नाहटा से 'छिताई वार्त्ता' की। दोनों का मिलान किया, तो देखा कि रचना एक ही है, दो रचयिताओं के नाम उसमें अवश्य आते हैं। अंतिम अंश मात्र दोनों प्रतियों में भिन्न है, अन्यथा दोनों प्रतियों में इतना ही अंतर है जितना प्राचीन ग्रंथों की विभिन्न प्रतियों में प्रायः मिलता है। ग्रंथ की भाषा पर जो मेरा ध्यान गया, तो मुझे यह प्रतीत हुआ कि वह कदाचित् हिंदी के भक्ति-युग के पूर्व की है और वह बहुत-कुछ 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा के निकट पड़ती है। अतः यह कृति मुझे अत्यंत उपादेय प्रतीत हुई।

मैंने यह पता लगाने की चेष्टा की कि इस रचना की कोई और प्रतियाँ भी कहीं हैं, या नहीं, किंतु ऐसी किसी अन्य प्रति का पता नहीं लग सका। यह पता इसलिए लगाने की आवश्यकता और भी हुई, कि दोनों प्रतियाँ आदि में खंडित हैं—जिसके कारण दोनों को मिलाने पर भी रचना के प्रथम ६१ छंद अप्राप्य हैं, और दोनों के अंतिम ८०-८५ छंद परस्पर सर्वथा भिन्न हैं। किंतु ऐसी किसी अन्य प्रति के न मिलने पर भी ग्रंथ की असाधारण उपादेयता के कारण उसका संपादन करना मैंने आवश्यक समझा, और उसी का परिणाम आपके संमुख है।

मैं अत्यंत कृतज्ञ श्री अगरचंद नाहटा का हूँ, जिन्होंने 'छिताई वार्त्ता' की उक्त प्रति बीकानेर के खरतर गच्छीय जैन भांडार से प्राप्त करके मुझे भेजी थी, और इसी प्रकार मैं प्रयाग-संग्रहालय के क्यूरेटर श्री सतीशचंद्र काला का भी अत्यंत कृतज्ञ हूँ, जिन्हों ने मुझे उसकी संग्रहालय प्रति इस कार्य के लिए प्रदान की थी। इसामी की फ़ारसी रचना से अनुवाद के लिए प्रयाग विश्व-विद्यालय के इतिहास के प्रोफ़ेसर और प्रसिद्ध विद्वान् डा० बनारसी प्रसाद

सक्सेना एम० ए०, पी-एच० डी० का आभारी हूँ। नागरीप्रचारिणी सभा का भी मैं कृतज्ञ हूँ कि उसने इस रचना को प्रकाशित करने का मेरा प्रस्ताव स्वीकार किया, और हिंदी जगत् को इस महत्वपूर्ण रचना के अध्ययन का अवसर प्रदान किया। संपादित पाठ तथा अर्थ में जहाँ-तहाँ कुछ भूलें रह गई हैं; पाठक उन्हें शुद्धि-पत्र देखकर कृपया ठीक कर लेंगे।

'छिताई वार्त्ता' की एक नवप्राप्त प्रति

हर्ष की बात है कि इधर रचना की एक और प्रति श्री अगरचंद नाहटा को उपलब्ध हुई है। यह प्रति यत्न करने पर भी अभी तक मेरे देखने में नहीं आई है। किंतु इस प्रति के आधार पर लिखे गए नाहटा जी के एक लेख का—जो गत १६ अप्रैल, १६५८ के 'मध्यप्रदेश संदेश' में प्रकाशित हुआ—आश्रय लेते हुए श्री हरिहर निवास द्विवेदी का एक लेख १० मई, १६५८ के 'मध्यप्रदेश संदेश' में प्रकाशित हुआ, जिसकी एक प्रति उन्होंने उसी समय मुझे भेजी थी; मेरे अनुरोध पर उन्होंने नाहटा जी के लेख की भी एक प्रति अब भेज दी है। इस दुहरी कृपा के लिए मैं द्विवेदी जी का आभारी हूँ। इन लेखों से जो नवीन तथ्य प्रति और कृति के संबंध में सामने आए हैं, नीचे उनका उल्लेख किया जा रहा है।

इस प्रति की पुष्पिका लेखों में नहीं दी गई है और न इसकी प्रतिलिपि के संबंध की कोई जानकारी ही दी गई है, इसलिए इन लेखों से यह नहीं ज्ञात होता है कि प्रति किसकी, कहाँ की और कब की लिखी हुई है। प्रति का पाठ पूर्ण है, यह अवश्य लेखों में कहा गया है।

इस प्रति के संबंध में स्वभावतः यह जिज्ञासा हो सकती है कि इसका संबंध रचना के पाठ की किसी स्वतंत्र शाखा से है, अथवा उसी शाखा से है जिसकी दो प्रतियाँ पहले से प्राप्त हैं। इस दृष्टि से इस प्रति के पाठ पर कोई विचार लेखों में नहीं किया गया है। जो उद्धरण इस प्रति से दिए गए हैं, उनमें से केवल बारह चरणों का एक उद्धरण ऐसा है जो पूर्व प्राप्त प्रतियों में से एक—श्री० (प्रयाग संग्रहालय की प्रति)—में मिलता है। अन्य उद्धरण उक्त प्रतियों के प्रारंभ में खंडित होने के कारण उनमें उपलब्ध नहीं है। इसलिये इस उद्धरण के आधार पर ही उक्त पूर्वप्राप्त प्रतियों के साथ इन नवप्राप्त प्रति के पाठ-संबंध पर विचार किया जा सकता है।

नवप्राप्त प्रति से दिया गया यह उद्धरण निम्नलिखित है और कहा गया है कि यह उसके छंद १०२१-१०२२ के रूप में आता है :—

रिपु दल गंजई भुवन असेसा । करइ राज सउंरसी नरेशा ॥
पोथी देखि नरायन बोला । कियौ समौ कंचन के मोला ॥
रतनरंग कवि कहइ विचारा । करी कथा सो अमियरि सारा ॥
जिउं दीपकु मंदिर बिनु गेहा । सायर सीप स्वाति ज्यूं नेहा ॥
जो यह कथा सुनउ दय काना । ता फलु गंगा होइ असनाना ॥
चरितु छिताई आयो छेउ । सब कहं जयो नरायन देउ ॥

ये पंक्तियाँ श्री० में ग्रंथ की समाप्ति पर छंद ७५५ के पूर्वार्द्ध तथा ७५७–७६० के रूप में इस प्रकार मिलती हैं[१] :—

रिपु दल भंजन भुवन असेस । करै राजु सौंरसी नरेस ॥७५५॥
कियौ समौ कंचन के तोल । ओछे देखि न रावर बोल ॥७५७॥
रतन रंग कवि देखि विचारि । कही कथा सो अम्रित सार ।
ज्यौं मंदिर दीपक बिनु ग्रेह । साइर सीपि स्वाति बिनु मेह ॥७५८॥
त्यौं बिनु कलस कथा आरंभ । लीनी वरणि कथा कवि रंग ।
इतनी कथा सुनै दै कान । तिनकौ फुरै गंग अस्नान ॥७५९॥
चरित छिताई आयौ छेउ । जयौ सकल मैं त्रिभुवन देउ ॥७६०॥

दोनों पाठों की तुलना करने पर निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं :—

(१) इस नवप्राप्त प्रति में श्री० ७५९ के निम्नलिखित चरण नहीं हैं :—

त्यौं बिनु कलस कथा आरंभ । लीनी वरणि कथा कवि रंग ।

प्रकट है कि ये चरण नवप्राप्त प्रति में भूल से छूटे हुए हैं, क्योंकि इन चरणों के न होने से नवप्राप्त प्रति में श्री० ७५८ के निम्नलिखित चरणों का कथन वाक्य-विधान की दृष्टि से अधूरा रह जाता है :—

जिउं दीपकु मंदिर बिनु गेहा । सायर सीप स्वाति ज्यूं नेहा ।

(२) इस नवप्राप्त प्रति में श्री० ७५८ के उत्तरार्द्ध का निम्नलिखित पाठ भी बहुत विकृत है :—

जिउं दीपकु मंदिर बिनु गेहा । सायर सीप स्वाति ज्यूं नेहा ।

१—दे० संपादित पाठ, पृ० १४९–१५० ।

विकृति इस सीमा तक पहुँच गई है कि पाठ प्रायः निरर्थक हो गया है। श्री० का निम्नलिखित पाठ यद्यपि सर्वथा त्रुटिहीन नहीं है, फिर भी उपर्युक्त की तुलना में कुछ अच्छा कहा जा सकता है :—

ज्यौं मंदिर दीपक विनु ग्रेह। साइर सीपि स्वाति विनु मेह।

शब्द-स्थापना की दृष्टि से तो यह उससे अच्छा है ही, सार्थक उक्ति-प्रयोग की दृष्टि से भी उससे अच्छा है—दोनों चरणों में 'विनोक्ति' अलंकार का सम्यक् निर्वाह हो जाता है। यद्यपि यह एक अनुमान ही है, किंतु कुछ आश्चर्य नहीं यदि श्री० के भी पूर्व का पाठ कुछ इस प्रकार रहा हो :—

ज्यौं दीपक बिनु मंदिर ग्रेह। साइर सीपि बिनु स्वाती मेह॥

(३) इस नवप्राप्त प्रति में चतुष्पदी के प्रायः सभी चरण १६ मात्राओं के हैं, जब कि श्री० में वे १५ मात्राओं के हैं। लेखों में प्रति से जो अन्य उद्धरण दिए गए हैं, उनमें भी चरण प्रायः १६ मात्राओं के हैं, जब कि पूर्वप्राप्त दोनों प्रतियों में समस्त चरण १५ मात्राओं के हैं। विचारणीय यह है कि दोनों में से कौन सी स्थिति मूल की है और कौन सी प्रक्षेपों का परिणाम है।

नवप्राप्त प्रति के ऊपर दिए हुए उद्धरण में ही जहाँ अन्यत्र भूत काल में क्रिया के 'औ' या 'ओ' कारांत रूप 'कीयौ' 'आयो' 'जयो' आदि आते हैं, प्रथम चरण के अंत में 'आ' कारांत रूप 'बोला' पाया जाता है। श्री० पाठ में यह त्रुटि नहीं है—और यहीं नहीं, कहीं भी खड़ी बोली की यह 'आ' कारांत प्रवृत्ति उसमें नहीं दिखाई पड़ती है। नवप्राप्त प्रति से जो अन्य पंक्तियाँ लेखों में उद्धृत की गई हैं, और जो बाद में यथाप्रकरण यहाँ भी उद्धृत हो रही हैं, उनमें भी छंद-विधा संबंधी यह प्रवृत्ति स्पष्ट है—छंद को १५ के स्थान पर १६ मात्राओं का करने के लिये चरण के अंतिम शब्द में एक मात्रा की वृद्धि की गई है, भले ही इस मात्रावृद्धि से शब्द का रूप इतना विकृत हो गया है कि वह या तो पहिचान में नहीं आता है और या तो भिन्न अर्थ देता है। नीचे ऐसे कुछ शब्दों को देते हुए चौकोर कोष्टकों में उनके उन रूपों को भी दिया जा रहा है जो संभवतः उनके पूर्व रहे होंगे :—

भइयो (छंद २६६) [<भयो]; लइयो (छंद २६६) [<लयो]; जाता (छंद २६८) [<जाति]; उतपाता (छंद २६८) [<उतपत्ति];

गइयो (छंद २७४) [<गयो]; भइयो (छंद २७४) [<भयो]; करिउं (छंद २७५) [<करिउ]; धरिउं (छंद २७५) [<धरिउ]; बादिसाही (छंद २७५) [<बादिसाहि]; निरबाही (छंद २७५) [<निरबाहि]; धीया (ग्रंथारंभ) [<धिया]; लीया (वही) [<लिया]; भईयो (वही) [<भयो]; खानां (वही) [<खानि]; दानां (वही) [<दानि] ।

इनमें से कुछ विकृतियाँ तो अत्यंत चिंत्य हैं : यथा 'जाति' के स्थान पर 'जाता', 'उतपत्ति' के स्थान पर 'उतपाता', 'बादिसाहि' के स्थान पर 'बादिसाही', 'खानि' के स्थान पर 'खानां' और 'दानि' के स्थान पर 'दानां'; विकृतियों के कारण शब्दों का रूप इतना परिवर्तित हो गया है कि वे भिन्न शब्द ही हो गए हैं ।

क्रियाओं का रूप भी इस प्रक्षिप्त मात्राधिक्य के कारण जितना बदला है, वह कुछ कम चिंत्य नहीं है : 'भयो' के स्थान पर 'भइयो' या 'भईयो', 'लयो' के स्थान पर 'लइयो', 'गयो' के स्थान पर 'गइयो',' करिउ' के स्थान पर 'करिउं' और 'धरिउ' के स्थान पर 'धरिउं' आदि भाषा के क्षेत्र में उच्छृंखलता के अच्छे उदाहरण हैं । कहा जा सकता है कि नवप्राप्त प्रति की भाषा की प्रवृत्ति ही क्रियाओं को यह रूप देती होगी, किंतु ऐसा भी नहीं है । यही क्रियाएँ जब चरणों में अन्यत्र आती हैं, वे अपने सहज रूप में आती है; वहाँ वे इस प्रकार विकृत नहीं होती हैं जैसी वे चरणों के अंत में हुई ऊपर दिखाई गई हैं; उदाहरणार्थ, बाद में आने वाले उद्धरणों में देखिए : करीउ (=करिउ, छंद २६७); हारिउ (छंद २७३); कियो (छंद २७४); भयो (ग्रंथारंभ), कीयो (ग्रंथारंभ); गयो (ग्रंथारंभ) ।

(४) ऊपर दिया हुआ उद्धरण क० (बृहद् ज्ञान भांडार, बीकानेर की प्रति) में नहीं है, केवल श्री० (प्रयाग-संग्रहालय की प्रति) में है इसलिए यह प्रकट है कि इस नवप्राप्त प्रति का पाठ श्री० की पाठ-परंपरा में है, क० की पाठ-परंपरा में नहीं है ।

(५) पुनः, जो बात सबसे अधिक ध्यान देने की है, वह यह है कि श्री० ७६० छंदों पर समाप्त हो जाती है, जब कि यह नवप्राप्त प्रति १०२२ छंदों पर होती है—जैसा हमने ऊपर देखा है । प्रकट है कि इस नवप्राप्त प्रति में

श्री० की तुलना में लगभग २६२ छंदों का आधिक्य है, जो इसी कारण संभव है कि नवप्राप्त प्रति श्री० की परंपरा में श्री० से नीचे की पीढ़ी में आती है। एक-दो छंदों का अंतर अन्य कारणों से भी संभव है, किंतु २६२ छंदों का यह अंतर दूसरे प्रकार से संभव नहीं है।

परिणामतः यह कहा जा सकता है कि इस नव प्राप्त प्रति का पाठ श्री० की परंपरा में उसके बाद की—कदाचित् बहुत बाद की—किसी पीढ़ी में आता है और वह सामान्य भूलों, अनजाने की हुई पाठ-विकृतियों, छंद-परिवर्तन के लिए किए गए प्रक्षेपों, जिन्होंने उसकी भाषा को भी विकृत कर दिया है, एवं पाठ-वृद्धि की पंक्तियों से भरा हुआ है। अतः जहाँ तक श्री० का पाठ प्राप्य है, वहाँ तक यह नवप्राप्त पाठ प्रायः अविश्वसनीय और अनुपयोगी है।

अन्यत्र दिखाया जा चुका है कि मूल रचना नारायण दास की थी, जिसमें रत्नरंग ने कुछ छंद-वृद्धि की।[1] ऊपर हमने देखा ही है कि यह नवप्राप्त प्रति श्री० की पाठ-परंपरा में आती है और वह भी उससे नीचे की—संभवतः बहुत नीचे की—पीढ़ी में, और श्री० की तुलना में इसमें लगभग २६२ छंद अधिक हैं। प्रश्न यह है कि ये २६२ छंद क्यों अधिक हैं। प्रति को पूरा देखे बिना यह कहना असंभव है कि इन २६२ छंदों का आधिक्य किन-किन कारणों से हुआ है, किंतु लेख में उद्धृत निम्नलिखित पंक्तियों से यह प्रकट है कि किसी देवचंद ने रचना को और अधिक पूर्ण बनाने के लिए पाठ-वृद्धि की है:—

आधी कथा सुनति सुख भइयो। हसि दिउचंद कवि बूझन लइयो ॥२६६॥
कहि कविदास ही धरि भाउ। जिसउ छिताई करीउ उपाउ।
सरस कथा मेरे जिय रहई। कीर्ति चलइ दमोदर कहई ॥२६७॥
काइथ वंश तमोरी जाता। गोवर गिरी तिनकी उतपाता।
तिनको बंध्यौ दिउचंदु आही। कही कथा सुख उपनौ ताही ॥२६८॥
धर्म नीति मारग विउचरही। बहुत भगति विप्रन की करही।
देवी सुत कवि दिउचदु नामु। जन्म भूमि गोपाचल गाऊं ॥२६९॥
जैसी सुनी खेमचंद पासा। तैसी कवियन कही प्रगासा॥
प्रथम नवनि गनपति कह होई। सुनि चउपही हसउ जनि कोई ॥२७०॥

१—दे० भूमिका, पृ० २१-२४।

जहां होई पदु अछर हानि। गुनी चतुर तुम लीजहु वानी॥
आधी कथा नराइन कही। संपूर्ण दिउचंदु उचारी॥२७१॥
जसु पत्रह कीरति लिख लेहु। पढ़बे करहु गुनिजन देहु॥२७२॥

आशय यह है कि किसी देवचंद ने अपने बांधव दामोदर की प्रेरणा से कथा कही। ये दामोदर कायस्थ वंश और तमोली जाति के थे, गोवर[1] गिरि में इन्होंने जन्म ग्रहण किया था। देवचंद देवी के पुत्र थे और इन्होंने गोपाचल (ग्वालियर)[1] में जन्म लिया था। इन देवचंद ने कथा खेमचंद से सुनी थी। देवचंद के अनुसार नारायणदास ने कथा आधी ही कही थी, और देवचंद ने उसे संपूर्ण रूप से कहा। 'आधी' शब्द से देवचंद का तात्पर्य कदाचित् 'अपर्याप्त विस्तारों के साथ' से है।

किंतु देवचंद ने रचना को ठीक से देखा-समझा तक नहीं: कथा को अधिक पूर्ण बनाने का प्रयास उनके बहुत पूर्व रत्नरंग कर चुके थे और इस नवप्राप्त प्रति के पाठ में भी यह कथन ऊपर दिए हुए उद्धरण में आता है:—

रतन रंग कवि कहइ विचारा। करी कथा सो अमियरि सारा।

किंतु रत्नरंग के बाद जो पाठ-वृद्धि इस प्रति के पाठ तक हुई, उसके कदाचित् एक मात्र कर्ता देवचंद थे, यह बात कम से कम प्रकट हो गई और इसके लिए हमें देवचंद का कृतज्ञ होना चाहिए।

१—'गोवर', 'गोवल्ल', और 'गोवाल' अभिन्न प्रतीत होते हैं। एक 'गोवल कुंड' या 'गोवाल कुंड' का उल्लेख दक्षिण के देशों के साथ 'पृथ्वीराज रासो' (ना० प्र० स० संस्करण) में हुआ है:—

षरिग देव दच्छिन दिसह अंग भयो सुम देव।
सेत बंध अनुसरिय मग गोवल कुंड समेव॥४५.२०५॥
बरं तोरि तिल्लंग गोआल कुंडं॥६१.५७४॥

यह स्थान वर्तमान 'गोलकुंडा' है। कहा नहीं जा सकता है कि देवचंद द्वारा उल्लिखित 'गोवर' भी यही है, किंतु वह 'गोपाचल' से भिन्न अवश्य है, क्योंकि 'गोपाचल' का उल्लेख देवचंद ने स्वयं अपने जन्म-स्थान के रूप में ठीक उसके बाद ही किया है।

इन पंक्तियों के अनंतर कथा की रूप-रेखा के विषय का दामोदर और देवचंद का संवाद है :—

विहसी दमोदर पूछीओ कहि दिउचंदु समुझाई।
किसइ छिताई बसि परी कैसे हारिउ राई ॥२७३॥

कैसे राउ हारि गढ़ गह्यो। काइसइं जूझ दुहुं दल भइयो ॥
कैसे दूती कियो उपाई। यहु कविदास मोहि समझाई ॥२७४॥

कइसे दिवगिरी ढोवा करिउं। कैसे सोंरिस मिरगु वन धरिउं ॥
किउं सुंदरी गही बादिसाही। सो सब कथा कहूं निरबाही ॥२७५॥

इस रूपरेखा में भी देवचंद की अपटुता प्रकट होती है। 'कैसे सोंरिस (=सौंरसी) मिरगु वन धरिउं' में सौंरसी द्वारा मृग के पकड़ने और भरथरी द्वारा उसके कारण शप्त होने की जो कथा रचना में आती है, वह अलाउद्दीन के देवगिरि पर किए हुए आक्रमण के पूर्व आती है।[1] अतः इसका प्रश्न छंद २७४ के पूर्व ही होना चाहिए था। फिर, छंद २७३ में निम्नलिखित पंक्ति में जो प्रश्न हैं :—

किसइ छिताई बसि परी कैसे हारिउ राई।

वह निम्नलिखित पंक्तियों में भी दुहराया गया है :—

किउं सुंदरी गही बादिसाही ॥२७५॥
कैसे राउ हारि गढ़ गह्यो ॥२७४॥

फलतः देवचंद के द्वारा की हुई पाठ-वृद्धि एक ऐसे व्यक्ति द्वारा की हुई है जो न रचना को ठीक-ठीक समझता था और न जिसमें किसी प्रकार की प्रबंध-क्षमता थी। उसने रचना के छंद तथा भाषा आदि के साथ जो स्वेच्छाचार किया है, वह हम ऊपर देख ही चुके हैं।

इस प्रति का जो कुछ महत्व है वह कदाचित् केवल इसी कारण है कि यह प्रारंभ के ६१ छंदों के उस अंश में खंडित नहीं है जो अंश पूर्वप्राप्त दोनों प्रतियों में खंडित है, यद्यपि इस अंश में कितना पूर्व का है और कितना देवचंद का, यह कहना अभी संभव नहीं है। इसी अंश में नारायणदास की भूमिका आती है। लेखों में कहा गया है कि मंगलाचरण के अनंतर निम्नलिखित पंक्तियाँ आती हैं :—

१—दे० पा दत पाठ, छंद २०६–२२१।

बंदउ जननि तासु गुरु ग्यानी । बढ़ई कथा जउ कहउं बखानी ॥
राजा रामदेव की धीया । कइसइं अलावदीन हर लीया ॥
कईसे छिताई भयो वियोगू । किउं सौरसी कीयो तन जोगू ॥
काहे तइं यहु विग्रह भईयो । रामदेव किउं ढीली गयो ॥
किउं मिलापु भयो भरतारा । किउं यह कथा चली संसारा ॥
जउं गुन गुनी होइ गुणवंता । विकट विधि से जम जानंता ॥
मोहि न हसहु सुनहु चउपहीं । फुरई सुबुधि करम गति लहीं ॥

इन पंक्तियों में कथा की सामान्य रूप-रेखा है। किंतु कहा नहीं जा सकता कि ये कहाँ तक मूल की हैं, अथवा कहाँ तक नारायणदास द्वारा रचित रूप में सुरक्षित हैं, क्योंकि ऊपर कथा की रूप-रेखा के संबंध में जिस प्रकार का व्यतिक्रम हमने देवचंद की पंक्तियों में देखा है, उस प्रकार का यहाँ भी मिलता है: कथा-विधा के अनुसार निम्नलिखित चरण परस्पर भी निम्नलिखित प्रकार से स्थान बदल कर ऊपर उद्धृत तीसरे चरण के पूर्व आने चाहिए थे:—

रामदेव किउं ढीली गयो । काहे तइं यहु बिग्रह भईयो ॥

किंतु इन पंक्तियों से मेरे एक अनुमान की पुष्टि स्पष्ट रूप से हो गई; मैंने अनुमान किया था कि पूर्वप्राप्त दोनों प्रतियों में अप्राप्त ग्रंथ के प्रारंभिक इकसठ छंदों में कथा का कोई प्रसंग छूटा नहीं होना चाहिए।[1] इन पंक्तियों में कथा की जो रूप-रेखा आती है उसका पूरा निर्वाह पूर्वप्राप्त प्रतियों के प्राप्त अंशों में हुआ है।

इन पंक्तियों के अनंतर नारायणदास का आत्मोल्लेख आता है, जो लेखों में दिए हुए उद्धरण के अनुसार इस प्रकार है:—

देस मारवौ कंचन खानां । लोग सुजानु विवेकी दानां ॥
महानगर सारंगपुरि भलै । तिह पुरि सलहदीन जांगलौ ॥
खांडे दान दूसरउ करनू । विक्रम जिउं दुख दारिद हरनूं ॥
दुरगावती तासु वामंगू । जनु रति कामदेव कर संगू ॥
तिह पुर कवि दयौहरिउं गयो । कथा करन मन उद्यम भयो ॥
हरि सुमिरंतइ भयो हुलासु । विरसिंघ वंश नरायणदासु ॥

१—दे० संपादित पाठ, पृ० ३ पाद-टिप्पणी।

आशय यह है कि मालवे में सारंगपुर नामक महानगर में सलह-दीन जांगला एक वीर और उदार व्यक्ति था, जिसकी स्त्री का नाम दुर्गावती था। उस सारंगपुर में कवि दयोहरि (दैवी विपत्ति ?) में गया—उसका मूल निवास स्थान कहीं और था—और वहाँ कथा-रचना की उसे इच्छा हुई। कवि का नाम नारायणदास था और वह वीरसिंह के वंश में उत्पन्न था।

इसके अनंतर कवि अपनी रचना की तिथि देता है और रचना की रसात्मक प्रवृत्तियों की ओर संकेत करता है :—

पंदरह सइ रु तेरासी माता। कछुवक सुनी पाछली वाता ॥
सुदि असाढ़ सातइं तिथि भई। कथा छिताई जंपन लई ॥
करुणा नीति वीर विसतरई। अदभुत रूप भयानक करई ॥
अरु किछु करउ वीर सिंगारू। नवरस कथा करइं विस्तारू ॥
जंपइ विष्णु नरायणदासू। मरइ फूल जीवइ दिन वासू ॥

आशय यह है कि संवत् १५८३ में नारायणदास ने छिताई की पिछली वार्ता सुनी और तब उक्त संवत् की आषाढ़ शुक्ला ७ को छिताई की कथा कहनी उसने आरंभ की। इस रचना में उसने नवरस का समावेश किया है। यह रचना नारायणदास[1] ने यह सोच कर प्रस्तुत की कि इसके द्वारा उसी प्रकार उसकी कीर्ति सुरक्षित रहेगी, जिस प्रकार फूल के नष्ट हो जाने पर भी उसकी सुगंधि बनी रहती है।

उद्धृत अंतिम पंक्ति क० पाठ के छंद ७४७ में भी आती है :—

कवीअण कहइ नारायणदास। मरइ फूल जीवइ दिन वास।

रचना में यह पुनरुक्ति भी विचारणीय है।

बाबर ने अपनी आत्मकथा में सारंगपुर के शासक सलाहुद्दीन का उल्लेख किया है जो राणा साँगा का सामंत था।[2] इसलिए सं० १५८३ की तिथि

१—उद्धरण में 'विष्णु नारायणदास' शब्द हैं, जिनका आशय अपने लेख में द्विवेदी जी ने 'विष्णुदास सुत नारायणदास' लिया है। किंतु नाम देने की यह प्रथा हिंदी रचनाओं में अन्यत्र नहीं देखी जाती है। मेरा अनुमान है कि पाठ 'विष्णु' के स्थान पर कदाचित् 'विणु' (वइणु=वचन) रहा होगा।

२—'दि मेम्वायर्स आव् बाबर' (बीवरिज कृत अनुवाद), पृ० ५६८, ५६२ तथा ६१४।

ठीक प्रतीत होती है। प्रसन्नता की बात है कि नारायणदास की रचना-तिथि इस प्रति से मिल गई।

खेद है कि प्रस्तुत संस्करण के लिए यह प्रति नहीं मिल सकी। सुना है कि इस प्रति के पाठ को आधार मान कर श्री अगरचंद नाहटा ने रचना का एक संस्करण तैयार किया है जो प्रकाशित होने जा रहा है। 'छिताई वार्त्ता' के प्रेमियों को उक्त संस्करण की बड़ी उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा रहेगी।

प्रयाग
२२ जुलाई, १९५८ } माताप्रसाद गुप्त

शुद्धि-पत्र

नीचे दी हुई संख्याएँ क्रमशः पृष्ठों और उनकी पंक्तियों की हैं।

संपादित पाठ

स्थल	अशुद्ध	शुद्ध
४.२	६५॥²	६५॥
४.२ पाद०	२. ...२५४।	[नहीं रहेगा],
५.९	सुरितानइ	सुरितानह
५.३०	बसेरो	बिसेरो
६.१३	पह	पइ
७.३	बेयरियां	बयरियां
८.१६	मानु (मानौ)	मानहु (मानहु)
९.१८	१५०	१०५
१०.३०	सरवर [?]	सरवरै
१३.२२	कहां	कहौ
१५.१२	निचेइ	निचइ
१५.१७	भाखत	भगवन
१७.११	भुयाल	(भुयाल)
२०.७	आंगुरी ?)	(आंगुरी ?)
२२.१७	खानि	खानि (खांति)
२२.१८	ग्यान	ग्यान (ग्यात)
२३.२४	खाहि	साहि
२४.२३	सिध्धि)	(सिध्धि)
३१.३	स्वाद	साद
३२.१४	हल कलखु	हलक लखु
३४.१४	ढारि	ढाहि
४०.२१	धाइल	घाइल
४७.१२	तौं सै	तौ सैं
६५.३	राय	राम

६९.१२	जारु	जोरु
६९.१९	दास	बरस
७०.२१	कुबुद्धि	सुबुद्धि
७०.२२	कारन	कारज
७३.१३	राह	राम
७५.९	(पराण	(पराण)
७६.१ पाद०	मारूं	मोरूं
८३.६ पाद०	गुरज	गोल गुरज
८५.१५	साथ	हाथ
८७.१८	बनाइ[६]	बनाइ[४]
८९.१५	रस	हम
९०.१२	चहूंघा	चहूंघा
९४.१८	५४	५४८
१००.६	औतार)	(औतार)
१००.६	(लीनो	(लीनो)
१००.१२	हम[३] घर	हम घर[३]
१०२.१ पाद०	हरी	हरै
१०२.२	के	कूं
१०५.१०	पठवी	पठई
१०८.१	धोवौं	धोवुं (धोवौं)
१०९.१०	आपनु	आपतु
१११.४	ल्यायुं	ल्यावुं
११२.१	झै	बूझै
११६.३	सुहातो	सुहातो
१२८.१४	(उठि)	(ओटि)
१२८.१४	बिनु	खिनु
१३०.९	(हौं ?	(हौं ?)
१३२.२	आत (ऊतम)	आतम

अर्थ

१५३.८	विसुरत	निसुरत
१५५.५	वह' ' 'में भी	निर्मल जल ऊपर

१५८.३	(कर्माध्यक्षों ?)	(वास्तुशिल्पियों)
१६०.१२-१३	(पीने…जलाशय)	(जेंवनार)
१६१.२४	की खांति (माला ?)	अभिलाषा पूर्वक (?)
१६७.२६	अति	[न रहेगा]
१६८.२३	(शयन शाला)	फव्वारे
१७०.६	(माला ?)	(आकांक्षा ?)
१७९.५	(?)	(पैदल ?)
१८०.२८	[कवचादि…में]	ठाठा (कवचादि…में)
१८२.१२-१३	[ये…बदौलत)	अमीरों के प्रति शब्द थे,
२०८.८	(बंदे)	(बंदे ?)
२२४.१९	उसी [जीवन] के	इसी
२२४.२०	तप	तप्त
२४६.४	सिफलात=(सफल)	सिकलात=(सकल),
२४९.१७	स्मरण कर के	स्मरण करने लगे
२४९.३१	=जोअब	यौवन
२५२.२१	वाली	वाली (?)
२५४.२७	३१८	३१८-१९
२५८.३१	४५५	४५३
२६०.१३	स्त्री	वे
२६२.६	चिम्ह	चिह्न
२६२.१६	सभाचार	समाचार
२६३.११	बाण	रबाब
२६३.१८	१२८.	१२८,
२६६.१३	वधू	वधू।

विषय-सूची

भूमिका

[पृष्ठ १–६१]

छिताई वार्त्ता

[पृष्ठ १–१५०]

अर्थ

[पृष्ठ १५१–२६७]

चित्र

[भूमिका पृ० २ तथा ३ के सामने]

क० का अंतिम पृष्ठ।

१–प्रतियाँ और उनका पाठ

रचना की केवल दो प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं, और इन दोनों का उपयोग प्रस्तुत संपादन में किया गया है। इनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

१. क०—यह प्राचीन प्रति बृहत् खरतर-गच्छीय ज्ञान भांडार, बीकानेर की है और मुझे श्री अगरचंद नाहटा से प्राप्त हुई थी। इसकी पुष्पिका निम्नलिखित है :—

"इति श्री छिताई वार्त्ता समाप्तः ॥ संवत् १६४७ वर्षे माघ वदि ६ दिने लिपितं चेला करमसी साह राम जी पठनार्थं सुभं भवतु ॥"

इसका प्रतिलिपिकर्त्ता कोई 'करमसी' है—'चेला' उसकी उपाधि मात्र प्रतीत होती है—इसलिए इस प्रति को उसके नाम के आधार पर आगे सर्वत्र क० कहा गया है। यह प्रति तीन स्थलों पर खंडित है, जिसके कारण संपादित पाठ के निम्नलिखित अंश इसमें अब नहीं हैं :—

(१) प्रारंभ से छंद ६१ तक,

(२) छंद २६६ के उत्तरार्द्ध से छंद २६६ के पूर्वार्द्ध तक, तथा

(३) छंद ३८८ के उत्तरार्द्ध से छंद ४५४ तक।

प्रतिलिपि करने में इसमें यथेष्ट सावधानी नहीं बरती गई है, और न आदर्श से मिलाकर इसमें संशोधन किया गया है, परिणामतः न केवल अक्षर या शब्द ही वरन् चरण तक अनेक स्थलों पर छूटे हुए हैं। छंद-संख्याएँ देने में भी स्थान-स्थान पर भूलें हुई हैं और संपादित पाठ के छंद ६८२ के बाद तो प्रति में छंद-संख्या दी ही नहीं हुई है। भूलों के उदाहरण प्रति भर में इतने भरे पड़े हैं, कि आगे उन्हें सुगमता से देखा जा सकता है।

पुनः, इसमें कुछ वर्णों तथा मात्राओं को लिपिबद्ध करने के संबंध में कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियाँ भी लक्षित होती हैं, जिनको समझ लेना इस प्रति के पाठ को ठीक-ठीक पढ़ने के लिए आवश्यक हो जाता है। इनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं।

(१) 'ओ' के स्थान पर 'उ' लिखा गया है :—

कुसर सहित घरि आउ (आओ) नाह। ६६
नलदमयंती तनो बीउग (बीओग)। १२६
भाराथ रांमाइन चित्रयो। मृगया महा मनोहर कीउ (कीओ)। १२६
उपइ (ओपइ) कंचन तिसो कपोल। १७०
तिल कपोल पर विधना दीउ (दीओ)।
मनहु मदन चित्र करि गयो। १७४
खेउ (खेओ) महल दख्यनी धूप। १८६
मृगया मुउ (मुओ) सु राजा पांड। २०८
कर तइ काढि दिखाउ (दिखाओ) चित्र। २४१
सती बिउगी (बिओगी) अगनिति लाख। ३४८
अति रिस कोप कोपीउ (कोपीओ) गात। ४६३
घरि घरि साहि बधावुं कीउ (कीओ)।
आपण साहि दमामुं दयौ। ४७५ पाद०
गढ चिहु पासि दात की उट (ओट)।
देखे साहि खरहरइ कोट। ५००
सुनत छिताई आसन दीउ (दीओ)।
वीडा मांगि आनि तिथि ठयौ। ५०८ पाद०
मकर प्रीआग व्रत मइ कीउ (कीओ)।
गया पिंड बिधि पूरब दयौ। ५०६
नाह बिउग (बिओग) पुरुष कै भेष। ५३२
नाह बिउग (बिओग) अति दुख भरी। ५३६ पाद०
अति बिउग (बिओग) परिबसि पछताई। ५४१
नारी बिउग (बिओग) नगर व सुहाइ। ५६१
इसुं परम बिउगी (बिओगी) रहइ। ५६३
अति बिउग (बिओग) मन परी उदास। ५६५
षिन एक बिरमि बिउगी (बिओगी) रहइ। ५६८
तिहां बिउगी (बिओगी) कीउ (कीओ) उतारि। ५६६
कुण पाप थीइ अति बिउग (बिओग)।
भरि जोबन मांहि साध्यो जोग। ५७४
जोउ बिरही तस कीउ (कीओ) बिउग (बिओग)।
तिण धरी मदन धर्यो तब जोग। ५७७

अति बिउग (बिओग) अनु व्यापइ काम । ५८२
तिहां बीउगी (बिओगी) कीउ (कीओ) गुण । ५८३
तिहां बीउगी (बीओगी) कीउ (कीओ) प्रवेस । ५८४
सीतारांमइ भयो बिउग (बिओग) ।
दुख सहि फुणि भयो संजोग । ६०६
तब फिरी चितउ (चितओ) साहि न पीठ । ६६८ पाद०
तउ ही बिउगनि (बिओगनि) बनिता बनी । ६६६
तो लगि [हौं] आउ (आओ) लेवाइ । ६७१
मो लगि कंत बीउगी (बीओगी) भयो ।
इतनुं दोष बिधाता दिउ (दीओ) । ६७३ पाद०
तबहि सुंरसी लउ (लओ) हकारि । ६८५ पाद०

(२) 'ओ' की मात्रा के स्थान पर 'उ' की मात्रा दी गई है :—

निसि भरि नींद कि सुई (सोई) सोइ । ७७
भलौ बुरु (बुरो) जांनइ नहीं । २१७
लागु (लागो) दुष्ट कहन बिस्तार । २३८
भांडु (भांडो) तिहांथी उघरौ परई । २४०
किं मेरु (मेरो) जस अपजस टरइ । ३३७
तेरु (तेरो) भाव सुन्यो मइ कांन । ५१२
जोवण रयण पाहुणु (पांहुणो) आइ । ५१६
जोगी भये कु (को) भखक आहि । ६१६
यह गुण देखइ मेरु (मेरो) हरम । ६३७
मेरु (मेरो) अवसर होई अनूप । ७०१
कर कुअर (कोंअर) अरु हरुए बोल । ७१०
छाड़ी सेज सुइ (सोइ) साथरइ । ७१६

(३) कभी-कभी 'ओ' की मात्रा के स्थान पर 'ऊ' की मात्रा का भी प्रयोग हुआ है :—

अंचल लेइ मुह पूछइ (पोछइ) सखी । ६०६
तबहि सुंरसी पूछइ (पोछइ) नइन । ६६१

किंतु यह अपवाद ही जैसा है, और भूल से भी हुआ हो सकता है ।

(४) इसी प्रकार, 'औ' के स्थान पर 'उ' का प्रयोग हुआ है :—

तिहठा उर (और) जिते जल जीव। ११६
उर (और) राइ जे देखइ आइ। ११८
मुरछै देखि उर (और) कांमनी। १८२
जांने लीनु उतार (औतार) उनांग। ५७४
अइसुं सुत म्हा घरे उतरे (औतरे)। ५७५
तब उसर (औसर) कुं आइस भयौ। ७०२
उसर (औसर) अतिहि हो गुणगही। ७०५
उसर (औसर) देखि सुख अति भई। ७०७
जाकइ निति कौ उसर (औसर) हौइ। ७०८
उसर (औसर) उबिदि बराए पान। ७०९
उसरे (औसरे) गाज बाज नीसांन। ७५०
[तुलना० मेरु 'अवसर' होइ अनूप। ७०१ तथा
दिवस सात लग 'अवसर' भयौ। ७५४]

(५) 'औ' की मात्रा के स्थान पर भी 'उ' की मात्रा का प्रयोग हुआ है:—

कीए मुहरे (मौहरे) अनु अनु भांति। ११३

दीली नगर नकट को जोन। तिहां बीउगी कीउ गुण (गौण)। ५८३

(६) किंतु कभी कभी 'औ' के लिए 'उं' का प्रयोग हुआ है :—

अति सनेह थी होइ बिउंग (बिऔग)।
अधिक भोग थी बाढइ रोग। २२५ पाद०

(७) और 'औ' की मात्रा के लिए तो प्रायः 'उं' की मात्राओं का प्रयोग मिलता है :—

मतौ प्रकासुं (प्रकासौ) कहै नरेश। ६६
ताको सुत सुंरसी (सौरसी) सुजान। १५२

अन्यत्र भी सुंरसी (सौरसी) यथा : १५५, १९२, १९४, २०२, २०६ २११, २१५, २१६, २२३, २२४

[तुलना० चले सोरसी तनी बरात। १५७]
मन उल्हास चलवे कुं (कौ) करइ। ८४
गुनी होइ गुन कुं (कौ) संग्रहइ। ९४

सुणत बचन चेतन कुं (कौ) हर्यौ। ६१६
जोगी कुं (कौं) गुण कहइ नरिंद। ६४३
[तुलना० गुन को संग्रह करहइ गुनी। ६५]
लागो चित्र चित्र को जिसौ।
जांनै ठगि घालि ठगौरी तिसुं (तिसौ)। १३५
इक सोनुं (सोनौ) होइ सुगंध। १४१
[तुलना० सोनो रतन जे जाची चुनी। १६५]
मदन चाप सम भुंहइ (भौंहइ) तासु। १७०
गहिरी नाभि बषानइ कुंन (कौन)।
मांनहु काम सरोवर भुवन। १७८
तिण कुं (कौ) कुंण (कौण) उचावइ हाथ। ६१६
सो धुं (धौं) कुंण (कौण) कहां को आहि। ६१७
आइस कुंण (कौण) तुम्हारौ देस। ६२५
जीउ अंदेस चितमांहि बिचारुं (बिचारौ)...। २१७
जैसौ होइ ता तनुं (तनौ) चरित्र। २४१
[तुलना० कहिहु कन्या तणो बिबाह। ८५
नल दमयंती तनो बीउग। १२६
पसु तणो मन चित्यौ भयो। ७२६]
गढ़ ऊपरि की ल्यावुं (ल्यावौ) बुधि। ३२३
जो तुं (तौ) बजावइ मेरी बीन। ५६४
तुं (तौ) अंबुजिन जालइ तुसार। ६१५
नुंतन (नौतन) महुल ततषिण दीउ। ६८७
[तुलना० दीन्हा नवतन महल छुडाइ। २०३
छाजे छत्र नवतने कराई अनूप। ७६२]

ऐसा प्रतीत होता है कि 'औ' के स्थान पर 'उ' और 'औ' की मात्रा के स्थान पर 'उ' की मात्रा का जो प्रयोग कहीं-कहीं मिलता है—जिसका उल्लेख ऊपर हुआ है—वह भूल से हुआ है, अनुस्वार का बिंदु उन स्थलों पर कदाचित् छूट गया है। इसी प्रकार, औ के स्थान पर कहीं-कहीं पर जो ओ की इकहरी मात्रा लगी मिलती है, वहाँ पर औ की दूसरी मात्रा भूल से छूटी लगती है।

(८) -'इयइ' के स्थान पर -'ईइ' का प्रयोग हुआ है :—

कइ ढीली जान बूझीइ (बूझियइ) तोहि । ६६
जो न सींचीइ (सींचियइ) अवसरि आइ । ७६
ए तिन चाहीइ (चाहियइ) आप समान । १५०
किं हुरखरु सुरितांन सुं किं कहीइ (कहियइ) आ सुधि । ३२६
कुं आए अब लीइ (लियइ) रसाल । ४६०
षिण एक मांझ चिण लीइ (लियइ) सुजान । ४६८

(६) 'ज' अथवा 'ज्य' के स्थान पर 'य' का प्रयोग भी कहीं-कहीं हुआ है—

तुम्हहइ कहा जहमांत कछु यांन । २३०
[तुलना तो तो होइ चोरण को ज्ञान । ६३१]
चलन पीडुरी नष की योति । १८३
दसन योति ते दारिम भए । ७४५
[तुलना० बदन जोति तइ ससि की हरी । ५४४]

ये लेखन-प्रवृत्तियाँ प्रति के पाठ-निर्धारण में असाधारण महत्व की हैं। इनकी उपेक्षा करने पर उसका ठीक पाठ नहीं प्राप्त हो सकता है, और रचना की भाषा के संबंध में हमारी धारणा नितांत भ्रमपूर्ण होगी। किंतु ये प्रवृत्तियाँ इस प्रति के लिपिकर्त्ता की ही नहीं हैं, पश्चिमी राजस्थान और गुजरात की विक्रमीय सोलहवीं-सत्रहवीं शती की सामान्य लेखन-प्रवृत्तियाँ प्रतीत होती हैं, क्योंकि इनमें से अधिकतर तद्देशीय तथा तत्कालीन अन्य प्रतियों में भी मिलती हैं। अभी तक अपभ्रंश काल के अंत अर्थात् सं० १२०० से लेकर भक्तिकाल के प्रारभ अर्थात् सं० १६०० तक के समय को लेकर नागरी लिपि-विन्यास के उन रूपों का एक प्रकार से बिलकुल अध्ययन नहीं हुआ है जो इस अवधि के बीच हिंदी प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में विकसित होते अथवा मिटते रहे, इस संबंध में स्वतंत्र अनुसंधान उपयोगी सिद्ध होगा।

२. श्री०—यह प्राचीन प्रति इलाहाबाद म्यूनिसिपैलिटी के म्यूजियम, प्रयाग-संग्रहालय की है, और उसी से मुझे प्राप्त हुई थी। इसकी पुष्पिका निम्नलिखित है:—

"इति श्री छिताई कथा संपूर्ण समाप्ता। लिषितं पठनार्थ महाराज कुंवार श्री हरी स्यंघ जी लिषितं श्रीराम काइथ। फागुन बदि ४ चंद्रे संवत् १६८२ ब्रषे शुभं भवतु।"

इसके प्रतिलिपिकर्त्ता का नाम 'श्रीराम काइथ' है, इसलिए इस प्रति को उसके आधार पर आगे सर्वत्र 'श्री०' कहा गया है।

यह प्रति केवल प्रारंभ में खंडित है, किंतु इतनी अधिक खंडित है कि अब उसमें प्रति के और संपादित पाठ के २२४ छंद नहीं रहे। यह प्रति अत्यंत सावधानी से लिखी गई है, परिणामस्वरूप इसमें इने-गिने स्थलों पर कुछ भूलों के अतिरिक्त कहीं भी भूल नहीं मिलती है। छंद-संख्या में भी एकाध ही स्थान पर भूल है।

इस प्रति में लेखन-संबंधी कोई ऐसी प्रवृत्तियाँ भी नहीं दिखाई पड़तीं जिनकी ओर ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक हो, इसलिए इसके पाठ के संबंध में उस प्रकार की कोई समस्या नहीं है जैसी ऊपर हमें क० के संबंध में दिखाई पड़ी है।

किंतु उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होगा कि दोनों प्रतियों को मिला कर भी हमें रचना के प्रारंभ के इकसठ छंद नहीं प्राप्त होते हैं। गनीमत इतनी है कि इस अंश में कथा का कोई प्रसंग नहीं छूटा है, जैसा छंद ४३४–४३६ में आए कथा के इस भाग के उल्लेख से ज्ञात होता है, केवल रचयिताओं की प्रस्तावना निकल गई है।

२—प्रतियों का पाठ-संबंध

दोनों प्रतियों का मिलान करने पर ज्ञात होता है कि यद्यपि दोनों के पाठों में अंतर है, फिर भी कई स्थलों पर दोनों में पाठ की विकृतियाँ समान रूप से पाई जाती हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित को लिया जा सकता है।
(१) संपादित छंद ५६७ का पूर्वार्द्ध दोनों में है:—

क०: चूमकी तांति तूबरा तोरि। छोरि छिताई दई उतारि।
श्री०: चमकितु चित्त महा सरसरी। छोरि छिताई दई उतारि।

दोनों पाठों में थोड़े अंतर के होते हुए भी जो बात समान रूप से दर्शनीय है वह है दोनों चरणों का भिन्न तुकांत और प्रसंग की दृष्टि से किंचित् असंबद्ध होना। ऐसा लगता है कि दोनों चरणों के बीच कुछ न कुछ और चरण थे, जो दोनों में छूटे हुए हैं।

(२) संपादित छंद ४६४ का पूर्वार्द्ध दोनों में है:—

क०: जांनक मेघ गाजउ असमांन। कर तै काढि कोपीउ कमांन।
श्री०: जनिकु मेहु बरसै असमान। कर ते काढी कोपि कमान।

'कमान' शब्द का प्रयोग रचना में अन्यत्र भी हुआ है, किंतु वहाँ उसका अर्थ है 'तोप':—

गही कोपि कर कठिन कमान। लागौ बरसन पंथ समान।
इक इक मूठि लोह मन साठि। तब फाटी पैदल की गांठि। २८२
ठटी ठाठरी दुर्ग समाण। ऊपर बनी नालि कंवाण। ४९७

विवेच्य स्थल पर राघव के दूतत्व पर रामदेव के कुपित होकर उसे मारने के लिए उद्यत होने का प्रसंग है। उसको मारने के लिए वह हाथ से 'कृपान' ही 'काढ़' 'निकाल' सकता था, 'तोप' नहीं। इसलिए यहाँ पर दोनों में 'कृपान' के स्थान पर 'कमान' पाठ भूल से आया हुआ लगता है।

(३) संपादित छंद ४९८ का पूर्वार्द्ध दोनों में है :—

क० गोल गुरज चले बड़ मीर। पवन वेगि सर मारूं स तीर।
श्री० : गुरज गुरज तकि मारहिं मीर। जनु अकास घन गरज गहीर।

प्रसंग यहाँ पर अलाउद्दीन पक्ष से तोपों के चलने और उनके कारण हुई गढ़ की क्षति का है, जो विवेच्य पंक्ति की पूर्ववर्त्ती तथा परवर्त्ती पंक्तियों से प्रकट है :—

ठठीं ठाठरी दुर्ग समाण। ऊपर बनी नालि कंवाण।
कोट खरहरहिं समद समान। खिण इक मांझ चुनि लेहिं सुजान।

किंतु 'गुरज' का अर्थ 'गदा' होता है:—

पंच पंच मन की हाथनि गुरज। ढोवा ढाहि ढहावै बुरज। २५९
गुरज घाइ जे मुगलनि हए। तिन सिर फूटि फूट लौं गए। २९६

विवेच्य स्थल पर प्रसंग 'बुर्जों' का है, जिनको लक्ष्य करके अलाउद्दीन के अमीर ठाठरी के ऊपर रक्खी हुई नालों और कमानों (तोपों) को चला रहे हैं, और उन नालों और कमानों (तोपों) के चलने से इस प्रकार की ध्वनि हो रही है जैसे अनऋतु ही घन गंभीर गर्जन कर रहे हों; परिणामस्वरूप गढ़ का परकोटा खरभरा करके समुद्र [की तरंगों] के समान गिरता है, किंतु रामदेव पक्ष के चतुर श्रमिक उसे क्षणमात्र में चुन लेते हैं। विवेच्य स्थल पर क० का अथवा श्री० का पाठ स्वीकार करने पर "कोट का खरभरा करके समुद्र के समान गिरना" उन 'नालों' अथवा 'तोपों' के मारने

(चलाने) का परिणाम नहीं रहता है, बल्कि अमीरों के 'गुर्ज' और 'तीर' चलाने का परिणाम हो जाता है, और 'नालें' और 'कमानें' बेकार हो जाती हैं। अतः प्रकट है कि पाठ 'गुरज गुरज' अथवा 'गोल गुरज' के स्थान पर पाठ 'बुरज बुरज' होना चाहिए।

(४) संपादित छंद ५६६ का पूर्वार्द्ध है:—

नाद स्वाद बाजै व्यौहार। जानहि जोगी कछू विचार।

दोनों प्रतियों में पाठ 'स्वाद' है; किंतु यहाँ प्रसंग 'साद' (शब्द) का है, यह प्रकट है, 'स्वाद' का नहीं। 'साद' इस अर्थ में अन्यत्र भी आया है, यथा:—

सुंदर सुघर सुनावइ साद। १६७
अनगंजे भी गंजियै जौलौं कंठहिं साद। २६२

(५) संपादित छंद ३२२ के पूर्वार्द्ध का पाठ है:—

क० : अब कइ जौ न छिताइ लेहु। तौ निज सीस देवगिरि देहु।
श्री० : जौं अब कै न छिताई लेउं। तौ निजु सीस द्यौगिरिहि देउं।
और संपादित छंद ३२६ के उत्तरार्द्ध के रूप में भी आता है:—
क०: जो न छिताई अब के लेहु। तौ निज सीस देवगिरि देहु।
श्री० जौ न छिताई अब कै लेउं। तौ निजु सीस द्यौगिरिहि देउं।

पुनरुक्ति स्पष्ट है।

इस पुनरावृत्ति का कारण कदाचित् दुहराई हुई पंक्ति के सामने हाशिए में की गई पाठ-वृद्धि है, जिसके परिणाम स्वरूप एक बार पंक्ति प्रतिलिपि करते समय पाठ-वृद्धि वाले अंशों को उतारने के पहले लिखी ही गई थी, और पाठ-वृद्धि वाले अंशों को उतारने के बाद पुनः लिख ली गई। पाठ-वृद्धि की ये पंक्तियाँ प्रक्षिप्त लगती हैं, क्योंकि इनके न रहने पर प्रसंग क्षति नहीं होती है। फिर इनमें न केवल अनावश्यक विस्तार मिलता है, पूर्व और पश्चात् आई हुई उक्तियाँ तक दुहराई गई हैं: यथा छंद ३२४ पूर्वार्द्ध वही है जो ३२० पूर्वार्द्ध है, और छंद ३२६ पूर्वार्द्ध वही है जो ३३० पूर्वार्द्ध है। छंद ३२७ का उत्तरार्द्ध तो ४३६ का उत्तरार्द्ध है ही, जो यहाँ भी रख दिया गया है (दे० नीचे)। किंतु दृढ़तर प्रमाण के अभाव में इन पंक्तियों को भी संपादित पाठ में रख लिया गया है।

(६) संपादित छंद ३२७ का उत्तरार्द्ध है:—

क० : अनु मो भइ देस मांहि गारि । ढूढत फिरइ पराई नारि ।
श्री० : अरु मो भई देस मै गारि । चाहतु फिर्यौं पराई नारि ।
और संपादित छंद ४३६ के उत्तरार्द्ध के रूप में आता है :—
श्री० : अस मो भई पुहमि मैं गारि । ढूढतु फिर्यौ पराई नारि ।
क० में यहाँ पत्रा निकला हुआ है । पुनरुक्ति प्रकट है ।

(७) संपादित छंद ४४२ है :—
श्री० : पर दुर्गह अरु पर धरह जे कोई मंडै रारि ।
खंखरि होइ दुरलभी मिंत पराई पारि ।।
क० में यहाँ पत्रा निकला हुआ है ।
और संपादित छंद ४४७ है :—
श्री० : अपनै अपनै देसरां सब को मंडै रारि ।
षंषरि होइ दुरलभी म्यंत पराई पारि ।।
क० में यहाँ भी पत्रा निकला हुआ है । पुनरुक्ति प्रकट है ।

यह पुनरावृत्ति भी उन्हीं कारणों से हुई ज्ञात होती है जिनसे छंद ३२२ तथा ३२६ की हुई ऊपर कही गई है। पाठ-वृद्धि के रूप में लाई इस पुनरावृत्ति के बीच की पंक्तियाँ भी प्रक्षिप्त प्रतीत होती हैं। इनके न रहने पर कोई प्रसंग-क्षति नहीं होती है। फिर इनमें न केवल अनावश्यक विस्तार मिलता है, विचार पूर्वक कार्य करने पर सिद्धि प्राप्ति की जो बात छंद ४४३ में कही गई है वह प्रसंग सापेक्ष्य भी नहीं है। इतना ही नहीं, छंद ४४४ तथा ४४५ में, जो इस बीच के अंश में आते हैं, एक पंक्ति दुहराई गई है (दे० नीचे)। किंतु दृढ़तर प्रमाण के अभाव में इन पंक्तियों को भी संपादित पाठ में रख लिया गया है।

(८) संपादित छंद ४४४ का उत्तरार्द्ध है :—
श्री० : मैनरेह हौं विनऊं तोहि । अदग दागु दै सुंदरि मोहि ।
क० में यहाँ भी पत्रा निकला हुआ है ।
और संपादित छंद ४४५ का उत्तरार्द्ध है :—
श्री० : मैनरेह हौं विनऊं तोहि । राषहि सरण सुंदरी मोहि ।
क० में यहाँ भी पत्रा निकला हुआ है । पुनरुक्ति स्पष्ट है ।

(९) संपादित छंद ४५० उत्तरार्द्ध का है :—
श्री० : हौं दासी यह साहि नरेस । छाडौं साहि करौं मुत्र लेस ।

क० में यहाँ भी पत्रा निकला हुआ है।

और संपादित छंद ४८७ का पूर्वार्द्ध है :—

क० : हुं दासी तुं साहि नरेस। छांडो दुर्ग करो मुख लेस।
श्री० : हौं दासी तूं साहि नरेसु। छाडहि दुर्गु करहि अलबेसु।

दोनों अर्द्धालियों में केवल दो शब्दों के संबंध में अंतर है, अन्यथा पूरी शब्दावली एक ही है। इसलिए यहाँ भी पुनरुक्ति प्रतीत होती है।

ऊपर दिए हुए नौ स्थलों में से अंतिम तीन क० के खंडित होने के कारण उसमें नहीं मिलते, शेष छः दोनों प्रतियों में समान रूप से पाए जाते हैं। इस प्रकार की एकाध अशुद्धियाँ रचयिताओं द्वारा—क्योंकि जैसा हम आगे देखेंगे वर्त्तमान रूप में 'छिताई वार्त्ता' दो कवियों की कृति है—अथवा दोनों प्रतियों में स्वतंत्र रूप से हुई मानी जा सकती थीं, किंतु नौ या छः भी अभिन्न अशुद्धियाँ केवल पाठ-विकृति के रूप में हुई संभव हो सकती हैं, और अवश्य ही रचयिताओं के द्वारा हुई नहीं हो सकती हैं। ये विकृतियाँ कृति के मूल पाठ से नीचे की किसी स्थिति में हुई होंगी। इसलिए ये दोनों प्रतियाँ समान रूप से कृति के मूल पाठ के नीचे की स्थिति के किसी पाठ की प्रतिलिपि-परंपरा में हैं, यह मानना पड़ेगा।

पुनः इन दोनों प्रतियों में अलग-अलग ऐसी पंक्तियाँ हैं जो प्रक्षिप्त प्रतीत होती हैं, और अंत के ८०–८५ छंद भी दोनों में एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं, इसलिए उपर्युक्त सामान्य पूर्वज के नीचे किसी पीढ़ी में इनके अपने-अपने पूर्वज एक दूसरे से कुछ भिन्न भी हो गए, यह स्पष्ट है।

इस पाठ-परंपरा को हम चक्र द्वारा कुछ इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं :-
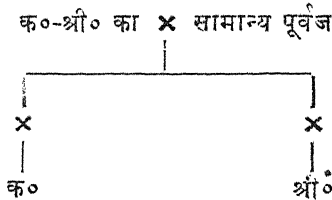
३—रचना की पाठ-समस्या

दोनों प्रतियों में क० के पूर्वोल्लिखित भ्रामक लिपि-विन्यास के

कारण पाठ-विषयक जो अंतर हो गया है, वह तो है ही, उसके अतिरिक्त भी रचना के अंतिम ८०–८५ छंदों का पाठ दोनों में एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। रचना की सबसे बड़ी पाठ समस्या यही है कि दोनों प्रतियों में दिए गए इन ८० - ८५ छंदों का कौन-सा पाठ प्रामाणिक माना जा सकता है।

इस अंश के क० के पाठ में अनेक ऐसी बातें हैं जो इस अंश की शेष रचना से अभिन्नता स्थापित करती हैं, यथा :—

(१) छंद ७२० में कहा गया है कि अलाउद्दीन ने सौंरसी को विदा करते हुए गुजरात का प्रांत दिया। इतिहासकारों ने लिखा है कि १३०८ ई० के देवगिरि के द्वितीय आक्रमण के अनंतर बंदी रामदेव जब दिल्ली लाया गया तो अलाउद्दीन ने उसका अनेक प्रकार से सत्कार किया और उसको विदाई के समय गुजराज में नवसारी का इलाका दिया।[1] आगे यह दिखाया जावेगा कि 'छिताई वार्ता' की रचना इतिहास के देवगिरि के प्रथम और द्वितीय आक्रमणों के विवरण लेकर की गई है। इस प्रकार यह अंश इतिहास का आधार लेकर चलने में शेष रचना के साथ है।

(२) छंद ७२१–७२५ में उन घोड़ों की विभिन्न जातियों का उल्लेख है जो सौंरसी को अलाउद्दीन से विदाई में प्राप्त हुए थे। ये जातियाँ हैं :— हरिआ, सेत, महुआ, सबजा, सनेही, सीराजी, हांसला, करतर, काया, तुखार, जरदा, नील, बोर, कयाह, भुथार, काबली, बोरु, भांमर, परबती। प्रायः इन सभी जातियों के नाम हेमचंद्र, सोमेश्वर, तथा जयदत्त के ग्रंथों में[2] और पुनः बाद में 'पदमावत' में[3] भी मिलते हैं।

(३) छंद ७३० में कहा गया है कि दिल्ली से वापस होते हुए सौंरसी तथा छिताई ने चंदवार में पड़ाव किया। वियोगी सौंरसी दिल्ली जाते समय भी चंदवार होकर गया था, जैसा छंद ५६८ में कहा गया है, और उसको देख कर वहाँ की नारियों पर जो प्रभाव पड़ा था, उसका वार्ता के रचयिताओं

---

१. जियाउद्दीन बरनी पृ० . ३१६ तथा फ़रिश्ता (हैदराबाद का उर्दू संस्करण), पृ० ३६८।

२. देखिए 'प्रेमी अभिनंदन ग्रंथ', पृ० ८१।

३. मेरे द्वारा संपादित 'जायसी ग्रंथावली' पाठ के छंद ४६, ४६६।

ने बड़े मनोनियोग से छंद ५६६–५८१ में वर्णन भी किया है। अतः इस उल्लेख से इस अंश की शेष रचना के साथ एकसूत्रता प्रकट होती है।

(४) छंद ७४८–७५८ में कहा गया है कि देवगिरि वापस पहुँचने पर राघव चेतन और मोल्हण के साथ सौंरसी की नित्य नूतन मिहमानी होती रही, और उनके समादरार्थ एक सप्ताह तक 'अवसर' (नृत्य-संगीत समारोह) होता रहा, जिसके अनंतर रामदेव ने अनेक उपहार देकर राघव चेतन और मोल्हण को विदा किया जिन्होंने दिल्ली जाकर रामदेव के दिए हुए उपहार अलाउद्दीन के सामने रक्खे।

मोल्हण 'छिताई वार्त्ता' में वर्णित देवगिरि के दोनों आक्रमणों में अलाउद्दीन-पक्ष में दिखाई पड़ता है;[1] और राघव चेतन उसमें वर्णित देवगिरि के द्वितीय आक्रमण में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व है, और छिताई तथा सौंरसी के दिल्ली-प्रवास में भी हमें उसके संबंध के उल्लेख मिलते हैं।[2] इसलिए ऐसा लगता है कि राघव चेतन और मोल्हण को अलाउद्दीन ने छिताई-सौंरसी के साथ उन्हें देवगिरि तक पहुँचा देने के लिए कर दिया था। कहा जा सकता है कि क० पाठ में इस प्रकार उन्हें छिताई-सौंरसी के साथ करने का उल्लेख नहीं है, किंतु यह इस कारण प्रतीत होता है कि जिस प्रसंग में उनकी विदाई का उल्लेख था, उसका कुछ अंश खंडित हो गया है। इस प्रसंग में छंद ७२७ की निम्नलिखित अर्द्धाली ध्यान देने योग्य है :—

परस्थानुं (परस्थानौ) तिण छिन ही कीउ (कीओ)।
सीख दीइ (दियइ) छिताई तहाँ।

इस अर्द्धाली के दोनों चरणों का तुक-वैषम्य इस बात को स्पष्ट प्रकट करता है कि इनके बीच में कुछ और चरण थे जो प्रतिलिपि-प्रमाद के कारण छूट गए। फलतः यह उल्लेख भी इस अंश को शेष रचना के साथ ग्रथित करता है।

(५) छंद ७४७ का पूर्वार्द्ध है–

कवीअण कहइ नराइण दास। मरइ फूल जीवइ दिन बास।

---

१. 'छिताई वार्त्ता', छंद ७०, ३२८।

२. वही, छंद ३१८–३८२, ४५७–४७५, ५५२, ६१८–६२२।

इसका दूसरा चरण जायसी के 'पद्मावत' के निम्नलिखित चरण से तुलनीय है :—

फूल मरै पै मरै न बासू।[1]

जायसी की रचना सं० १५९७ की है, और 'छिताई वार्त्ता' की रचना, जैसा हम आगे देखेंगे, उससे बहुत पहले की है।

'पद्मावत' में अलाउद्दीन के द्वारा छिताई-अपहरण का उल्लेख कई बार हुआ है :—

बोलु न राजा आपु जनाई। लीन्ह उदैगिरि लीन्हि छिताई।[2]
जौं छरि आने जाइ छिताई। तब का भएहु जो मुक्ख जताई।[3]
काँप उदैगिरि देवगिरि डरा। तब सो छिताई अब केहि धरा।[4]

किंतु मुसलमान इतिहासकारों ने लिखा है कि छिताई को रामदेव ने स्वेच्छा से अलाउद्दीन को भेंट किया था;[5] और छिताई-संबंधी अन्य सभी ज्ञात रचनाएँ तथा उल्लेख 'पद्मावत' के परवर्ती हैं; अतः 'पद्मावत' में 'छल-पूर्वक' छिताई के अपहरण का जो उल्लेख हुआ है, उसका आधार कदाचित् प्रस्तुत 'छिताई वार्त्ता' ही है। दोनों रचनाओं में उल्लिखित सुवास-संबंधी उक्ति की शब्दावली तक अभिन्न है और वह उक्त दोनों रचनाओं में अंत में ही आती है, इसलिए इस बात की संभावना यथेष्ट है कि 'पद्मावत' के रचयिता के सामने 'छिताई वार्त्ता' का वही रूप था जो हमें क० में मिलता है।

भाषा और शैली की दृष्टि से भी यह अंश शेष प्रति में पाए जाने क० पाठ की भाषा और शैली से किसी प्रकार भिन्न नहीं है। फलतः यह मानना ठीक ही प्रतीत होता है कि क० का यह अंश भी शेष रचना के समान ही प्रामाणिक है।

---

१. मेरे द्वारा संपादित 'जायसी ग्रंथावली' पाठ का छंद ६५२।
२. वही, छंद ४९२।
३. वही, छंद ४९३।
४. वही, छंद ५००।
५. देखिए इस भूमिका का परिशिष्ट (ख)।

श्री० का इस अंश का पाठ उपर्युक्त प्रकार की विशेषताओं से रहित है। उलटे, उसमें ऐसी अनेक बातें मिलती हैं जो उसकी प्रामाणिकता के संबंध में संदेह उत्पन्न करती हैं। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:—

(१) उसके छंद ६८६–६८७ में अलाउद्दीन का सौंरसी से इस विषय का प्रश्न है कि वह कौन है। किंतु इस प्रश्न की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि छिताई ने ही छंद ६८३–८४ में सौंरसी के संबंध में आवश्यक ज्ञातव्य दे दिया है और वही बहुत-कुछ अभिन्न शब्दों में यहाँ सौंरसी देता है।

(२) इसके छंद ६६३ में कहा गया है कि अलाउद्दीन ने सौंरसी को पालिखंड का देश और विजयागिरि का दुर्ग दिया। इतिहास में कहीं भी इन स्थानों के सौंरसी या रामदेव को दिए जाने का उल्लेख नहीं है।

(३) इसके छंद ७०६ में कहा गया है कि दिल्ली से चलकर सौंरसी ने यमुनातटवर्ती चंदागिरि में पड़ाव किया। किंतु यमुनातटवर्त्ती वह स्थान जो दिल्ली के मार्ग में पहले सौंरसी को पड़ा था 'चंदवारि' था (छंद ५६८), और आगे श्री० छंद ७१४ में 'चंद्रगिरि देश' पहुँचने का उल्लेख भी होता है।

(४) इसके छंद ७०६—७१३ में 'चंद्रागिरि' की नारियों का जो वर्णन है, वह बहुत-कुछ चंदवारि के तद्विषयक वर्णन (छंद ५६६–५८१) का ही अनुसरण करता है। इसकी एक अर्द्धाली (छंद ७११ का पूर्वार्द्ध) तो पूर्ववर्ती 'चंदवारि' के ही प्रसंग की (छंद ५६६ का पूर्वार्द्ध) है और उसका पाठ भी वही है जो वहाँ पर श्री० में है। इतना ही नहीं, इस प्रसंग में भी (छंद ७१२) सौंरसी "तपा जोग्यंद" बना हुआ है जैसा वह उक्त प्रसंग में था, यद्यपि अब उसके साथ उसकी स्त्री छिताई है और वह घर लौट रहा है।

(५) इसके छंद ७१५-७१६ तथा ७२०-७२३ में सौंरसी चंद्रनाथ योगी से कहता है कि वह अब उसी के साथ रहना चाहता है क्योंकि उसका मन दृढ़तापूर्वक योग में रहता है, अब वह सुख-संपत्ति-राज छोड़कर उसी में लगना चाहता है, उसने सुंदरी छिताई को केवल इस कारण स्वीकार किया है कि यदि वह सुल्तान का आदेश न मानता और छिताई को ग्रहण न करता तो वह सुल्तान के वश में पड़ी हुई दुःखित होती और उसे भी लोक-लाज सहन करनी पड़ती। वह पुनः कहता है कि गोपीचंद की अनेक स्त्रियाँ थीं, फिर भी उन्होंने उनका त्याग कर योग ग्रहण किया; उसकी तो

एक ही स्त्री है, अतः गुरु (चंद्रनाथ) की आज्ञा हो तो वह उसे छोड़ कर योग ग्रहण कर ले। किंतु यह संपूर्ण कथन शेष रचना की भावना के सर्वथा प्रतिकूल पड़ता है, और रचना में चित्रित सौंरसी के वियोगी रूप को एक स्वाँग मात्र ठहराता है।

(६) छंद ७२७ में देवगिरि-आगमन का जो उल्लेख है वह ठीक ठीक उन्हीं शब्दों में है जिन शब्दों में (छंद ५६८) दिल्ली जाते समय सौंरसी के चंदवारि पहुँचने का उल्लेख हुआ है। दोनों नीचे दिए जा रहे हैं:—

चंदवारि : दीरघ मजलि चल्यो करितार।
पहुँच्यौ जाइ नगर चंदवारि। ५६८
देवगिरि : दीरघ मजलि चल्यो करितार।
पहुँच्यौ द्यौगिरि दुर्ग मझारि। श्री० ७२

(७) इसके छंद ७३७ में सौंरसी ने कहा है कि वह धौरागिरि शंकर की यात्रा के लिए गया, तब उसने वहाँ छिताई का पता पाया। किंतु कथा में यह बात जटाशंकर की यात्रा के संबंध में कही गई है (छंद ५६६)।

(८) इसके छंद ७४८ में कहा गया है कि जब सौंरसी बादशाह को वन में ले गया और वीणा बजाकर उसने उसे मुग्ध कर लिया, उसी समय बादशाह ने कहा कि उसने देवगिरि की वह नारी (छिताई) उसे बख़्श दी जिसे वह देवगिरि से हर ले आया था। यह बात भी कथा के विपरीत पड़ती है। उस समय बादशाह ने यही कहा है:—

कहै साहि जी धरि उल्हास। यह चरित्रु देषै रनिवास।
अधिकु रंग रस बेभयो राग। जो मांगै सो देहौं त्याग॥ ६३६

बोलै बचनु साखि दै धर्म। यह गुन देखै मेरो हरम।
बार बार जंपै सुलितान। जो मांगै सो देहौं दान॥ ६३७

बादशाह ने छिताई को सौंरसी की याचना पर उस समय दिया है जब सौंरसी ने अपने कौशल-प्रदर्शन से छिताई को भी द्रवित कर दिया है (छंद ६७८)।

(९) इसके छंद ७५३-७५७ में कहा गया है कि रामदेव ने उसके सिर पर छत्र दिया और कामना की कि वह 'अविचल राज' करे; अब सौंरसी

राजा होकर अशेष भुवनों पर राज्य करने लगा; ढोलसमुद्र वह बाद में कभी गया, समुद्र के पास के अशेष देशों को उसने जीता जिससे उसके माता-पिता सुखी हुए, तदनंतर वह पुनः देवगिरि लौट आया और अपना राजकार्य देखने लगा। रामदेव के जीवन-काल में ही कोई अन्य राजा हो गया था, इस प्रकार का कोई उल्लेख इतिहास में नहीं होता है। इतिहास के अनुसार उसकी मृत्यु के अनंतर उसका पुत्र राजा होता है, जिसके कर न देने के कारण देवगिरि पर तीसरा आक्रमण होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस अंश का श्री० का पाठ किसी प्रकार भी प्रामाणिक नहीं स्वीकार किया जा सकता है। यह सारा अंश इतिहास ही नहीं शेष रचना के भी विरुद्ध पड़ता है। फलतः क० का अंतिम अंश रचना के पुनर्निर्मित पाठ के साथ स्वीकृत किया गया है, किंतु श्री० का अंतिम अंश संपादित पाठ के परिशिष्ट के रूप में दे दिया गया है।

शेष रचना के संबंध में कोई विशेष पाठ-समस्या नहीं है। उसका पाठ-निर्धारण पाठालोचन के मान्य सिद्धान्तों के अनुसार किया जा सका है। यह अवश्य है कि दो ही प्रतियाँ और उनके भी एक ही शाखा की होने के कारण पाठालोचन की सीमाएँ बहुत संकुचित हो गई हैं।

ऊपर हम देख चुके हैं कि क० तथा श्री० दोनों किसी ऐसे सामान्य पूर्वज की संतानें हैं जो रचयिताओं के पाठ के नीचे कहीं आता था, क्योंकि दोनों में ऐसी अनेक पाठ-विकृतियाँ समान रूप से पाई जाती हैं जो रचयिताओं द्वारा संभव न थीं। इन दोनों प्रतियों की सहायता से इनके उक्त सामान्य पूर्वज का पाठ तो प्रस्तुत करने का प्रयास किया ही गया है, उन सामान्य भूलों का भी जिनका परिहार साध्य था, परिहार करके उक्त सामान्य पूर्वज से ऊपर उस पाठ तक पहुँचने का प्रयास किया गया है जिसे रत्नरंग ने प्रस्तुत किया होगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि भूल-परिहार यथेष्ट सतर्कता के साथ किया गया है, और उसके लिए पाठालोचन के मान्य सिद्धांतों का ही अनुसरण किया गया है। प्राप्त सामग्री के आधार पर यही संभव भी था। भविष्य में नवीन सामग्री प्राप्त होने पर संभव है कि हम कुछ और ऊपर तक पहुँच सकें।

दो-एक बातें इस प्रसंग में और हैं:—

(१) संपादित पाठ के एक-एक शब्द के एक से अधिक रूप मिल सकते

हैं, और मिलेंगे, कारण यह है कि विभिन्न रूपों में कोई साम्य लाने का यत्न नहीं किया गया है। संपादित पाठ का जो शब्द जिस प्रति से लिया गया है, उसको उसी रूप में ग्रहण किया गया है जिस रूप में वह उक्त प्रति में पाया गया है।

(२) जहाँ पर कोई शब्द विशिष्ट लिपिविन्यास के कारण भिन्न ढंग से पढ़ा जाना चाहिए, वहाँ पर साधारणतः उसका लिखित रूप ही दिया गया है किंतु साथ साथ छोटे कोष्ठकों ( ) में वह रूप भी दे दिया गया है, जो पढ़ा जाना चाहिए। जहाँ पर इस विषय में पूर्ण निश्चयात्मकता नहीं है, वहाँ पर पठनीय रूप देते हुए प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया गया है।

(३) इसी प्रकार, जहाँ पर कोई शब्द पाठ-प्रमाद अथवा लिपि-प्रमाद के कारण किसी प्रति में अशुद्ध लिखा गया प्रतीत होता है, उसका पाठ ग्रहण करते समय वह अशुद्ध रूप ही दिया गया है, किंतु साथ-साथ छोटे कोष्ठकों ( ) में वह शब्द भी दे दिया गया है जो वहाँ होना चाहिए था। यहाँ पर भी पूर्ण निश्चयात्मकता के अभाव में प्रस्तावित शब्द के साथ प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया गया है।

(४) जहाँ पर कोई शब्दांश अथवा शब्द प्रति में छूटा हुआ है, वहाँ पर यह छूटा हुआ शब्दांश अथवा शब्द भी बड़े कोष्ठकों [ ] में सुझा दिया गया है। किंतु यहाँ भी पूर्णनिश्चयात्मकता के अभाव में प्रस्तावित शब्दांश या शब्द के साथ प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया गया है।

(५) जहाँ पर यह निश्चित प्रतीत होता है कि कोई शब्दांश या शब्द प्रति में छूटा हुआ है, किंतु उसके संबंध में कोई प्रस्ताव संभव नहीं हुआ है वहाँ पर बड़े कोष्ठकों [ ] को देते हुए उनके भीतर प्रश्नवाचक चिह्न मात्र बनाकर छोड़ दिया गया है।

४ – रचना का नाम

क० के अनुसार रचना का नाम 'छिताई वार्ता' है किंतु यह नाम पुष्पिका में ही मिलता है, जो ऊपर उद्धृत की जा चुकी है, रचना में नहीं मिलता है।

श्री० के अनुसार रचना का नाम 'छिताई चरित' है:—

चरित छिताई आयौ छेउ। ७६०

और उसकी पुष्पिका में, जो ऊपर उद्धृत की जा चुकी है, नाम 'छिताई कथा' है।

रचना के प्रारंभिक ६१ छंद दोनों प्रतियों में नहीं हैं, अन्यथा ऐसी कोई समस्या हमारे सामने कदाचित् न खड़ी होती। प्रश्न यह है कि इन तीन नामों में कौन सा अधिक ग्राह्य होगा।

ऊपर हमने देखा है कि श्री० का अंतिम अंश प्रक्षिप्त लगता है, अतः उसके आधार पर या उसकी पुष्पिका के आधार पर रचना का नाम ग्रहण करना उचित नहीं प्रतीत होता है। इसके विपरीत, हमने ऊपर देखा है कि क० का अंतिम अंश सभी दृष्टियों से प्रामाणिक लगता है। रचना का नाम उस अंश में तो नहीं आता है, फिर भी उसकी पुष्पिका पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं प्रतीत होता है। इसलिए जब तक और निश्चयात्मक कोई साक्ष्य प्राप्त न हो, रचना का नाम क० की पुष्पिका के आधार पर 'छिताई वार्ता' ग्रहण किया जा सकता है।

५ — रचयिता

रचना प्रस्तुत रूप में नारायण दास तथा रतनरंग—दो कवियों—की कृति है। अंतिम असी-पचासी छंदों को छोड़कर, जिनका पाठ दोनों प्रतियों में एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है और जिनमें से क० के पाठ में केवल नारायणदास और श्री० के पाठ में केवल रतनरंग के नाम आते हैं, शेष संपूर्ण रचना में दोनों रचयिताओं के नाम आते हैं। उदाहरण के लिए जिस प्रकार संपादित पाठ के छंद १२८, १४३, ५४२, ६६०, ७३२, ७४६ में नारायण दास का नाम रचयिता के रूप में आता है और छंद ३४५ तथा ५०५ में 'कवि नारा-इन दास वाच' कहा गया है, उसी प्रकार उसके छंद १६०, ३६८, ५०४, ५२२ में रचयिता के रूप में 'रतनरंग' का नाम आता है और छंद ३५६ तथा ५०४ में 'कवि रतनरंग वाच' कहा गया है। इनमें से छंद ३६८ क० में तथा छंद १२८, १२३, १६० श्री० में उक्त प्रतियों के उन स्थलों पर

खंडित होने के कारण नहीं है, किंतु शेष छंद दोनों प्रतियों में समान रूप से पाए जाते हैं।

यहाँ पर यह जिज्ञासा हो सकती है कि रचना में दो रचयिताओं के नाम आने का रहस्य क्या है। क्या दोनों ने साथ-साथ मिलकर रचना की थी, अथवा पहले दोनों की रचनाएँ अलग-अलग थीं किंतु बाद में उन्हें किसी व्यक्ति ने एक कर दिया, अथवा दोनों में से एक ने पहले रचना की और कुछ समय बाद दूसरे ने उसमें कुछ और संशोधन-परिवर्तन करके अपने को रचयिता के रूप में सम्मिलित कर दिया। इन तीन विकल्पों में से किसी को छोड़ना या ग्रहण करना कठिन होता, किंतु रचना के दो छंदों में आनेवाले उल्लेखों ने इस कार्य को सुगम कर दिया है। वे उल्लेख निम्नलिखित हैं:—

(१) रतनरंग गुनियन गुन गुनौ। ३६८

(२) रतनरंग कबियन बुधि लई। समौ बिचारि कथा बनंई।
गुनियन गुनी नराइन दास। तामहिं रतन कियौ परगास॥ ५०४

इनमें से पहले उल्लेख के स्थान पर क० खंडित है किंतु दूसरा उल्लेख दोनों प्रतियों में पाया जाता है। दोनों प्रतियों में इस उल्लेख के पाठ के संबंध में अंतर इतना ही है कि क० में 'कथा' के स्थान पर पाठ 'नाथ' है। किंतु प्रसंग में 'नाथ' की कोई सार्थकता नहीं प्रतीत होती है, और ऊपर कहा जा चुका है कि श्री० क० की अपेक्षा कहीं अधिक सतर्कता से लिखी गई है, इसलिए 'कथा' पाठ ही ग्राह्य है। इन उल्लेखों से प्रकट है कि 'कविजन' अथवा 'गुणीजन' (नारायण दास) से बुद्धि और कल्पना लेकर रतनरंग ने उसको विकसित किया; इन उद्धरणों में आए हुए 'कवियन' और 'गुनियन' शब्द नारायण दास के लिए प्रयुक्त हुए हैं। रचना में अन्यत्र भी 'कवियन' शब्द[1] इसी प्रकार प्रयुक्त हुआ है:—

कवियन कहै नराइन दास। १२८, १४३, ५४२, ६६०, ७४६
कविअण तुच्छ कहइ समझाइ। ७३२

इस प्रकार का कार्य साहित्य के इतिहास में बराबर होता आया है, यह

१—तुलना के लिए देखिए 'पृथ्वीराजरासो' (ना० प्र० स० संस्करण) में 'संग्राम कथ्थ नथ्थइ तनी कहिय चंद कवियन सइछ।' ६६–१६१७ तथा 'आयस यो गुनियन तन चाह्यउ।' ६१–४६०

अवश्य है कि इस प्रकार स्पष्ट रूप से उसके संबंध में कहने वाले कम मिलते हैं।

हमें ठीक इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण 'मधुमालती वार्ता' के संबंध में मिलता है। मूलतः उक्त रचना चतुर्भुज दास निगम की थी, और प्रायः प्रतियाँ कुछ प्रक्षेपों के साथ भी इसी पाठ को देती हैं, किंतु इसकी एक प्रति ऐसी भी मिली है जिसमें माधव शर्मा ने उसी प्रकार का कार्य किया है जिस प्रकार रतनरंग ने किया है, और रतनरंग की ही भाँति उन्होंने भी इस प्रकार का स्पष्ट उल्लेख कर दिया है :—

मधुमालती बात यह गाई। दोय जनां मिलि सोय बणाई।
येक साथ [अरु?] ब्राह्मन सोई। दूजौ कायथ कुल मैं होई।
येक नाम माधव बड़ होई। मनोहरपुरी जानत सब कोई।
कायथ नाम चत्रभुज जाकौ। मारू देसि भयौ ग्रह ताकौ।
पहली कायथ कही ज बानी। पाछै माधव उचरी बानी।

कायथ गाई जानिकै रसिकनि रसकी बात।
नाम चत्रभुज ही भयौ मारु माहिं बिष्यात ॥[1]

मेरा अनुमान है कि नाभादास की रचना के रूप में प्रसिद्ध 'भक्तमाल' के संबंध में भी तथ्य कुछ इसी प्रकार का होगा। उसमें नाभादास के अतिरिक्त 'नारायण दास' नाम भी आता है, जिसको टीकाकारों और विद्वानों ने नाभादास का पर्याय मान लिया है। किंतु यह असंभव नहीं है कि नाभादास के पूर्व नारायणदास का कोई 'भक्तमाल' रहा हो, जिसमें नाभादास ने संशोधन परिवर्धन करके 'भक्तमाल' का वर्त्तमान रूप प्रस्तुत किया हो। प्रचार इसी पिछले 'भक्तमाल' का विशेष हुआ क्योंकि इसमें पूर्ववर्ती 'भक्तमाल' पूर्ण रूप से आत्मसात् हो चुका था, और इसमें अनेकानेक परवर्त्ती संतों और भक्तों के वृत्त भी आ गए थे। प्रियादास ने इस परवर्त्ती 'भक्तमाल' पर टीका करके इसे और भी प्रचार प्रदान किया। अब तो हमारे इतिहास ने नारायणदास को सर्वथा विस्मृत कर दिया है, और संपूर्ण रचना नाभादास की कृति मान ली गई है।

दूसरी जिज्ञासा इस प्रसंग में यह हो सकती है कि कितना अंश प्रस्तुत

१—विशेष जानकारी के लिए देखिए मेरे द्वारा लिखित 'चतुर्भुजदास की मधुमालती और उसका रचनाकाल'—कल्पना, सितं० १९५४, पृ० १९।

'छिताई वार्ता' में नारायणदास का और कितना रतनरंग का है। जिन छंदों में उनकी अपनी-अपनी 'छाप' मिलती है, उनके रचयिता के संबंध में कोई प्रश्न नहीं हो सकता, किंतु शेष छंदों में से कितने और कौन-कौन से किसके हैं, यह कहना तब तक संभव न होगा जब तक कि रचना की कोई ऐसी प्रति न मिल जावे जिसमें केवल नारायणदास का पाठ हो, अथवा उसके संबंध में किया गया किसी अन्य का इसी प्रकार का प्रयास हो जैसा रतनरंग ने किया है।

६ :– रचना-काल

रचना के प्राप्त अंशों में उसकी तिथि नहीं आती है, और न कोई ऐसी बात ही आती है जिससे उसकी निश्चित रचना-तिथि निकाली जा सके। अतः उसके संबंध में स्वतंत्र रूप से विचार करना होगा।

ऊपर हम देख चुके हैं कि क० के पाठ में भी नारायणदास तथा रतनरंग रचयिताओं के रूप में आते हैं, और जैसा प्रारंभ में ही बताया जा चुका है क० किसी करमसी की लिखी हुई प्रति है, नारायणदास अथवा रतनरंग की हस्तलिपि नहीं है। अतः यह निर्विवाद रूप से मानना पड़ेगा कि रतनरंग द्वारा पल्लवित रूप भी क० के प्रतिलिपि-काल सं० १६४७ के पूर्व का होगा।

ऊपर हम यह भी देख चुके हैं कि क० तथा श्री० में इस प्रकार की अनेक भूलें समान रूप से पाई जाती हैं जिनसे यह प्रमाणित है कि उनका कोई सामान्य पूर्वज था, और वह भी रतनरंग के द्वारा पल्लवित पाठ के नीचे कहीं आता था, क्योंकि इस प्रकार की एक साथ इतनी भूलें किसी भी रचयिता द्वारा संभव न थीं।

और हम यह देख ही चुके हैं रतनरंग ने कोई नई रचना नहीं प्रस्तुत की, उन्होंने उसी रचना को पल्लवित मात्र किया जो उन्हें नारायणदास की रचना के रूप में मिली थी।

अतः यदि हम इस समूची पाठ परंपरा को एक चक्र द्वारा व्यक्त करना चाहें, तो हम इस प्रकार करेंगे:—
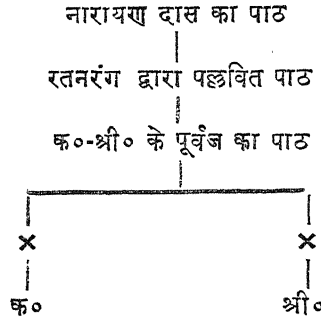
कहना न होगा कि हमने इस पाठ-परंपरा के निर्धारण में केवल अपेक्षाकृत महत्व की पाठ-स्थितियों को ही लिया है। बीच-बीच में निश्चित ही कुछ गौण पाठ-स्थितियाँ भी होनी चाहिएँ जिन्हें छोड़ दिया गया है। उदाहरण के लिए क० और श्री० के सामान्य पूर्वज से ही क० तथा श्री० की प्रतिलिपि न हुई होगी, अन्यथा प्रतिलिपि संबंधी अपनी-अपनी भूलों के अतिरिक्त दोनों में वे अनेक छंद न मिलते जो अलग अलग उनके अपने-अपने प्रक्षेप माने जा सकते हैं। ऐसा स्पष्ट है कि उक्त सामान्य पूर्वज की नीचे की किसी भी पीढ़ी की एक प्रति में कुछ छंद बढ़ाए गए थे, और उसी प्रति की नीचे की किसी पीढ़ी में क० आती है। इसी प्रकार उक्त सामान्य पूर्वज की नीचे की किसी भी पीढ़ी की किसी अन्य प्रति में कुछ अन्य छंद बढ़ाए गए थे, और उसी प्रति की नीचे की किसी पीढ़ी में श्री० आती है। कुछ इसी प्रकार की पाठ-पीढ़ियाँ ऊपर बढ़ने पर उक्त सामान्यपूर्वज तथा रतनरंग के पल्लवित पाठ और पुनः रतनरंग के पल्लवित पाठ और नारायणदास के पाठ के बीच में भी होंगी। केवल पर्याप्त सामग्री अभी हमें प्राप्त नहीं है इसीलिए हम और अधिक निश्चयात्मकता के साथ उनके विषय में नहीं कह सकते हैं।

ऊपर उल्लिखित बातों को ध्यान में रखते हुए यदि हम कहें कि क० तथा क० और श्री० के सामान्य पूर्वज के बीच लगभग ५० वर्षों का, उक्त सामान्य पूर्वज और रतनरंग के द्वारा प्रस्तुत पल्लवित पाठ में लगभग ५० वर्षों का और रतनरंग के उक्त पाठ और नारायणदास के पाठ में लगभग ५० वर्षों का अंतर होगा, तो हम कदाचित् अत्युक्ति न करेंगे। अतः मेरा विश्वास है कि क० और नारायणदास के पाठ में लगभग १५० वर्षों और क० तथा रतनरंग के पाठ में लगभग १०० वर्षों का अंतर तो अवश्य ही होगा। इस प्रकार नारायणदास की रचना का समय सं० १५०० के लगभग

और रतनरंग की रचना का समय सं० १५५० के लगभग मान लेने में किसी प्रकार की आपत्ति न होनी चाहिए, इतना तो अभी भी प्राप्त सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है। भविष्य में कुछ और सामग्री के प्राप्त होने पर दोनों का समय यदि कुछ और ऊपर पहुँच जावे, तो आश्चर्य न होगा।

ग्रंथ की भाषा और शैली भी इसी परिणाम का पुष्टि करती हैं। अपने वर्त्तमान रूप में भी इसकी भाषा और शैली भक्ति युग की किसी भी ज्ञात रचना की भाषा और शैली से प्राचीनतर लगती है। इस दृष्टि से वस्तुतः यह हिंदी के आदियुग और भक्तियुग के बीच की एक कड़ी प्रतीत होती है। यह बात नीचे के उदाहरणों से स्पष्ट हो जावेगी। इनमें से पहला उद्धरण अलाउद्दीन की दूतियों और छिताई के वार्त्तालाप से है, और दूसरा अलाउद्दीन की दासियों और छिताई के वार्त्तालाप से है:—

(१) तूं म्रिगनैनी देखि बिचारि। जोबन कौ सुषु जुवा म हारि।
जोबनु रयण पाहुणो आहि। गअै मूढ़ पाछैं पछिताहिं ॥५१६
तरवंर कट्यो बहुरि पालुहै। सरवर सूको बहुरि जल भरै।
बिछुर्‌यौ मिलै बहुरि हू आइ। कहैं सयाने बात बनाइ ॥५१७
ऐसी कहैं सयाणे लोइ। जोबनु गयो बहुरि नहीं होइ।
संपति बिपति होइ पुण जाइ। ए सब सुणइ क्रम्म के भाइ ॥५१८
जोबनु सुधा पाइ संसारि। सुख चूकए ते महा गंवार।
चंपी जीभ छिताई दंत। अैसी बात कहै क्यौं संत ॥५१६

(२) तूं है कुंवरि हमारी धणी। हम तौ दासि रामदेव तणी।
यह तौ बात करम बसि परी। अब दुष छोड़ि छिताई तिरी ॥५४३
तैं एते सं तनु गुण हर्‌यौ। न्याइ वियोगु विधाता कर्‌यौ।
तैं सिर गुंथी जु बैनी माल। लाजनि गए भुयंग पयालि ॥५४४
बदन जोति तैं ससिहर हरी। तूं सुख क्यौं पावै सुंदरी।
हरे हरिण लोचन तैं नारि। ते म्रिग सेवैं अजौं उजारि ॥५४५
जे गज कुंभ तोहि कुच भए। ते गज देस दिसंतर गए।
तैं केहरि मंझस्थलु हर्‌यौ। तौ हरि ग्रेह कंदल नीसर्‌यौ ॥५४६
दसन जोति ते दारिउं भए। उदर फूटि ते दारिउं गए।
कमल बासु लई अंग छिड़ाइ। सजल नीर ते रहे लुकाइ ॥५४७
जइ तैं हरी हंस की चाल। मलिन मानसर गए मराल।
होइ संत माननी मान। तजै देस कै छंडै जान ॥५४८

ये स्थल जान बूझकर मैंने रचना के कोमल प्रसंगों से लिए हैं, क्योंकि परुष प्रसंगों में अपभ्रंश भाषा-शैली की छाया हमारे साहित्य में बहुत पीछे तक मिलती रही है। किंतु इन कोमल प्रसंगों में भी म (>न), रयण (<रत्न), सूको (<शुष्क), लोइ (<लोक), क्रम (<कर्म), पयाल (<पाताल), ससिहर (<शशधर), कंदल (<कंदर), मंझस्थल (<मध्यस्थल), दारिउं (<दाडिम), जइ (<यदि), संत (<शांत) आदि अपभ्रंश प्रयोग ध्यान देने योग्य हैं। 'न' के स्थान पर 'ण' का प्रयोग-बाहुल्य भी इसमें कुछ न कुछ उसी प्रकार मिलता है जिस प्रकार अंतिम अपभ्रंश में, यथा रयण, पाहुणो, सयाणे, पुण, घणी, तणी आदि में इसी प्रकार अपभ्रंश के व्याकरण के अवशेष भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। पुल्लिंग अकारांत शब्दों में प्रथमा तथा द्वितीया में उकारांत यथा सुषु, जोबनु, बियोगु, मंझस्थलु, तथा वासु में, तृतीया तथा पंचमी में सं, यथा एते सं में, षष्ठी में तणा, तणी तथा तणे यथा रामदेव तणी में और सप्तमी में इकारांत, यथा भाइ, संसारि, करमबसि, पयालि आदि में अपभ्रंश की ओर ही निर्देश करते हैं।

रचना के ऊपर उद्धृत इन चालीस चरणों से ही उसकी भाषा-शैली की स्थिति का अनुमान सहज में किया जा सकता है।

७ – कथा

कथा संक्षेप में इस प्रकार है:—

अलाउद्दीन की सेना ने निसुरत खाँ के सेनानायकत्व में देवगिरि पर आक्रमण कर दिया। देवगिरि के राजा रामदेव को जब यह समाचार मिला, अपने बलाबल का विचार करके उसने निसुरत खाँ के साथ [संधि करके] दिल्ली जाने का निश्चय किया। अतः वह निसुरत खाँ से जा मिला और उसके साथ दिल्ली चला गया। अलाउद्दीन उसके आगमन से बहुत प्रसन्न हुआ, और उलुग खाँ को उसने रामदेव के स्वागत के लिए भेजा। उसने दस लाख टके इनाम में दिए और तदनंतर उसने रामदेव को बड़े सत्कार-पूर्वक अपने पास ही ग़ैरमहल में रक्खा।

धीरे-धीरे रामदेव को दिल्ली आए तीसरा वर्ष हो गया। उसकी कन्या छिताई सयानी हो चली थी, इसलिए उसकी रानी ने रामदेव के पास

देवगिरि लौटने के लिए संदेश भेजा। रामदेव ने पत्र पाने पर देवगिरि लौटने का निश्चय किया, अतः अलाउद्दीन से दूसरे दिन उसने बिदा माँगी, और अलाउद्दीन ने उसे सत्कारपूर्वक विदा करने की आज्ञा दे दी। साथ ही, उसने रामदेव से यह भी कहा कि उसकी सेवा से उसे बहुत सुख हुआ है, अतः उसे जो भी रुचे वह माँग सकता है। रामदेव ने बिदाई में एक कुशल चित्रकार माँगा, जो वहाँ से देवगिरि जाकर उसके राजभवन में सुंदर चित्र अंकित कर सकता। अलाउद्दीन ने उसका यह अनुरोध स्वीकार किया और दूसरे दिन रामदेव को विदा करते समय एक कुशल चित्रकार उसके साथ कर दिया।

दिल्ली से चलकर रामदेव देवगिरि पहुँचा। वहाँ उसने चित्र कला के प्रदर्शन के लिए एक नवीन प्रासाद निर्मित कराया, जिसमें चित्रकार अनेकानेकसुंदर दृश्यों का चित्रण करने लगा। इसी बीच एक दिन राजकन्या छिताई उस चित्रावास को देखने के लिए आई। चित्रकार उसके सौंदर्य को देखकर मूर्च्छित हो गया। तब से वह निरंतर उसकी प्रतीक्षा में रहता, और जब पुनः छिताई उस चित्रशाला में आई, 'उस चतुर चित्रकार ने उसे जैसी देखा कागज पर वैसी ही उतार लिया—उसका देखना, चलना, उठना, तथा मुस्कुराना [सब कुछ] चित्रकार ने पूर्णता के साथ रंगों में चित्रित कर लिया।' इसी प्रकार वह एक बार और चित्रशाला में आई। इस बार वह हाथों में हरे जौ लिए हुए मृग शावकों को खिला रही थी। उसकी इस मुद्रा को देखकर चित्रकार पुनः मूर्च्छित हो गया, और जब वह चेत में आया उसने एक और चित्र उसकी इस मुद्रा का भी बना लिया।

वह नव राज प्रासाद जब इस प्रकार चित्रादि से अलंकृत होकर तैयार हो गया, तब रामदेव ने छिताई का विवाह स्थिर किया। विवाह द्वारसमुद्र के राजा भगवान नारायण के शील-गुण-संपन्न पुत्र सौंरसी के साथ होना निश्चित हुआ। द्वारसमुद्र से बारात आई, विवाह हुआ, और छिताई को विदा करा कर राजा भगवान नारायण द्वारसमुद्र वापस गए। छिताई वहाँ कुछ समय तक रही, तदनंतर देवगिरि से पिता का बुलावा आने पर सौंरसी के साथ यहाँ आ गई। यहाँ नव दंपति सुखपूर्वक रहने लगे।

सौंरसी को मृगया का व्यसन था, और वह रामदेव के मना करने पर भी न मानता था। एक दिन उसे आखेट में फिरते-फिरते सूर्यास्त के समय

मृग मिला। सौंरसी ने सारी रात उसका पीछा किया, किंतु वह मृग तब भी हाथ न आया। भागते भागते वह मृग गहन वन में वहाँ पहुँचा जहाँ भर्तृहरि आश्रम बना कर रहते थे। उस समय वे समाधिस्थ थे। इस हाँका-हाँकी से वे जाग पड़े, और उन्होंने सौंरसी को उस मृग का वध करने से मना किया। उन्होंने अनेक प्रकार से सौंरसी को समझाया, किंतु सौंरसी ने जब फिर भी उनका कहना नहीं माना तो भर्तृहरि ने उस मृग को सौंरसी से बचाते हुए सौंरसी को शाप दिया कि उसने उनके कथन का अनादर किया है इसलिए उसकी स्त्री अन्य के वश में पड़ेगी। इस घटना से सौंरसी अत्यंत दुःखित हुआ, और देवगिरि वापस आया।

चित्र-निर्माण का कार्य समाप्त हो ही चुका था, इसलिए रामदेव ने चित्रकार को विदा किया, और उसके साथ अलाउद्दीन के लिए उसने अनेक पदार्थ उपहार में भेजे। दिल्ली पहुँच कर चित्रकार ने वे सब उपहार अलाउद्दीन के संमुख रखे, जिन्हें देखकर वह विस्मित हुआ। अलाउद्दीन ने चित्रकार का मुँह उतरा और कुम्हलाया हुआ देखकर उसका कारण जानना चाहा, तो चित्रकार ने इस प्रश्न का उत्तर उसे बाद में देने की अनुमति चाही। सभा जब विसर्जित हुई, तो अलाउद्दीन चित्रकार को ग़ैर महल में ले गया। वहाँ पर चित्रकार ने छिताई के संबंध में अलाउद्दीन से विस्तारपूर्वक निवेदन किया, और उसके जो चित्र उसने देवगिरि में उतारे थे, उन्हें भी उसे दिया। उन चित्रों को देखते ही अलाउद्दीन मूर्च्छित हो गया। चेत में आने पर उसने वे चित्र अपनी एक हिंदुनी स्त्री हयवती को दिखाए। वह भी उन चित्रों को देखकर छिताई पर मुग्ध हो गई, और उससे कहने लगी कि जिस प्रकार भी संभव हो, वह उसे छिताई को जीवित दिखाए।

अतः अलाउद्दीन ने एक बड़ी सेना लेकर स्वतः देवगिरि के लिए प्रस्थान कर दिया। दिल्ली में उसने उलुग़ खाँ को छोड़ दिया था। मार्ग के स्थानों को तहस-नहस करता और देवालयों को ढहा कर मसजिदें बनाता अलाउद्दीन देवगिरि पहुँच गया। उसने देवगिरि पर घेरा डाल दिया। उधर सौंरसी के नेतृत्व में रामदेव की सेना भी सुसजित हुई, और युद्ध के लिए गढ़ के बाहर आ गई। घोर युद्ध हुआ। अनेक सामंत और सैनिक दोनों ओर से काम आए।

जब अलाउद्दीन को इस प्रकार घेरा डाले हुए छः महीने हो गए तब

रामदेव ने सोचा कि सौंरसी और छिताई को वहाँ से अन्यत्र भेज देना चाहिए। इसलिए उसने बुला कर सौंरसी से यह बात कही। किंतु इस संकट के समय राजपूत होने के नाते सौंरसी रामदेव को छोड़ने के लिए प्रस्तुत नहीं हुआ, अतः रामदेव ने उससे कहा कि वह द्वारसमुद्र जाकर उसकी सहायता के लिए सेना ही लावे। सौंरसी ने यह स्वीकार कर लिया, और छिताई से बिदा ले कर वह द्वारसमुद्र चला गया। जाते समय वह छिताई को अपनी कंठमाला, अपना बागा (लंबा अँगरखा) तथा दक्षिणी जमधर चिन्ह-स्वरूप देता गया। छिताई ने सौंरसी के प्रस्थान करते ही अपने समस्त आभरण उतार दिए और उसके दिए हुए वस्त्राभरण तथा शस्त्र धारण करके तपस्विनी का सा जीवन व्यतीत करना प्रारंभ किया।

अलाउद्दीन को किसी प्रकार यह आभास हो गया कि सौंरसी देवगिरि दुर्ग से उतर गया है। उसने राघव चेतन को बुलवा कर उससे अपना यह संदेह प्रकट किया, और कहा कि यदि छिताई भी उसके साथ निकल गई होगी तो देवगिरि दुर्ग पर अधिकार प्राप्त करना भी निरर्थक ही होगा। उसने कहा कि पद्मिनी के सौन्दर्य की प्रशंसा सुन कर उसने चित्तौर पर आक्रमण किया था और रत्नसेन को बंदी किया था, किंतु बादल उसे छुड़ा ले गया था, और उसका वह प्रयत्न निष्फल गया था। यदि उसी प्रकार इस बार भी उसका प्रयत्न निष्फल गया तो वह देवगिरि में प्राण त्याग कर देगा। इसलिए छिताई गढ़ में है या सौंरसी के साथ चली गई है, यह पता लगाने की वह कोई युक्ति बतावे। उसने फिर कहा कि संभव है वे (सौंरसी-छिताई) रणथंभौर देव (हम्मीर) के पास गये हों, तब तो यहाँ काम बनने की कोई आशा उन्हें न करनी चाहिए, यदि वे द्वारसमुद्र गए हों, तो समुद्र पर पुल बाँध कर वह द्वारसमुद्र पर आक्रमण कर दे, और यदि छिताई देवगिरि दुर्ग में ही हो तो जिस प्रकार भी संभव हो वह सैनिक शक्ति एकत्रित करके देवगिरि दुर्ग को ढहा दे।

राघव चेतन को पहले तो कुछ नहीं सूझ रहा था, किंतु अपनी इष्ट देवी पद्मावती का ध्यान करने पर उसकी समझ में एक युक्ति आई। अलाउद्दीन से उसने कहा कि यदि गढ़ के भीतर दूतियाँ भेज दी जातीं, तो वे जिस प्रकार भी संभव होता, छिताई का समाचार ला सकतीं। अलाउद्दीन को यह युक्ति ठीक जँच गई। दो दूतियाँ बुलाई गईं, जो इस प्रकार के कार्य में बड़ी

कुशल थीं, और देश-देश की भाषाएँ बोल लेती थीं। उन्होंने छिताई का समाचार लाने का बीड़ा लिया और साधुनियों का वेष धारण किया। उनके उस सुरक्षित गढ़ के भीतर प्रवेश करने की बात आई, तो यह ठहरा कि राघव चेतन बसीठ के रूप में गढ़ के भीतर प्रविष्ट हो और उसी के साथ ये दूतियाँ भी उसके भीतर चली जावें। तब तक अलाउद्दीन के मन में यह बात उठी कि वह भी देवगिरि गढ़ को भीतर से देखे, अतः वह भी राघव चेतन के सुखासन के साथ उसके अनुचर के रूप में चलने को प्रस्तुत हुआ। वे सब के सब चल पड़े।

गढ़ के भीतर प्रविष्ट होने पर दूतियाँ रनिवास की ओर गईं, राघव चेतन राज-दरबार की ओर गया, और बादशाह नगर की ओर चला। देखते-देखते बादशाह देवगिरि के सुंदर राज-सरोवर—राम सरोवर—के किनारे पहुँचा। आते समय वह साथ में गुलेल तथा कुछ गोलियाँ लेता आया था। उनकी सहायता से वह वहाँ पक्षियों का आखेट करने लगा। संयोगवश छिताई भी अपनी सखियों के साथ उस समय राम सरोवर पर आई हुई थी। बादशाह अपने नित्य के अभ्यास के अनुसार गोलियों के लिए बार-बार अपना हाथ कंधे के पीछे करता था—क्योंकि वह इसी प्रकार अपने खवास (अनुचर) से गोलियाँ माँगा करता था—किंतु गोलियाँ वह छिपाकर अपने फेंटे में लाया था, इसलिए ध्यान होने पर वह फेंटे से गोलियाँ निकालता था। यह देखकर छिताई को संदेह हुआ, और वह अपनी एक चतुर सखी मैनरेखा को इसका पता लगाने के लिए कि यह नवागंतुक कौन था, छोड़ कर वहाँ से चली गई।

मैनरेखा बादशाह के पास पहुँची और उसे पीछे से गोलियाँ थमाने लगी। अब उसे विश्वास हो गया था कि यह बादशाह है। जब सारी गोलियाँ समाप्त हो गईं, उसने बादशाह का फेंटा पकड़ा और बताया कि वह उसे भली भाँति जान गई है, और उसे रामदेव के पास ले जावेगी। बादशाह ने उसे बँहकाना चाहा कि वह बादशाह नहीं है, किंतु उसकी एक न चली। विवशता का अनुभव करके बादशाह उससे गिड़गिड़ाने लगा, और कहने लगा कि वह देवगिरि दुर्ग से अपना घेरा उठा लेगा, और और भी जो कुछ वह कहेगी करेगा, केवल उसे रामदेव के सामने न ले जाया जावे और मुक्त कर दिया जावे। मैनरेखा के मन में भी यह बात जँच गई।

बादशाह ने उसे इस विषय का प्रतिज्ञा-पत्र लिख कर दिया और धर्मग्रंथ छू कर इसके लिए शपथ ली, तब भैनरेखा ने उसे मुक्त किया।

इस बीच राघव चेतन रामदेव के दरबार में गया। अलाउद्दीन ने देवगिरि को क्यों घेर रक्खा था, रामदेव के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए राघव ने कहा, "बादशाह ने तेरी प्रीति का निर्वाह किया, किंतु तू ने केवल दो दासियाँ उसे भेंट कीं (और अपने कर्तव्य की इति-श्री समझ ली), इसीलिए उसने तेरा गढ़ घेरा है। तू सुंदर मणियाँ, सुंदर घोड़े, मत्त गज उसे दे, जिससे प्रीति रहे। तू देवगिरि छोड़ दे तो तेरी जान बचे, और इसके साथ ही तू अपनी कन्या छिताई को भी बादशाह को दे।" यह सुनते ही रामदेव अत्यधिक क्रुद्ध हुआ और राघव को मारने को उद्यत हुआ, किंतु उसके सामन्तों ने बीच-बचाव किया। राघव देवगिरि गढ़ से सकुशल नीचे उतर आया। यहाँ आकर उसने सारी बातें अलाउद्दीन को बताईं और अलाउद्दीन ने भी समस्त आप बीती राघव से कही।

भैनरेखा को दिए गए अपने वचनों के अनुसार अलाउद्दीन ने घेरा उठाने की आज्ञा दे दी थी, इसलिए कूच को तैयारियाँ होने लगी थीं। रामदेव के प्रधान [अमात्य] पीपा ने इस प्रकार की तैयारियाँ देखीं तो उसने रामदेव को उसकी सूचना दी। तब तक भैनरेखा रामदेव के पास पहुँची और उसने बादशाह को पकड़ने और उससे देवगिरि के घेरे को समाप्त करने का वचन लेकर उसे मुक्त करने का सारा वृत्तांत बताया। साथ ही उसने वह प्रतिज्ञा-पत्र भी दिया जो बादशाह ने उसे इस संबंध में लिखकर दिया था। रामदेव ने इस वृत्तांत को सुनकर कहा कि यदि वह शीघ्र ही बादशाह की कटक को हटवा देगी तो वह उसे अपना आधा राज्य दे देगा। भैनरेखा ने जाकर एक मकान की छत से बादशाह से अविलंब कूच करने और अपने वचन का पालन करने के लिए कहा। बादशाह ने उत्तर दिया कि उसने कूच की आज्ञा दे दी है। वह अपनी सेना लेकर वहाँ से लौट पड़ा था। चारों ओर दासी की प्रशंसा होने लगी थी।

किंतु रामदेव के प्रधान [अमात्य] पीपा ने रामदेव से कहा, "बादशाह तो कूच की तैयारियाँ स्वतः कर रहा था—जैसा उसने उससे पहिले ही निवेदन किया था, और इसमें दासी का कोई निहोरा नहीं है। यदि बादशाह ने दासी की बातों पर इस प्रकार किया है, तो उसकी चतुरता और कुशलता

तब प्रमाणित हो जब वह बादशाह को वापस बुलाकर पुनः देवगिरि पर घेरा डलवा दे।" यह सुनकर मैनरेखा ने उसी प्रकार बादशाह से देवगिरि पर घेरा डालने का अनुरोध किया और बादशाह ने देवगिरि पर पुनः घेरा डाल दिया। फिर तो भीषण युद्ध हुआ। पीपा परिगही ने जब इस प्रकार का भीषण युद्ध देखा, वह अत्यंत लज्जित हुआ, और युद्धक्षेत्र में संमुख लड़ते हुए उसने अपने प्राण दिए।

इस बीच दूतियाँ साधुनियों के वेष में जाकर छिताई से मिलीं। उन्होंने उस वियोगिनी को व्रतभ्रष्ट करने के अभिप्राय से यौवन और सौंदर्य की उपयोगिता का प्रतिपादन किया। छिताई उनके इस आचरण से शंकित हुई, किंतु उन्होंने यह कर उसका समाधान कर दिया कि वे केवल उसकी परीक्षा ले रहीं थीं, उनका और कुछ अभिप्राय नहीं था। दूसरे दिन सवेरा होने पर छिताई शिवलिंग की पूजा के लिए चली। यह स्थान गढ़ के बाहर था, किंतु एक सुरंग के मार्ग द्वारा छिताई नित्य प्रातः काल उसी समय से वहाँ जाने लगी थी जिस समय से सौंरसी उसे छोड़कर द्वारसमुद्र गया था। दूतियाँ भी उसके साथ लगी चली गईं। उन्होंने उस स्थान को भली भाँति देख लिया और छिताई के साथ लौटकर उससे विदा ली।

साधुनियों के वेश में वे दूतियाँ गढ़ से नीचे आ गईं और बादशाह से मिलकर उन्होंने छिताई और उसकी नित्य की शिवलिंग की पूजा का हाल बताया। फलतः दूसरे ही दिन प्रातः काल उन दूतियों के साथ कुछ सेना लेकर बादशाह उस स्थान पर गया। जब छिताई स्नान करके मंदिर के मंडप में गई, तुर्कों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। छिताई के साथ की नारियों ने तुर्क-सेना से युद्ध किया, किंतु वे मारी गईं और चालीस नारियाँ वहाँ खेत रहीं। छिताई पकड़ी गई। बादशाह ने उसे घोड़े पर अपने पीछे ही चढ़ा लिया और वह वहाँ से भाग निकला। छिताई ने बादशाह से कहा कि वह उसकी बेटी [के समान] है, इसलिए उसपर उसे पाप-दृष्टि न करनी चाहिए। बादशाह ने जब उसके ये वचन सुने, उसने सिर नीचा कर लिया और कान मूँद लिए। किंतु उसे पाने के अनंतर भी छोड़ देने पर अपनी निंदा होने के डर से वह उसे लिए हुए अपने हर्मों में चला गया।

छिताई के दुःखों की कोई सीमा नहीं थी। उसने खाना-पीना छोड़ दिया था। उसको किसी प्रकार से सांत्वना देने के लिए बादशाह ने उन दोनों

दासियों को नियुक्त किया जिन्हें पहले रामदेव ने उसे भेंट किया था, किंतु उनके समझाने-बुझाने का भी कोई प्रभाव उस पर नहीं पड़ा। अलाउद्दीन छिताई को लेकर अब दिल्ली लौट आया। यहाँ भी छिताई की भावनाओं में किसी प्रकार का परिवर्तन न हुआ। इसलिए इसने निराश होकर छिताई को राघव चेतन की संरक्षता में रख दिया और उसके व्ययादि के लिए उचित व्यवस्था कर दी, साथ ही उसने छिताई को पचास नर्तकियाँ भी प्रदान कीं कि वह उन्हें दक्षिणी संगीत की साधना कराती हुई किसी प्रकार अपना समय व्यतीत कर सके।

इधर सौंरसी जब द्वारसमुद्र से लौट कर देवगिरि आया, तो उसे सारी घटना ज्ञात हुई। यह सब सुनते ही वह योगी हो गया और चंद्रगिरि के चंद्रनाथ नामक एक योगी से योग की दीक्षा लेकर छिताई की प्राप्ति के लिए निकल पड़ा। जटाशंकर की यात्रा में उसे एक योगी से छिताई का विस्तृत समाचार मिला, तो वह दिल्ली की ओर चल पड़ा। वह यमुना-तट पर स्थित चंदवारि नगर होता हुआ दिल्ली के निकटवर्ती विंध्यवन उद्यान में पहुँचा। यहाँ पर विरही सौंरसी ने जो अपनी वीणा निनादित की, तो वन के समस्त जीव-जंतु मुग्ध हो कर उसके पास आ गए। उसने उन सब को अपने अमूल्य आभूषण उपहार में दे डाले, और तदनंतर उसने दिल्ली नगर में प्रवेश किया।

छिताई के पास एक वीणा थी जिसे उसके अतिरिक्त केवल सौंरसी ही बजा सकता था। उसने दिल्ली आकर अपनी वीणा यहाँ के प्रसिद्ध कलावंत गोपाल नायक के यहाँ यह समझ कर रख दी थी कि यदि घूमता-फिरता सौंरसी वहाँ आएगा तो उसकी इस वीणा को निनादित करने पर उसे उसके आगमन का समाचार मिल जाएगा। किंतु प्रत्यक्ष रूप में उसने ऐसा एक चुनौती के रूप में किया था: अपनी कला-कुशलता के प्रमाण में उसने बादशाह से प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई उसकी उस वीणा को बजा देगा, वह उसकी हो जावेगी। योगी सौंरसी दिल्ली में घूमता-फिरता गोपाल नायक के घर पर पहुँच गया। नायक ने उसको गुणी समझकर छिताई की वह वीणा बजाने को दी, तो योगी सौंरसी ने उसे भली भाँति ठाट करके बजा दिया। जब छिताई को यह समाचार मिला, वह अत्यंत प्रसन्न हुई और उसे इस बात की आशा हो गई कि सौंरसी उसे मिल जावेगा।

योगी सौंरसी गोपाल नायक के घर से उठ कर राघव चेतन के पास गया, और उससे बादशाह से मिलाने का अनुरोध किया। राघव ने उसे बादशाह से मिलाया। पूछने पर योगी सौंरसी ने बादशाह को बताया कि वह सिंहल का निवासी है, यहाँ पर उसका सर्वस्व लुट गया था, इसलिए वह फ़रियाद करने उसके समक्ष आया था, और बादशाह को वह लुटेरों को दिखा सकता था। बादशाह उन्हें देखने के लिए उसके साथ गया। सौंरसी ने नगर के बाहर उद्यान में पहुँचकर वीणा बजाई तो वहाँ के जीव-जंतु इकट्ठे हो गए। उन जीव-जंतुओं को दिखा कर उसने कहा कि यही वे लुटेरे थे जिन्होंने उसका सर्वस्व लूटा था, और उसके आभरणादि अब भी उनके शरीर पर थे। बादशाह स्वयं भी उसके वीणा-वादन पर मुग्ध हो गया, और उसने सौंरसी से कहा कि उसने देवगिरि के यादव राजा रामदेव की कन्या छिताई का अपहरण किया था, जो अत्यन्त दुःखी रहा करती थी; यदि अपने वीणा-वादन से वह उसके शरीर का दुःख दूर कर सकता तो वह जो माँगता, उसे दे देता। सौंरसी इसके लिए तैयार हो गया।

बादशाह ने उसके कौशल-प्रदर्शन का आयोजन किया। इस प्रदर्शन के अवसर पर उसका सारा हर्म भी उपस्थित हुआ। बादशाह के निकट ही छिताई भी थी। योगी के वेश में उसे देखने और फिर उसके वीणा-वादन से द्रवित होने के कारण छिताई के नेत्रों से अश्रु-धारा प्रवाहित हो चली। उसके ये स्नेह-तप्त अश्रु-विंदु जब बादशाह के कंधों पर गिरे, उसने घूम कर छिताई की ओर देखा। सौंरसी के वीणा-वादन से छिताई को इस प्रकार प्रभावित देख कर बादशाह ने सौंरसी से कहा कि वह जो कुछ चाहता उससे माँग सकता था। बादशाह के इस अनुरोध पर सौंरसी ने उससे छिताई को माँगा। बादशाह ने छिताई से उस योगी के गुणों की प्रशंसा करते हुए कहा कि उसने पहले ही यह प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई उसकी वीणा बजा देगा, वह उस की हो जावेगी, अतः योगी की याचना उसे स्वीकार करनी चाहिए। छिताई ने यह सुन कर बादशाह को योगी का वास्तविक परिचय दिया, तो बादशाह ने सौंरसी का बड़ा सत्कार किया, और उसी भाँति छिताई को उसके साथ सौंप दिया जैसे कोई पिता अपनी कन्या को जामाता के हाथों में सौंपता है।

सौंरसी तथा छिताई दिल्ली में बादशाह के अतिथि के रूप में कुछ दिनों तक रहे, फिर वे बादशाह से विदा लेकर देवगिरि आए। विदाई में

बादशाह ने सौंरसी को गुजरात का देश दिया। देवगिरि में उनका बड़ा स्वागत हुआ और बहुत दिनों तक राघव तथा मोल्हण की भी उनके साथ मिहमानी हुई। देवगिरि में कुछ समय तक रहने के अनंतर जब राघव और मोल्हण दिल्ली चले गए वे द्वारसमुद्र चले आए। भगवान नारायण उनके लौटने से अत्यधिक सुखी हुआ, और बहुत दिनों तक द्वारसमुद्र में उनके प्रत्यागमन का उत्सव हुआ।

८ – कथा का ऐतिहासिक आधार

अलाउद्दीन के समसामयिक केवल चार इतिहासकार ज्ञात हैं: फ़ज़्लुल्ला वस्साफ़, ज़ियाउद्दीन बरनी, अमीर ख़ुसरो और अब्दुल्ला मलिक इसामी।

फ़ज़्लुल्ला वस्साफ़—यह एक विदेशी लेखक था, और इसकी रचना 'तारीख़-ए-वस्साफ़' फ़ारस के मुग़लों का इतिहास है, किंतु वस्साफ़ ने इस में भारतीय घटनाओं का भी उल्लेख किया है, और ये उल्लेख उसने यात्रियों आदि के द्वारा सुनी बातों के आधार पर किए हैं। उसका यह इतिहास १३१२ ई० में पूरा हुआ था, किंतु बाद में इसमें १३२८ ई० तक की घटनाओं का समावेश कर दिया गया था।

ज़ियाउद्दीन बरनी—यह एक भारतीय लेखक था, और इसकी रचना 'तारीख़-ए-फ़ीरोज़शाही' इसके समय के दिल्ली के राज्य का इतिहास है। इसने ख़िलजी और तुग़लक वंशों का प्रायः आँखों देखा विवरण उपस्थित किया है। इसके पिता मुईदुल्मल्क तथा चचा अला उल्मुल्क ख़िलजी शासन से संबद्ध थे। यह अवश्य है कि अलाउद्दीन के अनेक आक्रमणों के विवरण बरनी ने अपेक्षाकृत संक्षिप्त ही दिए हैं। बरनी का यह इतिहास १३५९ ई० में पूरा हुआ था, यद्यपि यह कदाचित् धीरे-धीरे एक दीर्घ अवधि में लिखा गया था।

अमीर ख़ुसरो—इसका असली नाम अबुल हसन था। यह एक प्रसिद्ध भारतीय फ़ारसी लेखक और कवि था। यह भी बरनी की भाँति अलाउद्दीन तथा इसके पूर्ववर्ती और परवर्ती कई दिल्ली शासकों का समसामयिक था। यह मुख्यतः कवि था, और इसके ऐतिहासिक विवरण भी काव्यात्मक अधिक हैं,

तथ्यात्मक कम। इसकी दो रचनाएँ अलाउद्दीन से संबंधित हैं: 'खज़ायनुल .फ़ुतूह' तथा 'आशिक़ा' या 'देवल रानो'। प्रथम में अलाउद्दीन की अनेक विजयों का वर्णन है और द्वितीय में देवल देवी और खिज्र खाँ—अलाउद्दीन के बेटे—की प्रेम-कथा है। प्रथम पुस्तक १३१२ ई० में, और द्वितीय १३१६ ई० में लिखी गई थी।

अब्दुल्ला मलिक इसामी—यह भी एक भारतीय लेखक था। इसके पूर्वज दिल्ली के दरबार से संबद्ध थे। सोलह वर्ष की अवस्था में यह दौलताबाद (पूर्ववर्ती देवगिरि) गया और चालीस वर्ष की अवस्था तक वहीं रहा। इसकी रचना '.फ़ुतूहुस्सलातीन' यहीं पर १३४६–१३५० ई० में लिखी गई थी। अलाउद्दीन के दक्षिण के आक्रमणों का जितना पूर्ण विवरण इसामी की रचना में मिलता है उतना अन्यत्र नहीं, और वह अपेक्षाकृत अधिक विश्वास योग्य भी माना जा सकता है।

शेष समस्त इतिहासकार परवर्ती हैं, और उन्होंने प्रायः इनका ही आधार ग्रहण करके लिखा है। आगे[1] अतः इन्हीं चार के दिए हुए विवरण उद्धृत किए जा रहे हैं। इनके अतिरिक्त फ़रिश्ता ही एक मात्र ऐसा लेखक है जो कुछ विशेष विवरण देता है। वह दक्षिण भारत में एक दीर्घ अवधि तक रहा भी था। किंतु वह बहुत पीछे का लेखक है—उसका रचना-काल १६०६ ई० है, इसलिए उसके दिए हुए विशिष्ट विवरणों का उल्लेख मात्र वहाँ किया जा रहा है।

देवगिरि के पहले आक्रमण के प्रसंग में सभी इतिहासकार सहमत हैं कि—

(१) यादव राजा रामदेव पर अलाउद्दीन का पहला आक्रमण तब हुआ था जब वह कड़ा का हाकिम था।

(२) यह आक्रमण देवगिरि की अपार संपत्ति को हस्तगत करने के लोभ से हुआ था।

(३) यह आक्रमण अलाउद्दीन ने स्वयं एक सेना लेकर किया था।

(४) इस आक्रमण के समय रामदेव की सेना उसके पुत्र के साथ कहीं अन्यत्र युद्ध के लिए गई हुई थी। रामदेव उस सेना की सहायता से जो देवगिरि में रह गई थी, अलाउद्दीन का सामना अधिक समय तक नहीं कर सका, और उसने अलाउद्दीन की वश्यता स्वीकार कर ली।

१—देखिए इस भूमिका का परिशिष्ट।

इसके अतिरिक्त वस्साफ़ और इसामी लिखते हैं कि—

(५) इसी आक्रमण में रामदेव ने अलाउद्दीन को अपनी लड़की भी दी। इस विषय में ख़ुसरो तथा बरनी मौन हैं। किंतु ख़ुसरो एक रूपक के द्वारा अलाउद्दीन के रामदेव पर विजय प्राप्त करने का उल्लेख मात्र करता है—उसके वर्णन में किसी प्रकार का विस्तार नहीं है। और बरनी के वर्णन संक्षिप्त हैं, जैसा ऊपर कहा जा चुका है। इसलिए यदि इन दो लेखकों ने इस बात का उल्लेख नहीं किया, तो वह सुगमता से समझा जा सकता है।

इसामी के अनुसार, इतना ही नहीं—

(६) रामदेव की यह लड़की अलाउद्दीन की बेगम के रूप में रही और अलाउद्दीन की मृत्यु के अनंतर इसी का लड़का शहाबुद्दीन उमर ख़िलजी दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। यद्यपि उस प्रसंग में इसका नाम 'झतयापली' दिया हुआ है, किंतु यह विकृति फारसी लिपिजनित लगती है क्योंकि 'झतयापली' से छंद की गति नहीं लगती जब कि छिताई से उसकी गति ठीक-ठीक लग जाती है, और फ़ारसी लिपि में 'छिताई' का 'झतयापली' बिगड़ कर हो भी सकता है। विवेच्य पंक्ति है:—

> झतयापली हमा दु.ख्तरे रामदेव।
> कि बूदस्त दर हुक्म गैहाँ ख़ुदेव।

इसामी यह और कहता है कि—

(७) रामदेव के पुत्र ने सेना के साथ लौटकर जब अलाउद्दीन और रामदेव की संधि की बातें सुनीं, तो वह उससे सहमत नहीं हो रहा था, और तभी सहमत हुआ जब उसने समझ लिया कि उसके पिता के प्राण संकट में हैं।

देवगिरि के दूसरे आक्रमण के संबंध में, इसी प्रकार, सभी इतिहासकार सहमत हैं कि—

(१) यादव राजा रामदेव पर अलाउद्दीन का दूसरा आक्रमण तब हुआ था जब वह दिल्ली का बादशाह था।

(२) अलाउद्दीन का यह आक्रमण बरनी और ख़ुसरो के अनुसार दिल्ली को निर्धारित कर न भेजने और इस प्रकार उसकी वश्यता समाप्त करने के कारण

हुआ था। इसामी यह भी कहता है कि यह वश्यता उसने अपने पुत्र के विद्रोह के कारण समाप्त कर दी थी, और उसने इस बात की सूचना भी अलाउद्दीन को एक गुप्त संदेशवाहक द्वारा भेज दी थी।

(३) अलाउद्दीन की सेना का सेना-नायक इस बार मलिक नायब काफ़ूर था, अलाउद्दीन स्वतः सेना के साथ नहीं गया था।

(४) दिल्ली और देवगिरि की सेनाओं में एक अति साधारण युद्ध हुआ। इस युद्ध में रामदेव सकुटुंब वंदी हुआ और वह दिल्ली भेज दिया गया।

(५) दिल्ली में उसके साथ अलाउद्दीन ने सद्व्यवहार किया, उसे उसका राज्य लौटा दिया, जिसके प्रतीक स्वरूप एक छत्र उसे भेंट किया; बरनी के अनुसार एक लाख टंके—इसामी के अनुसार दो लाख टंके और वे भी सोने के—उसे इनाम दिए और बरनी तथा इसामी के अनुसार उसे राय-ए-रायान की उपाधि देकर विदा किया। ख़ुसरो ने न इनाम की बात लिखी है और न उपाधिदान की। यह भी उसके संक्षेप की प्रवृत्ति के कारण हो सकता है।

इसामी यह भी लिखता है कि—

(६) युद्ध के समय रामदेवपक्ष में उसके पुत्र के अतिरिक्त राघव भी था। इस व्यक्ति का नाम अन्य इतिहासकारों के विवरणों में नहीं आया है, किंतु उन्होंने अनावश्यक समझकर यह नाम छोड़ दिया होगा, क्योंकि कोई विशेष घटना राघव के साथ संबद्ध नहीं है।

(७) बरनी के अनुसार बादशाह ने रामदेव को विदाई में गुजरात में नवसारी का इलाक़ा भी दिया था।[१]

इतिहास के अनुसार अलाउद्दीन के केवल यही दो आक्रमण रामदेव के जीवन-काल में हुए थे, तीसरा उसके देहावसान के अनंतर हुआ था, जिसका इससे कोई संबंध नहीं है।

यदि हम 'छिताई वार्ता' के दोनों आक्रमणों की कथा को इतिहास के इन दोनों आक्रमणों के विवरणों से मिलाकर देखें तो हमें ज्ञात होगा कि 'वार्ता' का दूसरा आक्रमण तो वही है जो इतिहास का पहला आक्रमण

---

१. ज़ियाउद्दीन बरनी, पृ० ३२६ (देखिए डा० किशोरीशरण लाल का अप्रकाशित 'अलाउद्दीन मुहम्मदशाह खिलजी' नामक निबंध, पृ० १४१)

है—दोनों में वस्तुतः कोई अंतर नहीं है, और इसी प्रकार 'वार्ता' का पहला आक्रमण इतिहास के दूसरे आक्रमण का प्रतिरूप है। किंतु 'वार्ता' में पहले आक्रमण की जो कल्पना की गई है वह फिर भी एक उच्चकोटि के ऐतिहासिक उपन्यासकार की प्रतिभा की परिचायिका है। नीचे हम इतिहास और 'वार्ता' के दोनों आक्रमणों से संबंध रखनेवाले मुख्य अंतरों और उनके औचित्य पर विचार करेंगे।

(१) 'वार्ता' के लेखकों ने पहले आक्रमण का सेनापति नुसरत खाँ को बताया है, काफ़ूर को नहीं। असंभव नहीं कि इतिहास से सर्वथा अज्ञ कोई लेखक यदि इस प्रकार की नवकल्पना करता, वह काफ़ूर को ही इस आक्रमण का सेनापति बनाता। किंतु काफ़ूर उस समय तक अलाउद्दीन की सेवा में आया भी नहीं था। वह तो गुजरात के आक्रमण में नुसरत खाँ और उलुग़ खाँ को मिला था। और यह गुजरात का आक्रमण देवगिरि के उस आक्रमण के तीन वर्ष बाद हुआ था जिसे अलाउद्दीन ने स्वतः किया था और जिसमें उसे छिताई मिली थी।

दूसरी ओर नुसरत ख़ाँ—जिसे इतिहासकारों ने मलिक नुसरत भी कहा है—अलाउद्दीन के साथ उसके बादशाह होने से पहले ही से था। पहले वह मलिक नुसरत जालेसरी कहा जाता था, किंतु स्वयं अलाउद्दीन ने उसको ख़ाँ का पद दिया। यह पद उसे उसने जलालुद्दीन के वध के बाद कड़ा ही में दिया था—उस समय जब कि उसे दिल्ली का सिंहासन मिला भी नहीं था। और यह आदर उसे उसकी सेवाओं के उपलक्ष्य में दिया गया था। बरनी ने लिखा है कि जलालुद्दीन के वध के लिए अलाउद्दीन का जो षड्यंत्र था, उसमें वधिकों को आदेशात्मक संकेत नुसरत ने ही दिया था।[१] और फ़रिश्ता ने लिखा है कि देवगिरि के प्रथम आक्रमण के समय नुसरत ख़ाँ अलाउद्दीन के साथ था, और अलाउद्दीन को विजय अंत में नुसरत की ही बदौलत मिली। उसने लिखा है—"अलाउद्दीन ने मलिक नुसरत को एक हज़ार सवारों के साथ क़िले के मुहासिरे में छोड़ा और खुद बक़िया लश्कर हमराह लेकर फिर हिंदुओं के मुकाबले में सफ़ आरा हुआ। तरफ़ैन से

---

१. जियाउद्दीन बरनी (दे० डॉ० किशोरी शरण लाल का अलाउद्दीन मुहम्मद खिजली नामक, पृ० २३६–२३७ अप्रकाशित निबंध, पृ० ३०)।

लड़ाई का बाज़ार गरम हुआ। हिंदुओं की कसरत और जाँबाज़ी से मुसलमानों के इस्तक़लाल में फरक़ आने लगा और क़रीब था कि मुस्लिम सिपाही जी छोड़कर मैदान जंग से भागें कि मलिक नुसरत ने अपने हज़ार सवारों के साथ मैदान कारज़ार की राह ली। हिंदुओं ने मलिक नुसरत की लश्कर को देखा तो समझे कि मुसलमानों का मुअविदह लश्कर मदद के लिए आ पहुँचा। इस तौहम से हिंदुओं के पाँव मैदान जंग से उखड़ गए और वे बेतहाशा मैदान से भागे।"[1]

(२) जहाँ तक युद्ध का प्रश्न है 'वार्त्ता' देवगिरि के प्रथम आक्रमण में युद्ध का कोई उल्लेख नहीं करती है। बरनी देवगिरि के दूसरे आक्रमण में युद्ध का कोई उल्लेख नहीं करता है, और .खुसरो भी रामदेव के पुत्र का युद्ध के प्रसंग में उल्लेख करता है, रामदेव का नहीं। इसामी तो यहाँ तक लिखता है कि यह आक्रमण ही रामदेव ने कराया था, यह अवश्य था कि अपने पुत्र के डर से वह अपने को उससे अलग नहीं रखना चाहता था और प्रकट रूप में उसके प्रत्येक कार्य में उसका साथ देता था। इस संबंध में फ़रिश्ता के अनुसार कोई युद्ध ही नहीं हुआ। वह कहता है "रामदेव राजा देवगढ़ (देवगिरि) ने लड़ाई में अपनी .खैर न देखकर अपने बड़े बेटे सिंगल (सिंघन) देव को क़िले में छोड़ा और खुद अपने दूसरे बेटों और क़राबतदारों के साथ बेश क़ीमत तुहफ़े हमराह लेकर मलिक नायब की ख़िदमत में हाज़िर हुआ।"[2] इसलिए बिना युद्ध किए हुए नुसरत् ख़ाँ से जा मिलने की 'वार्त्ता' की कल्पना देवगिरि के दूसरे ऐतिहासिक आक्रमण के एक प्रामाणित तथ्य का अनुसरण करती है। यदि रामदेव ने इस प्रकार इतिहास और 'वार्त्ता' दोनों में उल्लिखित अलाउद्दीन के सेनापतियों का स्वागत-सत्कार न किया होता, तो कदाचित् उसको वह स्वागत-सत्कार दिल्ली में न होता जो प्राप्त इतिहास में देवगिरि के दूसरे आक्रमण और 'वार्त्ता' में देवगिरि के पहले आक्रमण के अनंतर प्राप्त हुआ है।

(३) 'वार्त्ता' में राघव अलाउद्दीन पक्ष में है। किंतु राघव का उल्लेख इसामी ने देवगिरि के दूसरे ऐतिहासिक आक्रमण में रामदेव पक्ष में किया

---

१. तारीख-ए-फ़रिश्ता (उसमानिया यूनिवर्सिटी से प्रकाशित) जिल्द १, पृ० ३४३।

२. वही, पृ० ३६७।

है। 'वार्त्ता' में यद्यपि वह अलाउद्दीन के साथ है, किंतु अलाउद्दीन के ही द्वारा उसमें यह भी कहलाया गया है—

राघव मोल्हण नइ जैसर्मु। ये सब जानैं गढ़ कौं मर्म।
ये सब भेद राइ को लहैं। मोसौं कूर न कबहूँ कहैं॥ ३२६

जयशर्मा तो 'वार्त्ता' में अन्यत्र नहीं आता। मोल्हण उसके पहले आक्रमण में नुसरत खाँ के साथ है, क्योंकि कहा गया है—

असो मतो कीओ नरनाह। मील्यो राउ मोल्हन की बाहु॥ ७०

अतः, गढ़ का मर्म राघव को तभी ज्ञात रहा होगा या कम से कम अला-उद्दीन इस प्रकार उसके विषय में समझता रहा होगा जब कि राघव का कोई संबंध अलाउद्दीन ने उक्त आक्रमण के पहिले देवगिरि से रहा होगा और इस आक्रमण के समय भी देवगिरि से उसकी सहानुभूति सर्वथा गई न रही होगी। अलाउद्दीन ने 'वार्त्ता' के अनुसार उसी को रामदेव के पास बसीठ के रूप में भेजा, यह भी इसी बात का द्योतक है। असंभव नहीं है कि रामदेव और राघव पुनः छिताई-अपहरण के अनतर कभी एक-दूसरे के उतने ही निकट आ गए हों जितने वे उसके पहले थे, और देवगिरि के दूसरे ऐतिहासिक आक्रमण में राघव रामदेव के साथ दिखाई पड़ा हो। इसलिए 'वार्त्ता' का यह उल्लेख भी इतिहास के विपरीत नहीं पड़ता है।

फलतः यह प्रकट है कि यदि 'वार्त्ता' लेखकों ने छिताई-हरण (या जिसे इतिहास-लेखक कन्यादान के रूप में प्रस्तुत करते हैं) संबंधी अलाउद्दीन के देवगिरि के आक्रमण के पूर्व नुसरत खाँ के द्वारा देवगिरि आक्रमण की कल्पना की है, तो वह निश्चय ही उच्चकोटि के ऐतिहासिक उपन्यासकारों की प्रतिभा प्रदर्शित करती है।

(४) 'वार्त्ता' के अनुसार देवगिरि के दोनों आक्रमणों के समय अलाउद्दीन दिल्ली का बादशाह था, जब कि इतिहास के अनुसार पहले आक्रमण के समय वह कड़ा का हाकिम मात्र था। किंतु उत्तर भारत का एक सामान्य हाकिम मात्र सुदूर दक्षिण के सबसे बड़े राजा पर आक्रमण करने और उसकी कन्या का अपहरण करने का साहस करता, 'वार्त्ता' के रचयिताओं के मन में यह बात कभी आ नहीं सकती थी। वे तो अलाउद्दीन के उस सुल्तानी व्यक्तित्व को लेकर चले थे जिसके दर्शन हमें चित्तौर के आक्रमण में होते हैं, इसीलिए यद्यपि इतिहास के अनुसार उसका चित्तौर

का आक्रमण छिताई-हरण संबंधी देवगिरि के आक्रमण के बाद की घटना है, 'वार्त्ता' लेखक अलाउद्दीन से कहलवाते हैं—

यौं बोलै ढिल्ली कौ धनी। मैं चीतौर सुनी पदमिनी।
बांध्यौ रतनसैनि मैं जाइ। लै गौ बादिलु ताहि छिडाइ॥ ३२१

(५) 'वार्त्ता' के अनुसार छिताई उसके पति को वापस मिल जाती है। इतिहास से यह प्रमाणित नहीं है। इसामी ने लिखा ही है कि वह अपने पुत्र शहाबुद्दीन उमर के सिंहासनासीन होने के समय विद्यमान थी, और निरंतर उसके हितों की रक्षा के लिए प्रयत्नशील रही। अलाउद्दीन की मृत्यु के अनंतर उसके ६ वर्ष के एक बेटे शहाबुद्दीन उमर को गद्दी पर बिठाए जाने की बात तो सभी इतिहासकारों ने लिखी है, किंतु वह मलिक काफ़ूर के षड्यंत्रों से गद्दी पर बैठा था और तदनंतर शीघ्र ही मलिक काफ़ूर के मारे जाने के बाद कुतुबुद्दीन मुबारक के संरक्षण में महीने दो महीने ही गद्दी पर रहा, जिसके अनंतर कुतुबुद्दीन मुबारक ने उसको गद्दी से हटा दिया था। इसलिए वह अलाउद्दीन की किस बेगम का लड़का था, यह जानने की आवश्यकता इतिहासकारों को प्रायः प्रतीत नहीं हुई, और इसामी ही एकमात्र ऐसा इतिहासकार है जो यह लिखता है कि वह 'झतयापली' (छिताई) का लड़का था। फलतः जिस बात को जानने की आवश्यकता इतिहासकारों को नहीं हुई, उसके लिए औरों को क्या हो सकती थी ? 'वार्त्ता' लेखकों का जो भी आधार रहा हो, उसमें छिताई के संबंध की यह बात, जिसका उल्लेख शहाबुद्दीन उमर के प्रसंग में इसामी ने किया है, नहीं रही होगी। इसलिए 'वार्त्ता' लेखक इस प्रकार की कल्पना करने के लिए स्वतंत्र थे कि 'छिताई' उसके पति को वापस भी मिल गई थी।

'वार्त्ता' उस भारतीय आदर्श को सामने रखकर लिखी गई है जिसका प्रारंभ आदि काव्य से होता है। उसमें सीता का अपहरण होता है, रावण उन्हें अपना बनाना चाहता है, किंतु अकृतकार्य होता है, और अंत में सीता राम को पुनः प्राप्त करती हैं। मुख्य कथा तो 'वार्त्ता' की भी इसी प्रकार की है। अंतर विस्तारों में है। रचना का आधार ऐतिहासिक होने के कारण 'वार्त्ता' लेखक यह तो दिखला नहीं सकते थे कि रामदेव और छिताई के पति ने उसके अपहरण के अनंतर दिल्ली पर आक्रमण कर दिया और जिस प्रकार राम ने रावण को परास्त करके सीता को लौटाया था उसी

प्रकार उन्होंने भी छिताई को लौटाल लिया। उन्हें उसकी पुनर्प्राप्ति का इसीलिए एक दूसरा मार्ग निकालना पड़ा होगा यह सुगमता से समझा जा सकता है।

किंतु कहा जा सकता है कि अलाउद्दीन जैसे कठोर और आदर्शहीन व्यक्ति के संबंध में यह कल्पना उचित नहीं जँचती है। यह कथन अधिकांश में ठीक माना जा सकता है, किंतु अलाउद्दीन के कठोर और आदर्शहीन जीवन में भी कुछ अपवाद मिल ही जाते हैं। इसी प्रकार का एक अपवाद दक्षिण के कुछ गायकों को उनके इष्टदेव की मूर्ति का भी वापस करना है, जिसका उल्लेख इतिहास में मिलता है। कहा गया है कि उसके सैनिक दक्षिण के श्रीरंगम् के मंदिर से श्री रंग जी की भव्य मूर्ति ले आए थे जो उसकी किसी राजकुमारी को अत्यंत प्रिय लगी थी और इसलिए जिसे उसने अपने पास रख लिया था। किंतु उस मूर्ति का पीछा करती हुई उसकी एक अनन्य उपासिका साधुनी के वेष में यह जानने के लिए चली आई थी कि उस मूर्ति का क्या होता है। उसने जब यह सब जान लिया, वह दक्षिण लौट गई। वहाँ जाकर उसने उस मंदिर के भक्तों को प्रेरित किया जो गाने में अत्यंत कुशल थे। यह गायक मंडली यात्रा करती हुई दिल्ली पहुँची और इसने अपने संगीत कौशल से अलाउद्दीन को रिझा लिया और उससे वह मूर्त्ति पुनः प्राप्ति कर ली।[1] असंभव नहीं कि यह और इस प्रकार की और भी कुछ कथाएँ अलाउद्दीन के संबंध में प्रचलित हो गई हों और छिताई की पुनर्प्राप्ति की कल्पना भी इन्हीं के ढंग पर कर ली गई हो।

इस प्रसंग में एक बात और विचार करने के लिए रह जाती है: वह है द्वारसमुद्र के शासक भगवान नारायण तथा उनके पुत्र सौरसी के संबंध की। द्वारसमुद्र के राजवंश का देवगिरि के राजवंश के साथ वैवाहिक संबंध संभव था हां, क्योंकि होयसल वंश भी यादव ही था।[2] किंतु न उस वंश में कोई भगवान नारायण हुए और न कोई सौरसी, यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। ऐसा लगता है कि 'वार्त्ता' लेखकों को छिताई के पति और श्वसुर का ठीक पता न लग सका—असंभव नहीं कि वे कोई इतिहास-

---

१. आयंगर : साउथ इंडियन इनवेडर्स, पृ० ११३–१६

२. आर० जी० भांडारकर : अर्ली हिस्ट्री आव् दि डेकन, पृ० १८३–१६८।

प्रसिद्ध व्यक्ति रहे भी न हों—और उन्होंने सौरसी तथा भगवान नारायण की कल्पना करके उन्हें देवगिरि के निकटवर्ती राज्य द्वारसमुद्र का शासक भी कल्पित कर लिया।

इस प्रकार के विवेचन में यह ध्यान रखने की बात है कि रचना 'इतिहास' नहीं है, 'वार्त्ता' मात्र है। किंतु 'वार्त्ता' होते हुए भी वह 'इतिहास' के इतने निकट पहुँचती है, कि देखकर चकित रह जाना पड़ता है। एक ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में यह रचना फलतः हिंदी साहित्य में बेजोड़ है, इसमें संदेह नहीं।

६—रचना का सांस्कृतिक वैभव

रचना में साहित्यिक विशेषता के अनेक तत्व और अनेक प्रसंग हैं, उनकी ओर ध्यान आकृष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। सहृदय पाठक स्वतः उन्हें देख लेंगे। किंतु 'छिताई वार्त्ता' निरी साहित्यिक रचना नहीं है, उसका सांस्कृतिक वैभव और भी प्रकट है। यहाँ केवल उसके ऐसे कुछ तत्वों और प्रसंगों को उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है जो अपेक्षाकृत अधिक सांस्कृतिक महत्व के हैं और जिन पर रचना के युग की छाप भी अधिक स्पष्ट है।

(१) रचना के प्रारंभ में ही देवगिरि में जो भवन-निर्माण का प्रसंग आता है, उसमें तत्कालीन वास्तु शिल्प के तत्व प्रचुर परिणाम में आते हैं:—

तब रामदेव बिचार्‌यौ हियइ। चित्र होइ नवतन धर कियै।
जे प्रवीन प्राहर सुतधार। बीरा दीने राइ हकार ॥१०५
कमठानन को आयसु भयो। अगनति द्रिब्या कामलगि दयो।
बोलि जोतषी साधी लग्न। रची नीव सुभ बार सु सुकन ॥१०६
खेत्रपाल पूज्यो करि भाउ। होइ अभंग गेह द्रिढ ठाउं।
गहरी नीव झारी चहुँ राइ। पुरस पंच की भरी भराइ ॥१०७
चौबारे चौपखा चडोर। बने कलस कंचन के मोर।
एकत हाटन पटना पटे। नव नाटक नटसालन नटे ॥१०८
रावन रंग कोरि रमनीक। लाजवर्द भुइं नखस अकीक।
खट छप्पर सतखने अवास। कंचन कलस मनहु कबिलास ॥१०९

रची केरि कांच की खांडारि । रहित भामिनी भूलि बिचारि ॥११०
बादल महल उठी घन घटा । रचे अनूप अटारी अटा ।
छाजे छत्र गोख अनूप । तिनहि ओट उझक दैइ भूप ॥१११
बावन बस्त मिलीं करि बान । अति अनूप आरसी समान ।
रची चित्रसाली चित लाइ । देतख ही मन रहै लुभाइ ॥११२
मानिक चोक सम न माहेनी । रची अनूप चोर मीचनी ।
किए भौहरे अनु अनु भांति । तिन माहिं मनु अंध्यारी राति ॥११३
चंद काठ कठायल आन । ते ग्रीसम हिमरित समान ।
चौबारे चौपखा सुदेस । बरषा बिरमे जिहां नरेस ॥११३

छंद ३८२–३८६ में पुनः राजकीय आवास को जिस रूप में अलाउद्दीन ने देखा, उसका वर्णन करते हुए इनमें से अनेक का संक्षिप्त उल्लेख हुआ है ।

छंद ३८९–९० में सरोवर और उसके किनारे के रंग-भवन के निर्माण के प्रसंग में पुनः वास्तु शिल्प के कुछ तत्व मिलते हैं ।

(२) इसी प्रसंग में तत्कालीन मूर्ति शिल्प के भी कुछ तत्व दर्शनीय हैं:—

बने हिंडोरे कंचन खंभ । मानहु उपजइ उकति सुयंभ ।
करी अनूप अति खरी सिंगार । मानहु भरति की भरी सुनारि ॥११४
सभा जोरि जे बैठे राउ । फिटक पीठिसो बांध्यौ ठांउ ।
चकवा चकवी एकै डारि । जल कूकरी महामरि यार ॥११५
तिहठा और जिते जल जीउ । भरे भरत के साजे नीउ ।
कमल कमोदनि पुरयनि पान । झलमलहि सरवरै समान ॥११६
मच्छ कच्छ ते दीरघ घने । ते साहष्ट चलकर बने ।
सभा सरोवर दीसै तिसौ । हथनापुर पांडव कौ जिसौ ॥११७
और राइ जे देखइ आइ । धंसि न सकैं ते डरइं डराइ ॥११८
सोना के पीपर पंचास । बरषै नीर बारहइ मास ।
गोमट खरबूजा आकार । तिनहि पवारिन तने किवार ॥१२०
तिहठा सारो सुवा निवास । खुमरी बोलइ मधुरी भास ।
एक महल नीर को दुराउ । दीसइ जन बैठन को ठाउं ॥१२१
देखत सुधि न होइ सरीर । चल ति बूडिइ गहिर गंभीर ।
हलबी काच भरी कुच करी । सोभइ जानि कालिंद्रह भरी ॥१२२

(३) पुनः इसी प्रसंग में कुछ तत्कालीन चित्र शिल्प के संकेत मिलते हैं :—

सुमरि गनेस साही लेखनी। लागौ बुधि रचन आपनी।
प्रथम रचौ सरस्वती सरूप। उकति चित्र जिम होइ अनूप ॥१२५
नैबधि निरषधि लिख्यो संजोग। नल दमयंती तनो बीओग।
भारथ रामाइन चित्रयो। मृगया महा मनोहर कीओ ॥१२६
लिख्यो कोक चौरासी भांति। च्यारि प्रकारि नारि की जाति।
पदमनि चित्रनि गज संखनी। चित्रति महा मनोहर बनी ॥१२७
अरु गज़ खरन खरे सुठार। चारि पुरुष चहुं आकार ॥१२८

(४) अलाउद्दीन ने अपने राजभवन में सौरसी के कौशल-प्रदर्शन का जो आयोजन किया है, उसमें हमें तत्कालीन वाद्ययंत्रों का अच्छा विवरण मिलता है:—

एकणि कर सोहै स्यंगरी। जुवती जुबन (जौबन) रंग रस भरी।
एक रबाब दुतारौ धरै। सुंदरि सुघर बजावै खरै ॥६५६
ढोलक चंद्रमंडलनि सार। अधिक अपूरब पुजवहि तार।
बिबिध बिचष्षिण बोलहिं बैण। जनु कसुंभ केसरि रंगि नैन ॥६५७
एकति कामणि कंधणि जंत्र। मानहु बसीकरण के मंत्र।
जिती छिताई करी प्रवीण। ते संगीत रंग रस लीण ॥६५८
सरमंडल सरबीण संवारि। मुरज म्रिदंग लअै बर णारि।
पैमकपाट पखावज बीन। बैठी तरुणि तमासै लीण ॥६५९

(५) सौरसी को बिदाई में अलाउद्दीन ने जो उपहार दिए हैं, उनमें घोड़ों के उल्लेख के प्रसंग में उनकी तत्कालीन जातियों की तालिका भी प्रस्तुत की गई है :—

बरणु तेजी ऊच तिहां तणे। ऊचे आहि कंध तिह तणे।
एक तीरी ते हरीअे बरनां। कंध आगरे छोटे करनां ॥७२१
सेत तुरी चंचल गुण बने। चित्रति जानि चितेरौ तने।
महुअ सबज सनेही बने। सीराजी मुगली हांसले ॥७२२
उपजे सींह नदी पश्चम देस। बडी पुंछ बरणइ कबि लेस।
करतर काया तुटी तुषार। जरदे नीले बोर कयाह ॥७२३

जिते भुथार काबली आहि । साठि कोस थी आवइ जाइ ।
पीले नीले बोरु बहूत । चलत चाल ते भांभर भूत ॥७२४
गोट बहुत परबत के आहि । तै पुर दीनी अर चौगुन थाइ ॥७२५

(६) किंतु इन सबसे अधिक पूर्ण रचना का युद्ध-वर्णन है; उसमें हमें न केवल तत्कालीन विभिन्न युद्धास्त्रों के उल्लेख मिलते हैं, बल्कि तत्कालीन युद्ध-प्रणाली का भी एक यथावत् परिचय मिलता है ।

जब सुल्तान का आक्रमण होता है, उसकी सेना युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर आगे बढ़ती है :—

जब देवगिरि देखी सुलितान । तबहि बजाए गहिरे निसान ॥२६५
चौकी बांधि चल्यौ चढि साहि । लागे लागि बाजने धाइ ।
पुर पुर बंधे इक इक धाप । तरकस काढ़ि चढ़ाए चाप ॥२६६
एकनि करि काढ़ी तरवारि । मूंडनि टोपा धरे संवारि ।
एकनि गही सैहथी हाथि । पदरकि चले बीस दस साथि ॥२६७
जे चटकला चोट आगरे । तिन सिर टाटर सौंसर धरे ॥२६८

तब रामदेव की सेना भी दुर्ग के मुख्य द्वार को ठेलकर निकल पड़ती है:—

देखि फौज हिंदू असवार । धंसे पेलि पौलि के किवार ॥२६८
सोभा जी सोनगरा धंस्यौ । पहिरि कवचु सिर टोपा कस्यौ ।
चढ़ियौ पामा जी चौहान । गाढ़े राइ तनौ गुर ग्यांन ॥२७२
वाधा जी सु महा बरियाम । जमधर जोरि जुरै संग्राम ।
भामा जी देवरा जुझार । धीरा धंस्यो कटक खैकार ॥२७३
ए सब सुहर साथ सौंरसी । हिंदू फौज हांक दै धंसी ।
लए न राजी ओडन हाथ । पाइक लाख सौंरसी साथ ॥२७४
बरणि कहै को तिनकी जाति । बाजे बजे दखिनी भांति ॥२७५

रामदेव की सेना के पिल पड़ते ही तुर्क भी दौड़ पड़ते हैं, और ऐसी खलबली होती है कि दोनों सेनाएँ रण-क्षेत्र में मिश्रित हो जाती हैं:—

धाए तुरक धसत ठकुरई । खित्रिरी खेत एक ह्वै गई ॥२७५

दोनों पक्षों में घमासान युद्ध होता है । इस प्रसंग में दोनों पक्षों का सैन्य-संचालन और संघर्ष ध्यान देने योग्य है:—

लागी हौन दूहूं दल मार । भादौं घन ज्यौं बरसै सार ।
हिंदू रुपे न टारे टरैं । पाइक पैठि धुरकटी करैं ॥२७६

फौजें भईं मुहांमुंह भीर। परहिं लाख लाखौरी तीर।
रहहिं न तै अंगनि मैं हटकि। निकसहिं सर सनाह मैं सटकि ॥२७७
पैदासक असवारणि छोडि। रुपे मिटै नहीं ओडन ओडि।
पैदाटनक टेकि ठकुरई। गज घटान ते टारी टरई ॥२७८
सांगा काटि सांगि लै गयौ। खांन उम्मरणि कौ जमु भयौ।
जहाँ उठ्यौ सौंरसी पचारि। हनै बीर हांक दै संभारि ॥२७६
बाघा बाघु रह्यौ रण रोहि। पीपा पैठ्यौ पर दलु छोहि।
खरहथु खरगा खांडै लख्यौ। भोजा भिरत साहि खरभख्यौ ॥२८०
घाघा सौं भोगी घमसान। जूझ्यौ तहां मुहब्बति खांन।
पीलवान पेलैं मैमंत। ठाठा हौहि महा चौदंत ॥२८१

हिंदू सेना के वेग को तुर्क सेना सहन नहीं कर सकती है और वह भाग निकलती है:—

सहि न सकै हिंदू की भीर। तब मुंह मोरि भरहरे मीर ॥२८२

तब तक मंगोल सेना शीघ्रता के साथ लौट पड़ती है और वह तोपों से गोले बरसाने लगती है, जिसके परिणाम-स्वरूप हिंदू पैदल सेना छिन्न-भिन्न होने लगती है:—

चल्यौ छत्रु डगमगि चौडोल। तब उडान सी फिर्यौ मंगोल ॥२८२
गही कोपि कर कठिन कमान। लागौ बरसन पंथ समान।
इक इक मूठि लोह मन साठि। तब फाटी पैदल की गांठि ॥२८३
करी ठेल साहि कै उजीर। तब भ्वैं दई पयादै भीर ॥२८४

यह देखकर दक्षिणी पैदल सेना घुस पड़ती है, और वह तुर्क सेना को तितर-बितर कर देती है:—

चली देखि हिंदुन की अनी। तब पैठे पाइक दखिनी ॥२८४
लै गए मुगलनि अनी उसारि। जूझे तहां पयादे चारि।
फिरि देखैं हिंदू असवार। कोपि काढ़ि पैठे करवारि ॥२८५

तुरकनि सेन तिसी खरभरी। मनहुं लेजु गिरवर ते परी।
फिरि पीछे न चाहई कौन। मनो पनोहर तार्‌यौ पौन ॥२८६

किंतु इस संघर्ष में दोनों ओर के अनेक सैनिक और सामंत काम आते हैं:—

पर्‌यौ खेत तहं लाखौं लोग। सुत सम भौ सुलितानहि सोग।
जूझ्यौ जैन दीन अज्जून। गुरज घाइ सिरु ह्वै गौ चून ॥२८७
एक नाम बारह बाजीद। भए कनौजी पीर सहोद।
जहां लख्यो सोनगरा गोग। तहां पर्‌यो(परे)मोल्हनि कै लोग॥२८८
हतौ रामदेव कौ खवास। सीसौदिया नाम स्यौदास।
उझकत कोट हवाई हयौ। सुद्रिढ़ प्रहार हंसु उठि गयौ ॥२८६

जो सैनिक घायल गिरते हैं उनकी गति-मति अत्यंत दयनीय है :—

जूझे सुहर परे बिकरार। मानहुं छाके परे गंवार।
ठाठा घाइल तोरहिं धाइ। इह ई केनें किये खुदाइ ॥२६३
कत सेवग कीनै करतार। जूझे ढिल्ली कैं दरबार।
घर छुडाइ धरणी में लुटाइ। एकति उदर अंत अखुटाइ ॥२६४
लूटनहार जिह ने अनाथ। बिडरत मुंह मैं मेलैं हाथ।
ओछे घाइनि भए सरीर। एक सैन दै मांगैं नीर ॥२६५
लगी जिनहिं तरपी तलवारि। गई कुम्हैडे लौं निरवारि।
गुरज घाइ जे मुगलनि हए। तिन सिर फूटि फूट लौं गए ॥२६६
परी जि लोथनि ऊपर लोथि। भिरैं मल्ल जनु पोथापोथि।
हए जे हियै सांमुहै सेल। परे धरणि लोटहिं बगमेल ॥२६७

रचना में इस संहारपूर्ण दृश्य की तुलना एक 'महार्णव' से की गई है:—

परे जूझि हाथी सै चारि। मार्णौ साइर तनी करारि॥२६८
ढाल रु णेजा रण मैं रहे। रुहिर णदी जनु तरवर बहे।
टोपा सौं सिर जीभि समान। टूटि सनाह भए सौ थान ॥२६६
बिन सिर मांझ महावत रहे। तरवर लहरि पात बिनु बहे।
इण बिधि जूझ महानौ भई। बिचरि अनी तुरकनि की गई ॥३००

छिताई-अपहरण के अनंतर और अलाउद्दीन के दिल्ली लौटने के पूर्व एक बार पुनः घमासान युद्ध होता है:—

बोलै कटकु साहि सबु फेरि। मेलै दुर्ग चहूंधा घेरि।
तमकि साहि गढ़ ढोवा करै। भयौ सचेतु तरहठी फिरै ॥४६६
क्रोध रूप रिस साहि स बंग। बहुत चहूंधा लगी सुरंग।
ठटीं ठाठरी दुर्गु समाण। ऊपर बनी नालि कंवांण ॥४६७
बुरज बुरज तकि मारहिं मीर। जनु अकालघन गरज गहीर।
कोट थरहरहि समुद समान। खिणइकमांझ चुनिलैहिं सुजान ॥४६८
इत उत मारु दुहू दल होइ। क्रोध रूप भए साहिब दोइ।
चढ़हिं मुगल जनु बंदर लंक। मन न धरहिं मरिबे की संक ॥४६९
गढ़ जर दुर्ग दांति की ओट। बहुतनि हनत खरहरै कोट।
अति भर दुर्ग चलहिं असरार। टिकहिं न साहि तनै असवार ॥५००
छिरकहिं ताते तेल निकंद। त्यौं त्यौं कोपैं साहि नरिंद।
गढ़ उपरि उठण न पावै हाथ। तीरणि बेधि करै आकाथ ॥५०१

यह समस्त युद्ध-वर्णन कितना पूर्ण और वास्तविक लगता है! ऐसा जान पड़ता है कि जैसे लेखकों ने इस युद्ध को अपनी आँखों से देखा हो। पाठक के मन में इस प्रकार की धारणा निर्मित करने में ही इस कला-कृति की सफलता है।

'छिताई वार्त्ता' के ये समस्त स्थल सांस्कृतिक दृष्टि से अध्ययन की अपेक्षा करते हैं। इन्हें पूर्ण रूप से तभी समझा और समझाया जा सकता है जब हम तत्कालीन कला साहित्य और इतिहास का इस अभिप्राय से सम्यक् अध्ययन करें। यह एक स्वतंत्र विषय है। किंतु यह विश्वास दिलाया जा सकता है कि 'छिताई वार्त्ता' का सांस्कृतिक दृष्टि से किया हुआ यह अध्ययन उसके संबंध में किए गए परिश्रम से कम प्रतिफलित न होगा, और ऊपर उद्धृत पंक्तियाँ इसका प्रमाण हैं।

———

परिशिष्ट

अलाउद्दीन के समसामयिक इतिहासकारों के साक्ष्य

देवगिरि पर प्रथम आक्रमण

(१)

[जलालुद्दीन ने] अलाउद्दीन मुहम्मद को अवध तथा बदाऊँ का शासन दिया। वहाँ अलाउद्दीन बहुत दिनों तक रहा और धीरे-धीरे उसने एक बड़ी सेना इकट्ठी कर ली। उसे यह बताया गया कि हिंद का राय जिसकी राजधानी देवगिरि थी, धन और रत्नों के रूप में असीम संपत्ति का स्वामी था, इसलिए उस धन-राशि को अपने लिए तथा देश के विजय के लिए प्राप्त करने को वह उत्कट रूप से इच्छुक हुआ। उसने यह पता लगाने के लिए गुप्तचर नियुक्त किए कि राय की सेना कब युद्ध में फँसती है, और जब उसने समझ लिया कि राय की सेना युद्ध में फँसी हुई है, उसने बढ़कर देवगिरि पर आक्रमण कर दिया और बिना उन साधनों के भी उसने उस देश को हस्तगत कर लिया जिन की अन्य राजाओं को आवश्यकता होती है। बुद्धिमान राय ने अपने प्राणों की रक्षा के लिए सुल्तान को अपनी बेटी दे दी और अपने कोष तथा रत्नादि उसे अर्पित किए। अलाउद्दीन मुहम्मद समस्त प्राप्य जानवरों पर उस धन-राशि को लादकर ईश्वर को धन्यवाद देता हुआ अपने प्रांत को वापस आया।

—वस्साफ़ : तज़ियतुल अमसार

(इलियट, तृतीय खंड, पृ० ४०)

(२)

जब अलाउद्दीन ने भिलसा पर आक्रमण किया था उसने देवगिरि की धन-राशि के संबंध में बहुत सी बातें सुनी थीं।...... [इसीलिए] उसने तीन या चार हज़ार घुड़सवार तथा दो हज़ार पैदल सेना कड़ा के उस

भूमि-कर से इकट्ठी की जिसे सुल्तान ने कुछ समय के लिए उसे दे दिया था और इस सेना के साथ उसने देवगिरि के लिए प्रस्थान कर दिया। यद्यपि उसने देवगिरि पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया था, किंतु उसने यत्नपूर्वक इस बात को छिपाया और यह प्रकट करता रहा कि वह चंदेरी पर आक्रमण करने जा रहा था। लेखक के चचा मलिक अलाउल मुल्क को, जो अलाउद्दीन के विश्वासपात्र कर्मचारियों में था, उसने अपनी अनुपस्थिति में कड़ा और अवध का शासक नियुक्त किया।

अलाउद्दीन इलिचपुर गया और वहाँ से घाटी लाजौरा। यहाँ से उसका कोई पता न रहा। कड़ा से सुल्तान के पास अलाउद्दीन के संबंध में कुछ अस्पष्ट विज्ञप्तियाँ इस आशय की भेजी जाती रहीं कि वह विद्रोहियों को दंड देने और उनको तहस-नहस करने में लगा हुआ है, और यह कि विशेष विवरणयुक्त विज्ञप्तियाँ दो-एक दिन बाद भेजी जावेंगी। सुल्तान ने कभी भी अलाउद्दीन के संबंध में किसी प्रकार के दुष्कृत्य का संदेह नहीं किया, और नगर (दिल्ली) के संभ्रांत व्यक्तियों ने समझा कि अपनी स्त्री के साथ मनमुटाव होने के कारण वह किसी दूर देश में अपने लिए कोई स्थान बना रहा है। यह धारणा शीघ्र फैल गई। जब अलाउद्दीन घाटी लाजौरा पहुँचा, रामदेव की सेना उसके पुत्र के सेनानायकत्व में कहीं दूर चली गई थी। उस देश के लोगों ने मुसलमानों के बारे में कभी कुछ नहीं सुना था; मरहठ देश कभी भी उनकी सेनाओं द्वारा दंडित नहीं हुआ था; कोई भी मुसलमान राजा या राजकुमार यहाँ तक नहीं पहुँचा था। देवगिरि अपने सोने और चाँदी, रत्नों और मोतियों तथा अन्य बहुमूल्य पदार्थों से अत्यंत संपन्न था। जब रामदेव ने मुसलमानों के आगमन का समाचार सुना, जैसी कुछ सेना वह इकट्ठी कर सका, उसने इकट्ठी की और अपने एक राणा के साथ उसने उसे घाटी लाजौरा भेजा। वह सेना अलाउद्दीन के द्वारा पराजित होकर तितर-बितर हो गई। तब अलाउद्दीन देवगिरि में प्रविष्ट हुआ। पहले दिन उसने तीस हाथी और कुछ हजार घोड़े लिए। रामदेव ने आकर उसकी वश्यता स्वीकार की। अलाउद्दीन अपने साथ इतनी धनराशि लेकर लौटा जितनी और कभी नहीं गई थी।

—बरनी : तारीख-ए-फ़ीरोज़ शाही

(इलियट, खंड ३, पृ० १४९–५०)

(३)

तब शनिवार, १६ रबीउल अख़ीर अलहिजरी ६६५ को वह (अला-उद्दीन) देवगिरि की उस वाटिका की ओर बढ़ा जिधर से वसंत का आगमन हुआ करता है, और उसकी शाखाओं को झंझावात के समान झकझोरता हुआ उन्हें उनकी पत्तियों और उनके फलों से विरहित कर दिया। रामदेव जो उस वाटिका का एक उच्च कुलसंभूत तरु था, इससे पूर्व कभी भी दुर्भाग्य के ऐसे झंझावात से आहत नहीं हुआ था। किंतु, सुल्तान ने क्रोध में आकर सबसे प्रथम उसी को उखाड़ा और पुनः लगाया ताकि वह पुनः एक हरित वृक्ष होकर उगे। तदनंतर अपने हाथियों को बहुमूल्य रत्नों से उसी प्रकार लादते हुए जैसे मेघों को [जलराशि से] वर्षा लादती है, और स्वर्ण उस समन-ए-ज़ार से भी अधिक परिमाण में जो इस पृथ्वी-तल पर होता है, बोरों में भरकर बक्तिया के ऊँटों तथा हवा जैसे तीव्रगामी घोड़ों पर लादते हुए वह कड़ा मानिकपुर में २८ रजब अलहिजरी ६६५ को पहुँचा।

—ख़ुसरो : खज़ायनुल .फ़ुतूह

(प्रो० हबीब का अनुवाद, पृ० ५)

.ख़ुसरो के 'देवल रानी' में भी यह विवरण मिलता है, किंतु संक्षेप में।

(दे० इलियट, खंड ३, परिशिष्ट)

(४)

जलालुद्दीन ने गरशास्प (अलाउद्दीन) को कड़ा का शासक नियुक्त किया और अपनी बेटी उसको ब्याह दी क्यों कि वह उसके भाई का लड़का था। जब इस बात को ३–४ साल हो गए तो एक नई घटना घटी। जलालुद्दीन की लड़की ने गरशास्प के साथ बुरा व्यवहार करना प्रारंभ किया, जिस पर गरशास्प ने सोचा कि भिखमंगे का लड़का होना बादशाह के दामाद होने से अच्छा है। अतः उसने भाँति-भाँति के उपाय सोचना आरंभ किया। दिल्ली पर आक्रमण करने की उसकी हिम्मत न हुई, क्योंकि न उसके पास इतनी सेना थी, न इतना रुपया था, न हाथी थे, और न दूसरा सामान था। बहुत सोच विचार के अनंतर उसने यह निश्चय किया कि यदि वह देवगिरि पर आक्रमण करे तो यह संभव है कि एक-दो महीने कष्ट उठाने के उपरांत वहाँ से उसे बहुत सी धनराशि मिल जावे और तत्पश्चात् यदि वह दिल्ली पर भी आक्रमण करे तो वह नासमझी की बात न होगी। ऐसा विचार करके उसने अपनी सेना तैयार की और वह कड़ा से चल पड़ा।

......वह घाटी लाजौरा पहुँचा। वहाँ का शासक कान्हा एक हिंदू था। एक तुर्क ने जो गरशास्र की सेना से आगे बढ़ गया था एक तीर आकाश की ओर फेंका जो जब पृथ्वी पर गिरा उसमें धँस गया। उसके बाद वहाँ एक हिंदू [सैनिक] आया जिसने उसको भूमि से निकाला और उसको देखकर आश्चर्य करने लगा कि वह कितना भयानक था। उसके हाथ में और भी दो-तीन तीर थे जिनको उलट-पुलट कर उसने देखा और उसने कहा कि 'कैसा अच्छा यह तीर है, जिसके सामने लोहे का कवच भी रेशम की भाँति होगा।' तत्पश्चात् उस हिंदू [सैनिक] ने वह तीर कान्हा के सामने प्रस्तुत किया और कान्हा उसे लेकर रामदेव के पास गया जो मरहठ का राजा था और उससे कहा कि 'तुर्कों की एक सेना घाटी लाजौरा पार करके आ गई है और उसी के एक सैनिक ने इस तीर को आकाश की ओर फेंका था, जो गिरकर भूमि में धँस गया था।' जब रामदेव ने यह वृत्तांत सुना तो उसने कान्हा से कहा, 'यह बकवास है। कहीं तेरी बुद्धि गुम तो नहीं हो गई है जो मेरे दरबार में ऐसी बातें कर रहा है?' जब कान्हा ने अभिमानी राजा के ये वाक्य सुने उसने उत्तर दिया, 'यदि मेरी बुद्धि हवा हो गई है तो यह निश्चित है कि मैं इस दरबार में जीवित नहीं लौटूँगा।' यह कहता हुआ वह अपने साथियों के साथ लाजौरा की ओर लौट पड़ा।

मैंने सुना है कि उस समय वहाँ दो स्त्रियाँ भी थीं जो युद्ध-कला में दक्ष थीं। जब तुर्क देवगिरि की सीमा के भीतर आ गए, वे दोनों कान्हा की सहायता को आईं, और सिंहिनियों की भाँति तुर्कों से युद्ध करने को सन्नद्ध हो गईं। तुर्क सेना पर इन्होंने आक्रमण कर दिया। तुर्क पीछे हट गए, इससे हिंदुओं में उत्साह का संचार हुआ और वे बाजे बजाने लगे। इस पर तुर्क सेना ने भी आक्रमण किया और उसने हिंदू सेना को तितर-बितर कर दिया। इस युद्ध में बहुत से हिंदू काम आए। परंतु कान्हा तथा वे दोनों स्त्रियाँ बंदी कर लिए गए और गरशास्र के सम्मुख प्रस्तुत किए गए। उन वीरांगनाओं को देखकर गरशास्र ने कहा 'यदि यहाँ की स्त्रियाँ ऐसी वीर हैं, तो यहाँ के पुरुषों का क्या हाल होगा? हम लोग यहाँ धन के लोभ से आए हैं, और उसी के कारण हमने अनेक कष्ट झेले हैं, पता नहीं ईश्वर की क्या इच्छा है। हमको चाहिए कि हम प्रतिज्ञा करें कि जब हम शत्रुओं पर आक्रमण करेंगे, चाहे हमारे प्राण चले जावेंगे, हम पीछे नहीं हटेंगे।

हिंदुओं के सिरों से खाल खींच लेंगे और मरहठ देश पर हमला करेंगे। जब हिंदू हार जायेंगे तब मरहठ देश हमारे अधिकार में आ जाएगा तथा इस आक्रमण में जो धन जिसके हाथ लगेगा वह उसी का हो जावेगा।' अब सबने यही प्रतिज्ञा कर ली। तुर्क सेना आगे बढ़ी। मार्ग में उन्होंने बहुत से हिंदुओं को मारा और बंदी किया।

अब तुर्क सेना खतका पहुँची। ऐसा मैंने सुना है कि उस समय राय (रामदेव) की सेनाएँ भीलम (उसके पुत्र) के साथ बाहर गई हुई थीं—भीलम उसका अकेला पुत्र था। जब रामदेव ने यह देखा कि नगर में चारों ओर हाहाकार हो रहा है, और उसके पास सेना नहीं है, वह दुर्ग के भीतर चला गया और एक सप्ताह तक उसमें बंद रहा। किंतु जब उसे पता चला कि दुर्ग में खाद्यान्न नहीं है, तो उसको बहुत भय हुआ और विवश होकर उसने संधि की प्रार्थना की, जिसको गरशास्प ने स्वीकार कर लिया। रामदेव दुर्ग से नम्रतापूर्वक नीचे आया। यह गरशास्प के लिए सौभाग्य की बात थी। एक ही आक्रमण में खतका तथा देवगिरि दोनों नगर तुर्कों के हाथ आ गए, और उसके साथ-साथ बहुत सी धनराशि भी उनके हाथ लगी, और बहुत सी सुंदरी स्त्रियाँ, बहुत से रत्नाभरण, मोती, हीरे, प्रचुर कोष, इत्र आदि तुर्कों के हाथ लगे। उन्हें भाँति-भाँति के कपड़े भी मिले जो देवगिरि में अलभ्य थे, और वे भी इतने परिमाण में कि कोई भी उन्हें आजीवन पहिनता। धनराशि इतनी थी कि जिसकी तालिका सौ वर्ष में भी बननी असंभव होगी। बहुत से घोड़े और ऊँट आदि भी थे। और, इसके बाद रामदेव ने अपनी अत्यंत प्रिय लड़की भी गरशास्प के सामने प्रस्तुत की। तुर्कसेना ने दोनों नगरों को भलीभाँति लूटा और प्रत्येक सैनिक लूट के धन से अघा गया।

जब भीलम ने यह बात सुनी, वह अपनी सेना के साथ क्रुद्ध हो उठा। उसके साथ पाँच लाख पैदल तथा दस हजार सवार थे और अस्सी हाथी भी थे। जिस दिन रामदेव डरकर गरशास्प के पास आया था, उसके दूसरे ही दिन भीलम दुर्ग के पास पहुँच गया था। जब गरशास्प ने यह समाचार सुना, उसने अपने मंत्रि-मंडल की एक बैठक बुलाई और उसकी राय लेना प्रारंभ किया। उस बैठक में उसने रामदेव को भी बुलाया और उससे कहा, 'ऐ राय, तू हिंदुस्तान के राजाओं का ताज है, और यह वाटिका तेरे यश से प्रकाशित है। तूने मेरे साथ

बड़े प्रेम-प्रीति का व्यवहार किया और अपने निकट संबंधियों को लेकर मेरे पास आया। क्या प्रेम-प्रीति का यही लक्षण है कि तेरा बेटा हमारे साथ युद्ध करे ? यदि तू मेरे प्रति सच्चा है, तो तू उस दिन की यादकर जिस दिन तू ने संधि के लिए प्रार्थना की थी। तुझको चाहिए कि तू अविलंब अपने बेटे को बुला, क्योंकि मैं तेरे बेटे को भी क्षमा कर रहा हूँ। यदि तू यह बात नहीं मानेगा और तेरा बेटा लड़ाई की डींग मारता रहेगा, तो मैं पहले तेरा सिर काट लूँगा और फिर लड़ाई छेड़ दूँगा। भीलम के सिर को भी मैं मिट्टी में मिला दूँगा। और तेरे सारे राज्य को तेरे नगरों के समान बरबाद कर दूँगा। न मैं भीलम को छोड़ूगा और न उसकी सेना को। उसका नाश कर देना मेरे लिए बच्चों का खेल है।' जब रामदेव ने यह निश्चय उस वर [क्योंकि अब वह उसे अपनी बेटी दे चुका था] का सुना और उसकी भौंहों पर बल देखा, तो वह स्तब्ध हो गया, और उसने यह सोचा कि किसी भाँति उसके चित्त को कोमल करना चाहिए। अतएव उसने अपना मुँह खोला और उसे आशीर्वचन कहते हुए कहने लगा, 'मेरा जीवन तो तेरा दिया हुआ है, और मेरा सिर तेरे चरणों पर हवा की भाँति [लोट रहा] है। यद्यपि चिड़चिड़े स्वभाव वाला मेरा बच्चा भीलम मूर्खता के कारण चीं-चपड़ कर रहा है, किंतु कहाँ उसकी इतनी शक्ति है कि वह तेरे साथ युद्ध कर सके ? तू ऐसा है कि तेरे कार्यों से संसार चकित है; तेरे तीर के मुख से युद्ध के समय अँधेरी रात में भी बालों को फाड़ा जा सकता है। मैं उस मूर्ख बेटे को अभी बुलवा रहा हूँ और उस जंगली घोड़े को वश में लाने का यत्न कर रहा हूँ। वह भी तेरे चरणों को आकर चूमेगा और फिर अपना सिर उन पर रख देगा।' इसके अनंतर उसने भीलम के पास अपने एक निजी संदेशवाहक को भेजा और यह कहलाया, 'ऐ मेरे पुत्र, अपनी तलवार से अपने पिता के प्राण न ले। संभव है कि यदि तू तुर्कों पर यकायक आक्रमण करके तू उनको हरा दे, और अपने खोए देश को उनसे वापस पा जाए किंतु यदि मैं ही संसार में न रहा, तो सिंहासन, और मुकुट मेरे किस काम के होंगे ? मेरा हाथ तो पत्थर के नीचे होगा, और तू युद्ध की सामग्री इकट्ठी कर रहा होगा। यदि तुझ में तनिक भी समझ है, तो वश्यता स्वीकार कर ले। नहीं तो, अपने पिता के प्राणों से अपने हाथ धो डाले।' जब भीलम ने यह बात सुनी, तो उसने युद्ध का विचार छोड़ दिया और वीरों की भाँति अपने पिता की आज्ञा का पालन किया। ऐसा ही बड़े बाप के बेटे को शोभा भी देता है।

भीलम दूसरे दिन अपनी सेना के साथ, [तुर्क सेना से] बिना छेड़-छाड़ किए देवगिरि की ओर आया और उसने गरशास्प के चरण चूमे। जब गरशास्प का लक्ष्य ईश्वर की कृपा से पूरा हो गया, तो उसने रामदेव को बुलाया। उसके ऊपर मोती तथा रत्नादि निछावर किए, उसका छत्र उसे लौटा दिया, और उसका देश भी उसे दे दिया। उसने दो मदमत्त हाथी भी उसे दिए—एक उसके बाएँ तथा दूसरा उसके दाहिने था। फिर दोनों ने एक प्रतिज्ञा की, जिसके अनुसार एक बाप हुआ और दूसरा बेटा। दूसरे दिन धुएँ के रंगवाले (अंधकाराच्छन्न) आकाश से जब मशाल निकली (सूर्य निकला), तो वह गरशास्प रामदेव से फिर मिला और उसने उससे कहा, 'यदि तुम मुझसे लड़ोगे, या तुम मुझे सताओगे तो मैं तुम्हें बुलबुले भाँति मिटा दूँगा।' जब विजयी गरशास्प ने यह बात समाप्त की, दोनों व्यक्ति वहाँ से उठकर चले गए। तदनंतर एक समारोह किया गया जिसमें कई दिनों तक नृत्य और गान होता रहा।

—इसामी : फ़ुतूहुस्सलातीन [आगरा संस्करण], पृ० २२२

देवगिरि पर दूसरा आक्रमण

(१)

दिल्ली से देवगिरी को कोई सेना उस समय से नहीं गई थी जब से सुल्तान ने स्वतः उस पर सिंहासनासीन होने से पूर्व आक्रमण किया था। रामदेव ने विद्रोह किया था और कई वर्षों से उसने दिल्ली को कर नहीं भेजा था। मलिक नायब काफ़ूर देवगिरि पहुँचा और उसने देश को मटियामेट कर डाला। उसने रामदेव और उसके लड़कों को बंदी किया, उसका कोष और उसके सत्रह हाथी भी उसने लिए। इनके अतिरिक्त उसके हाथ बहुत सा धन लगा और वह इन सबके साथ विजयी दिल्ली लौटा। साथ में वह रामदेव को भी लेता आया। सुल्तान ने राय [रामदेव] पर बड़ी कृपा प्रदर्शित की और उसे एक छत्र तथा राय-ए-रायान की उपाधि प्रदान किए। उसने उसे एक लाख टंके भी [उपहार में] दिए और उसे उसके पुत्र-कलत्रादि के साथ देवगिरि बड़े सत्कार के साथ वापस करते हुए देवगिरि को

पुनः उसके अधिकार में कर दिया। राय [रामदेव] इसके अनंतर सदैव उसका आज्ञानुवर्ती रहा और जब तक जीवित रहा बराबर उसे कर भेजता रहा।

—बरनी : तारीख़-ए-फ़ीरोज़शाही
(इलियट, खंड ३, पृ० २००-२०१)

(२)

देवगिरि के राय रामदेव ने अपनी वश्यता समाप्त कर दी थी, इसलिए तीस हज़ार सवारों की एक सेना उसके विरुद्ध भेजी गई और मलिक नायब बारबक उस सेना का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। उसने तीन सौ प्रसंगों का मार्ग सुगमता से तै कर लिया। यद्यपि यह मार्ग पत्थरों और पहाड़ों का था, उसने अपनी बाग कहीं नहीं रोकी। वह देवगिरि शनिवार, १९ रमज़ान अलहिजरी ७०६ को पहुँच गया। राय [रामदेव] का पुत्र तत्काल भाग गया और हिंदू सेना का अधिकांश भालों और तीरों से नर्क को पहुँचा दिया गया। जो शेष रहे उनमें से आधे भाग निकले और आधे सैनिकों को क्षमा प्रदान की गई।

विजय के अनंतर सेनाध्यक्ष ने आज्ञा दी कि जिस सैनिक को लूट में जो धन प्राप्त हुआ है वह उसे अपने पास रखे, केवल घोड़े, हाथी तथा कोष सुल्तान के लिए सुरक्षित समझे जावें। राय [रायदेव] को बंदी किया गया और उसे सुल्तान के पास [दिल्ली] भेज दिया गया, जहाँ वह छः महीने तक रोक रक्खा गया। उसके बाद वह समस्त आदर और एक लाल छत्र के साथ विदा किया गया।

—ख़ुसरो : ख़ज़ायनुलफ़ुतूह
(इलियट, खंड ३, पृ० ७७-७८)
(प्रो० हबीब का अनुवाद, पृ० ५१-५३)

(३)

सुल्तान का एक सेवक था मलिक काफ़ूर, जो बड़ा वीर था और बहुत कामकाजी भी था। मैंने यह सुना है कि देवगिरि के राय रामदेव के पास से सुल्तान के पास एक गुप्त संदेशवाहक आया जिसने उसका यह संदेश दिया—'मेरा बेटा भीलम मुझसे शत्रुता करने लगा है और मैं भी अपने प्राणों के भय से उसकी इच्छानुसार कार्य करने लगा हूँ। वह आपसे विमुख

हो गया है। मैं आपका दास हूँ और आपकी आज्ञा से कभी मुँह नहीं मोड़ सकता। मुझे अपनी पहले की हुई प्रतिज्ञा स्मरण है, और मुझे यह भी स्मरण है कि किस प्रकार विवश होकर मैंने सौगंध खाई थी। मेरे शरीर की राख हो जाएगी तब भी मेरी आत्मा को वह प्रतिज्ञा स्मरण रहेगी। अगर सुल्तान अपने एक अफ़सर को इधर भेज दें, तो यह संभव है कि विद्रोही वश्यता स्वीकार कर ले।'

जब सुल्तान ने यह समाचार सुना तो उसने मलिक नायब (मलिक काफ़ूर) को इस कार्य के लिए हुक्म दिया। मलिक नायब ने अपना पड़ाव तिलपत में किया और फिर देवगिरि की ओर चल पड़ा। धार होते हुए उसने पहाड़ी मार्ग तै किया। बीच-बीच में पहाड़ काटकर उसने मार्ग बनाए। उसने घाटी सागौना को भी काटा।

जब भीलम को [तुर्क सेना के आगमन की] सूचना मिली, उसने अपनी सेना नगर के बाहर इकट्ठी की और वह युद्ध के लिये डट गया। दूसरे दिन जब सूर्योदय हुआ तो तुर्कों ने युद्ध-घोष किया। जब भीलम, राघव और रामदेव ने शाही सेनाओं को देखा तो उनका दिल टूट गया और हिंदू बेबसी का अनुभव करने लगे। उन्होंने कुछ लड़ाई प्रारंभ की और हाथ पैर मारे, किंतु तुर्कों के सामने उनकी एक न चली। तुर्क सेना ने बड़ी मार। काट की। भला हिंदू तुर्कों के सामने कब ठहर सकते थे जब मुगलों तक ने उनका लोहा मान लिया था ? हिंदू भाग निकले। युद्धक्षेत्र में रामदेव अपने कुटुंब के साथ बंदी हुआ और नगर दूसरी बार लूटा गया। प्रत्येक घर से सैनिकों ने धन उगाहा। जब मलिक को इस कार्य से छुट्टी मिली, उसने रामदेव को उसके कुटुंब के साथ दिल्ली की ओर रवाना किया। उसके दिल्ली पहुँचने पर सुल्तान ने रामदेव को बुलाया। मोती और रत्नादि उसपर निछावर किए, और दो लाख सोने के टंके इनाम के रूप में उस मरहठा को दिए। उसको राय-ए-रायान की उपाधि भी दी और दूसरी बार एक छत्र दिया। फिर थोड़े दिनों के बाद उसने उसको देवगिरि वापस किया।

—इसामी : फ़ुतूहुस्सलातीन [आगरा संस्करण]
पृ० २७३

राजमाता छिताई

[काफ़ूर की मृत्यु के अनंतर] षडयंत्रकारियों ने कुतुबुद्दीन मुबारक खिलजी को यह सलाह दी कि वह [दिल्ली का सिंहासन लेने के पूर्व] महीने दो महीने शहाबुद्दीन उमर खिलजी के अभिभावक के रूप में कार्य करे। उसने उनकी यह सलाह मान ली। इस अवधि में उसने अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह इतनी योग्यता से किया कि प्रजा उसके कार्यों से संतुष्ट हो गई और उसे चाहने लगी। यह देखकर 'झतयापली रामदेव की पूर्वोक्त पुत्री जो दिवंगत सुल्तान के हर्म में थी',[1] और जिसका बच्चा (शहाबुद्दीन उमर खिलजी) अलाउद्दीन के बीमार होने पर सिंहासन पर बिठाया गया था, उससे ईर्ष्या करने लगी, विशेष रूप से इस कारण कि लोग उस भाग्यशाली खाँ (कुतुबुद्दीन-मुबारक खिलजी) पर अनुरक्त होने लगे थे, और वह इस बात का षड्यंत्र रचने लगी कि कुतुबुद्दीन मुबारक खिलजी को विष दे दिया जावे। उसका यह षड्यंत्र छिपा न रह सका और इसको समाप्त करके कुतुबुद्दीन मुबारक खिलजी सुल्तान बन गया।

—इसामी : फ़ुतूहुस्सलातीन [आगरा संस्करण]
पृ० ३४४

---

१. उलटे कामों की शब्दावली के स्थान पर मूल में है :

झतयापली (छिताई) हमाँ दुख्तरे रामदेव।
कि बूदस्त दर हुक्म गैहाँ ख़देव।

छिताई वार्ता

× × × ×

× [पया] * दे हस्ति तुरंग।
चलैहि ज निसुरत खान के संग।
नगर (?) दुर्ग पाटण [?] नयर।
रहि न सकै (सके) तुरकन के बयर ॥ ६२ ॥

बहुत बात का कहौं बढ़ाइ।
उतरे मीर देवगिर जाइ।
धावइ तुरक देस माहिं धार (धारि)।
उबरै राउ दीइ (दीयइ) बर नारि ॥ ६३ ॥[1]

सुबस बसैं जे गांवों गांउ।
तिनके खोज मिटाए ठांउ।
संकि न (ज?) मिलइ मीडए आइ।
कांधो ठोकि तिह देइ कबाइ ॥ ६४ ॥

प्रजा भागि सायर दुरि[1] गई।
देवगिर सुधि (सुध्धि) रामदेव लही।

---

* इस चिह्नके पूर्व का अंश क. में भी अप्राप्य है। क. में एक पत्रे पर प्रायः ३० छंद आते हैं, इस लिए यह प्रकट है कि प्रति के प्रारंभ के दो पत्रे, जिनमें ६१ छंद रहे होंगे खंडित हैं। इन ६१ छंदों में नारायणदास तथा रतनरंग की प्रस्तावनाओं तथा निसुरत खाँ के आक्रमण की भूमिका के साथ देवगिरि तथा दिल्ली के विषय के कुछ विवरणात्मक कथन रहे होंगे। कथा का कोई प्रसंग खंडित हुआ है, यह प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि आगे सुलतान से मैनरेखा ने इस आक्रमण का जो संकेत किया है (छंद ४३४-४३६), उसमें भी यही बातें आती हैं जो यहाँ से मिलती हैं।

[६३] १. क. में यहाँ छंद-संख्या पूर्ववर्ती छंद की ही दुहरा दी गई है।

[६५] १. क. में यहाँ पाठ 'साय द्रिढ' है, जो निरर्थक है। छंद ६५ के बाद भूल से पंक्ति पुनः लिख दी गई है। वहाँ पाठ

चित चिंता जब उपनी राइ ।
सचवि (सचिव) सयाने लीए बुलाइ ॥ ६५ ॥[२]

[१]जैसे जाइ (जाहि) बुधि प्रवेस (परवेस) ।
मतो प्रकासुं (प्रकासौ) कहै नरेस ।
साम दान भेद हथियार ।
जैसे नापाइ (जापइ?) होइ उवारि (उचारि)[२] ॥ ६६ ॥

कहइं सयाने मंत प्रकास ।
दुहि (दुइ) पवारां (पखवारां) होइ बिनास ।
जो बिचरैगो निसुरत खान ।
सइं दल आवइ तु (तो) सुरतान ॥ ६७ ॥

जो प्रति डिगइ हमारे पाइ ।
इन पइ जीवति ए न (नहि?) जाइ ।
राउ न (ज?) चिंत न सधि (सुधि) तन पर्‍यौ ।
अ (अस?) परचक्र अजान्यौ परौ ॥ ६८ ॥

कै बेटी दें निश्चल (निस्चल) होइ ।
कइ ढीली जान बूझीइ (बूझियइ) तोहि ।
जो दुख राउ अपन पै सहइ ।
प्रजा देस धन निश्चल (निस्चल) रहइ ॥ ६९ ॥

असो मतो कीउ (किओ) नरनाह ।
मील्यौ राउ मोल्हन की बाहु ॥ ७० ॥

सायर तीर राय जे घने ।
निसरत खान कीए (किए) आपने ।

'सायर दुरि' है, इस लिए 'सायर दुरि' ही ठीक पाठ लगता है ।
२. तु० छंद २५३, २५४ ।

[६६] १. क. में यहाँ छंद के प्रथम दो चरणों के रूप में छंद ६५ के प्रथम दो चरण भूल से दुहरा दिए गए हैं । २. पुरानी राजस्थानी नागरी में 'च' का निकला हुआ नोक इतना अल्प होता था कि उसके संबंध में प्रायः 'व' का भ्रम हो जाता था ।

लीउ (लिओ) राउ रामदेव संघात।
बिचै न बिरमे ढीली जात ॥ ७१ ॥
अति सुख सुनि सुलितानह भयो।
अलूखान आगै होइ रहौ।
करी अलावदीन वारम (वाराम ?)।
टका लाख दश (दस) भए इनाम ॥ ७२ ॥
अधिक मया कीनी सुरतान।
राख ज राइ (राइह ?) आप समान।
गयर महल सुरितानइ पासि।
रहइ ज हरमां मांझि अवास ॥७३॥
दूहू पेम बाढौ अति घनौ।
कह (कहइ ?) जु गूझ आप आपनो।
राउ राग रस खरौ सुजान।
अइसइ बसि कीतुं (कीनौ) सुरितान ॥७४॥
अइसइ बरस तीसरी भई।
राइ (राइह ?) घर को सुधि नहु भई।
तब रानी उजीर हकराइ।
कही बात तिन सरिस बुलाइ ॥७५॥
रे मंत्री तुम्ह चितौ कबुधि (कबुध्धि)।
अजु (अजौं) न करइ राउ की सुधि (सुध्धि)।
बिन नायक न (नहि ?) चलहै (चलिहै ?) राज।
समदो लिख्खो राउ कुं (कौ) आज ॥७६॥
घर माहि कन्या ब्याहन जोग।
अरु भ्रम करइ मीडिआ लोग।
जाकै कन्या कुंआरी होइ।
निस भरि नींद कि सुई (सोई) सोइ ॥७७॥
[घ] र कन्या रिन व्यापै पीर।
तिनकै चिंता होइ सरीर।
घटी देह उनत (उन्नत ?) भो हीउ (हिओ)।
काम सरीर बसेरो कीउ (किओ) ॥७८॥

छीदो (छिदो) फोरि निकसे कुच कूर ।
मनहु मदन बयठन के मूर ।
बाला बेलि तबहि कुमलाइ ।
जो न सींचीइ (सींचियइ) अवसरि आइ ॥७९॥

जो नित नीर कुआ को कढइ ।
निरमल जल उपहरो (उपहारो ?) चढइ ।
भोग करत कामनि सुख करै ।
प्रमदा प्रम (परम) सरूपै धरै ॥८०॥

सबै लिखै घर के ब्योहार ।
पतिहा चले च्यारि असवार ॥८१॥

बिरमे चलत कछू दिन बीच ।
ढीली नगर ते जाइ पहूत ।
सोधि मेलान राइ पहं गए ।
चरण बंदि तिह कागद दए ॥८२॥

अनु पूछे घर के ब्योहार ।
कुसर छिताई सब परिवार ।
पुनि बूझी कन्या की बात ।
कुसर छिताई अपनै गात ॥८३॥

नाइ सीस पतिहा उचरै (उच्चरै) ।
अन्न पान रानी परिहरै ।
असुं (असौ) सुनत नयन जल भरे (भरै) ।
मन उल्हास चलबे कुं (कौ) करइ ॥८४॥

कहइ बात आपन नरनाथ ।
पाती दिउ (दैउं) सुलितानहु हाथ ।
असौ मतो कीउ (किओ) नरनाह ।
कहिहुं कन्या तणो बिवाह ॥८५॥

मंत्री बात कहइ समझाइ ।
काम न होइ खेल तें राइ ।
तुम्ह दुइ दासी दई करूप ।
पातिसाह जीअ (जिअ) बसि (बसीं) अनूप ॥८६॥

तिन पइ भेद् लहइ सुलितान ।
बेटी सुनै न पावइ जान ।
गहि राखै बेयरियां घलाइ ।
दीइ (दियइ) छिताई छूटै राइ ॥८७॥

राइ जीभ सुनि चंपी दंत ।
ऐसी बात कहै क्यं संत ।
निसुरित (निसुरति) अलूखान जूं (ज्यूं) आइ ।
तिह समान जानहि मुझ साहि ॥८८॥

मद् सद् स्वाद् जीभ को लहइ ।
जुवा खेल को साचो कहइ ।
काम रहित नाहीं कामनी ।
निपत (त्रिपति) मित्र नवि जानौ गुनी ॥८९॥

राजा सुनै न एको बात ।
ले पाती ले (?) गयो परभात ॥९०॥

इहां मोहि दिन बीते घने ।
आए लिखे देवगिर तने ।
जांपइ रामदेव नरनाथ ।
मेरै हइ कन्या को ब्याह ॥९१॥

कहइ अलावदीन सुलितान ।
राइ (राइह) समदौं होइति बिहान ।
तेरी सेव भयो सुख मोहि ।
मांगि रामदेव भावइ तोहि ॥९२॥

नाइ सीस तिह बोलइ भूप ।
इह भूमि चित्र चरित्र अनूप ।
मेरइ जीउ छइ इच्छा एक ।
गुनी चितेरौ[1] समदे साहि[2] ॥९३॥

---

[९३] १. क. में प्रति भर में 'चितोरो' है, जो अर्थहीन है । यह अशुद्धि प्राचीन राजस्थानी में 'औ' की लिखावट 'ाओ' जैसी होने के कारण उत्पन्न हुई लगती है । २. इस अर्द्धाली में तुक-वैषम्य द्रष्टव्य है । असंभव नहीं कि यहाँ कुछ अंश छूट गया हो ।

रीझौ पातिसाहि इउं कहइ।
गुनी होइ गुन कुं (कौ) संग्रहइ ॥९४॥
लाभी (लोभी) सुकृत गंवावइ सर्ब।
कर्म अकर्म संग्रहइ द्रिब्य।
कामी तो चाहै कामनी।
गुन को संग्रह करहइ (करही) गुनी ॥९५॥

जैसै हंस परिहरइ नीर।
स्वाद लबध (लुबुध) होइ पीवइ खीर।
जो (ज्यौं) उगुन (औगुन) चाहै चालनी।
तिम मूरिख जानै निर्गुनी ॥९६॥

बोलि चितेरौ आपन साथि।
दई कबाइ आपन नरनाथ।
छत्र सीस दै हस्ति तुखार।
पहिराउ (पहिराओ) बीसा सौ बार ॥९७॥

चल्यो चितेरौ आपनि साथ।
मानु (मानौ) घालि पिटारइ सांप।
बरजइ मंत्री करइ पुकार।
गांठि बंध (बांध) ले चल्यो अंगार ॥९८॥

मंत्री तनी बात न सुहाइ।
देवगिर दुर्ग चढ़े तिह (तिहं ?) जाइ।
सबहो नगर भयो उछाह (उछ्छाह ?)।
कुसर सहित घरि आउ (आओ) नाह ॥९९॥

वस्तुबंध—गयो राजा नगर मझारि।
गेह गेह आनंद भए। होई गीत बाजे बजाए।
दीजइ हय गय कापरे
कंकन कणौ भंडार।
याचक जन संतोषीउ (संतोषिऔ)
आनांदीउ (आनंदिओ) संसार ॥१००॥

चउपई—आनंदौ देखत संसार।
मनह (मनहु) राय को भयो अतार (अवतार)।

याचक समदे करि मनुहारि।
राइ चितेरौ लीउ (लिओ) हकारि ॥१०१॥
पकरि बांह भीतरि ले गयो।
महल दिखावन ठाढो भयो।
फुनि बरषै बरषा के मेह।
बेगि [?] चित्र हमारे ग्रेह ॥१०२॥
कहइ चितेरौ सुनि हो साहि (राइ ?)।
असै चित्र करन क्यं जाइ।
इहु मइ सुन्यौ पुराननि पाठ।
जीरन काया कापर काठ ॥१०३॥
इनहि न चढइ रंग की रेखु।
कहइं सयाने चतुर बिसेष।
चित्र न होइ पुरानी बान।
इह समराइ हमारी जान ॥१०४॥
तब रामदेव बिचाऱ्यो हीइ (हियइ)।
चित्र होइ नवतन घरकीयौ (कियै)।
जे प्रबीन प्राहर सुतधार।
बीरा दीने राइ हकार (हकारि) ॥१५०॥
कमठानन को आयसु भयो।
अगनति द्रिब्या काम लगि दयो।
बोलि जोतषी साधी लग्न।
रची नीव सुभ बार सु सुकून ॥१०६॥
खेत्रपाल पूज्यो करा (करि) भाउ।
होइ अभंग गेह द्रिढ ठांउ।
गहरी नीव झारी चहुं राइ।
पुरस पंच की भरी भराइ ॥१०७॥
चौबारे चौपखा चडोर।
बन (बने) कलस कंचन के मोर।
एकत हाटन पठना (पटना) पटे।
नव नाटक नट सालन नटे ॥१०८॥

रावन रंग कोरि रमनीक।
लाजवर्द भुइं नखस अकीक।
खट छप्पर सतखने अवास।
कंचन कलस मनह (मनहु) कबिलास ॥१०९॥

रची केरि कांच की खांडारि।
रहित भामिनी भूलि बिचारि ॥११०॥

बादल महल उठी घन घटा।
रचे अनूप अटारी आटा (अटा)।
छाजे छत्र [?] गोख अनूप।
तनहि (तिनही) उठ (ओट) उझक दैइ भूप ॥१११॥

बावन बस्त मीली (मिलीं) करि बान।
अति अनूप आरसी समान।
रची चित्रसाली चित लाइ।
देखत ही मन रहै लुभाइ ॥११२॥

मानिक चोक (चौक) स मन मोहनी।
रची अनूप चोर मीचनी।
किए भुहरे (भौहरे) अनु अनु भांति।
तिन माहिं मनु (मनो) अंध्यारी राति ॥११३॥

बने हिंडोरे कंचन खंभ।
मानहु उपजइ उक्ति सुयंभ।
करी अनूप अति खरी सिंगार।
मानहु भरति (भरत ?) की भरी सुनारि ॥११४॥

सभा जोरि जे (जहं ?) बैठे राउ।
फिटक पीठि सो बांध्यौ ठांउ।
चकवा चकवी एकै डारि।
जल कूकरी मटामरि यार (आरि ?) ॥११५॥

तिहटा उर (और) जिते जल जीउ।
भरे भरत के साजे नीउ।
कमल कमोदनि पुरयनि पान।
झलमलहिं (झलमलाहिं) सरवर [?] समान ॥११६॥

मच्छ कच्छ ते दीरघ घने।
ते साद्रिष्ट चलकर (?) बने।
सभा सरोवर दीसै तिसौ।
हशनापुर पांडव कौ जिसौ ॥११७॥
उर (और) राइ जे देखइ आइ।
धंसि न सकैं ते डरइं डराइ ॥११८॥
चंदन काठ कठायल आन।
ते ग्रीषम हिम रित [?] समान।
चौबारे चौपखा सुदेस।
बरषा बिरमे जिहां नरेस ॥११९॥
सोना के पीपर पंचास।
बरषैं नीर बारहइ मास।
गोमट खरबूजा आकार।
तिनहि पवारिन तने किवार ॥१२०॥
तिहठा सारो सुवा निवास।
खुमरी बोलइ मधुरी भास।
एक महल नीर को दुराउ।
दीसइ जन (जनु) बैठन को ठांउ ॥१२१॥
देखत सुधि (सुध्धि) न होइ सरीर।
चल (चलइ?) ति बूडिइ गहिर गंभीर।
हलबी काच भरी कुच (गच?) करी।
सोभइ जानि कालिंद्रह (कालिंद्रिह) भरी ॥१२२॥
तिहठा राइ तनी जीवन बारि।
दीसइ जमना जल आकारि।
जिनस जिनस मंदिर जिनसार।
हेम जरित सोहइ सिजवारि ॥१२३॥
जब संपूरन भए आवास।
गयौ चितेरौ राजा पासि।
मांगि राइ बानी पंच बान।
लागो चित्र चित्र (बिचित्र) करान ॥१२४॥

सुमरि गनेस साही लेखनी।
लागौ बुधि (बुध्धि) रचन आपनी।
प्रथम रचौ सरस्वती सरूप।
उकति चित्र जिम होइ अनूप ॥१२५॥

नैषधि निरषधि लिख्यो संजोग।
नलदमयंती तनो बीउग (बिओग)।
भाराथ (भारथ) रामाइन चित्रयो।
मृगया महा मनोहर कीउ (किओ) ॥१२६॥

लिख्यो काक चोरासी भांति।
च्यारि प्रकारि नारि की जाति।
पद्‌मनि चित्रनि गज संखनी।
चित्रति (चित्रित) महा मनोहर बनी ॥१२७॥

अरु गज खरन (खेरन ?) खरे सुठार।
चारि पुरष चहुं [?] आकार।
कवियन कहै नरायन दास।
जब लागौ चित्रन आवास ॥१२८॥

देखन लोक नगर को जाइ।
चितइ चित्र तन रहइ लुभाइ।
जेता पंडित चतुर सुजान।
गहि आवै देखै दिन मान ॥१२९॥

एक दिवस की कहन न जाइ।
छजइ छिताई उझकइ आइ।
दामनि जुं (ज्युं) सुंदरि दुरि गई।
देखि चितेरौ मुरछा भई ॥१३०॥

रहौ चितेरौ मनह लगाइ।
बहुर न कबही उझकइ आइ।
जब जब सुनो (सूनो) होइ आवास।
तब देखनि आवई निवास ॥१३१॥

ठोंकित बीन [?] निरखै नारि।
रचि रचि राग संवारि संवारि।

काम बिथा तन खरी उदास।
आई देखनि (देखन ?) चित्र आवास ॥१३२॥
गज गति चली मदन मुसक्याइ।
सखी पांच लई साथ लगाइ।
देखनि (देखन ?) चली चित्र की साल (सार)।
लिखौ चित्र जिहां बिब (बिबिध ?) प्रकार ॥१३३॥
लिखति (लिखत ?) चितेरै दीनी पीठ।
तिहां नेवर सुनि फेरी द्रिष्ट (दीठ)।
रहौ छिताई को मुंह जोइ।
इह रंभा कइ अपछर होइ ॥१३४॥
लागो चित्र (चितंग ?) चित्र को जिसौ।
जाने ठगि घालि ठगौरी तिसुं (तिसौ)।
देखत फिरत चित्र चिहुं पास।
बीन सब्द सुनि स्रवन निवास ॥१३५॥
देखी कोक कला [?] खांति।
चउरासी आसन की भांति।
आसन चित्र [?] बिबिध प्रकार।
सुभ बिपरीत रंग रस सार ॥१३६॥
आसन देखत खरी लजाइ।
अंचल मुहिं दीन्हइ मुसक्याइ।
सखी दिखावहि बांह पसारि।
कहां आहि अहु कहा बिचार ॥१३७॥
देखे चित्र सुरत बिपरीत।
बाल (बाला) भरम भयौ (भयी ?) भयभीत।
देखे नाटक नाटारंभ।
लिखो चित्र चउरासी खंभ ॥१३८॥
चतुर चितेरै देखी तिसी (जिसी)।
करि कागद माहि चित्री तिसी[१]।

---

[१३९] १. क. में यह पंक्ति इसी स्थान पर दुहरा उठी है।

चितवनि चलनि मुरनि मुसक्यानि।
चरचि चितेरैइ चित्री बानि ॥१३९॥
सुंदरि सुघर सघर परबीन।
जोबन जानि बजावइ बीन।
नाद करत हिरिको मनु हरइ।
नर बापरो कहा धुं (धौं) करइ ॥१४०॥
इक सुंदरि अनु सुबन सरीर।
एक मिश्री मिश्रत (मिश्रित) भो खीर।
इक सोनुं (सोनौ) [?] होइ सुगंध।
लहीइ (लहियइ) परइ प्रियागह कंध ॥१४१॥
चित्र देखि बहुरी चित्रनी।
आलस गति गयंद गुर्वनी ॥१४२॥
कवीयन (कवियन) कहइ नराइन दास।
गइ (गई) छिताई बहुरि अवास।
पहिर्‍यौ अंगि कुसंबी (कुसंभी) चीर।
गोर बर्न अति सुबन सरीर ॥१४३॥
कुच कंचकी सोहीइ (सोहियइ) स्याम।
मनहुं गूडरी दीन्ही काम।
मृग चेटवा लगाए साथ।
आपन लए हरे जौ हाथि ॥१४४॥
तिनहिं चरावत बाह उचाइ।
कुच कंचकी संद तिह जाइ।
तब कुच मोरि चितेरैइ देखि।
स्याम घटा मनु ससि की रेख ॥१४५॥
रहो तन मन ति तिहां लगाइ।
जीवत सुरत न कबहूं जाइ।
फिरत महुल माहिं निरभइ भई।
मुरिछा देखि चितेरैइ भई ॥१४६॥
चेतौ जबहि चित्रंग संभारि।
लिख्यौ सरूप [?] मनह बिचारि।

जब जब द्रिष्ट तास की परी।
तब तब बुधि (बुध्धि) तास की हरी ॥१४७॥
भयो समंगर (समग्गर ?) घर को काम।
बिप्र हकारइ राजा राम।
नारिकेर पूंगीफल लेहु।
तुम्ह बर सोधि छिताई लैइ (लेहु ?) ॥१४८॥
फिरहु देस देसंतर जाइ।
लाइक कौ बर कहीइ (कहियइ) आइ।
त्रया (त्रिया) क्रम्म कुल विद्या पढ़ौ।
रोहित तै दौनै दिन चढ़ौ ॥१४९॥
पुरषा गति सजनाइ (सजनाई) जिहां।
निचेइ (निस्चइ) कन्या दीजइ तिहां।
ब्याह बयर मित्रिया प्रमान।
ए तिन चाहीइ (चाहियइ) आप समान ॥१५०॥
चलौ बिप्र आसिष दे राइ।
ढोलसमुद गढ पहुतौ जाइ।
भाखत नाराइन नरनाथ।
....[1] ॥१५१॥
ताको सुत सुंरसी (सौरसी)[1] सुजान।
मुद्रावंत समुंद समान ॥१५२॥
भानइ मुदगर फेरइ नाल।
बन्यो स द्रिढ (द्रिढ्ढ ?) सरीर रसाल।
लागत खांभ [सय] ल गुनी (गुन ?) गुनी।
बोलइ सुजसु पुहुमि सब दुनी ॥१५३॥
सब गुन राजनीत ब्यौपरइ।
पर तीआ पर द्रिष्ट नवि करइ।
करि बिसठारो बात चलाइ।
कन्या देइ (दई) सुंरसी (सौरसी) जाइ ॥१५४॥

---

[१५१] १. क. में यहाँ पर कम से कम एक चरण छूटा हुआ है।
[१५२] १. क. प्रति भर में 'सौरसी' को 'सुंरसी' लिखा गया है।

कीयौ तिलक लिखि लगन प्रमान ।
आए प्रोहित देवगिर थान ।
कही बात राजा सुं (सौं) जांइ ।
कन्या दई सुंरसी (सौरसी) जाइ ॥१५५॥

छंद—बूझै नरनाह । करो बिबाह ।
मंत्री आप बुलावौ । हेम षडावौ (घडावौ) ।
जैसो करनइ जाइ (जोइ) ।
पाट पटोरे कुंजर घोरे राखौ सबे संजोइ ।
पोस्ती मोस्ती देत न बिरमन होइ ॥१५६॥

चउपई—करि (करी ?) सगति आयो संजोइ ।
सुनि बिबाह आयो सब कोइ ।
राना राय जुरे से (सै) सात ।
चले सोरसी (सौरसी) तनी बरात ॥१५७॥

अहि निस चल (चलि) अंतर घन भए ।
देवगिर दुर्ग बिबाहन गए ।
करि(करी)अगौनी भौ अविचार (अभिचार) ।
जसौ कुलकर्मा आ बिवहार ॥१५८॥

मांडप मांडी [?] सिकलात ।
तिहां बैठी सोहजा (सोहजी) बरात ।
परदा नीज (निज ?) र (?) नगर के सोज ।
दीजइ गारि गारि कै चौज ॥१५९॥

कोकिल बचन (बंचनि) रतन जे नारि ।
सुधा समानि सुनावइ गारि ।
तिनके बचन सुनत मनु हरइ ।
भोजन स्वाद जीभ परिहरइ ॥१६०॥

छह रस सुं (सौं) भयो जीवन बार (बारि) ।
सुभ बिबाह सुभ मंगलचार ।
ब्याह राति जागी कामनी ।
घूंघट घूम चलति गामनी ॥१६१॥

एक नारि मोरावइ नयन ।
गरि खोखरइ बोलइ एक बचन ।
लट मेल्ह (मेल्हि ?) लटकंती फिरइ ।
जोबन मद छाकी जुं (ज्युं) गिरइ ॥१६२॥

एक ति खांभ गहइ उडाइ (ओडाइ) ।
जागी ज्वानि ते खरी जंभाइ ।
आए देस देस के राइ ।
तिनहि दिखा [वइ] चित्र बुलाइ ॥१६३॥

देख [?] रीझ रहे नरेस ।
समदे आप आपने देस ॥१६४॥

दीओ (दिओ) राउ रामदेव[1] भूयाल भुयाल ।
पांच पांच पेरोजा लाल ।
सोनो रतन जे जाची चुनी ।
ते निर्मोलिक जानइ गुनी ॥१६५॥

.... ।[1]
गज सिंघली दीए (दिए) सय च्यारि ।
भगवन नाराइन नरनाथ ।
दीउ (दिओ) कर्न (दान ?) ते कर्न समरांति[2] ॥१६६॥

चले बिबाह करी आनंद ।
ढोल समुद गढ गए नरिंद ।

---

[१६५] १. क. में 'रामदेव दे' है, 'देव' तथा 'दे' में से एक ही होना चाहिए था ।

[१६६] १. क. में पिछली अर्द्धाली उसके छंद १६२ की प्रथम अर्द्धाली है, और अगला चरण उसके छंद १७१ का दूसरा चरण है । प्रसंग यहाँ विवाह में दिए हुए दायज का है, और संभावना सूची के लम्बी होने की है, इसलिए असंभव नहीं कि कुछ पंक्तियाँ उसमें यहाँ छूट गई हों । २. क. में यहाँ पर छंद-संख्या आठ आगे बढ़ी हुई है, यद्यपि प्रसंग से इतना अन्तर ठीक नहीं प्रतीत होता है ।

जबहि पालकी भीतर गई।
उतरत छींक छिताई भई ॥१६७॥

रानी रही मुहामुहि चाहि।
यह मानस कै अपछर आहि।
जबहि आरतो (आरती) करइ कामनी।
देखि रूप भूली भामनी ॥१६८॥

सिंगार छिताई कौ

कुटिल केस सिर सोहइ बाल।
कच कांवरि (कोंवर ?) जानि मधुकर माल।
मोती मांग मदन की बाट।
राज नीक सम तिलक निलाट ॥१६९॥

सरद सोम ससि (सम ?) बदन प्रकास।
मदन चाप सम भुंहइ (भौंहइ) तासु।
मृग सावक सम सोहइ लोल।
उपइ (ओपइ) कंचन तिसो कपोल ॥१७०॥

धन धन (धन्न धन्न) तेरी ए आखि।
भरी ही (भरिही ?) जाके जीउ की साखि।
बूकी (बूकिय) हेम जन अमृत सान (सानि)।
काक बक रीने (लीने ?) कीन (कीने) बानि ॥१७१॥

रतन जरित तरिका जे ताक।
मनहु मदन रथ के [?] चाक।
भूह (भौंह) पेच अनु खुटी अनूप।
मनहु छ[त्र] सिर दीन्हौ भूप ॥१७२॥

नाक नकफूली रतन जराइ।
रहौ मदन जानु बनसी लाइ।
जाने सु तौ रसिक परवीन।
चितइ चित्र तनु बेध्यो मीन ॥१७३॥

तिल कपोल परि बिधना दीउ (दिओ)।
मनहु (मानहु) मदन चिन्ह करि गयो।
सुधा समान बिधि कीधे अधर।
मानह (मानहु) बाल पवाली सधर ॥१७४॥

हीरा मोति दसन दरसाउ।
कछु [?] दारिउं बीज सुभाउ।
ठोढी लीला सोहइ अति बाल।
केसरि मांझ मनहु जंगाल ॥१७५॥

ग्रीव (ग्रीवा) रेख संख सम तीन।
आपन बिरचि २ (बिरंचि बिरचि) रचि कीन।
कंठहि कंठसरी (कंठसिरी) सोहंति।
छट छूटी मोतिन की पंति ॥१७६॥

कुच कठोर जोब [न] बर बढ़े।
जाने नृप संधिह रन जे चढ़े।
सुबन सुढार सुकंचन खंभ।
श्रीफल सम सोहीइ (सोहियइ) सुयंभ ॥१७७॥

रहे त कुच कंचुकी डचाइ।
मनहु गूडरी दई तनाइ।
गहिरी नाभि बखानइ कुंन (कौन)।
मानहु काम सरोवर भुवन ॥१७८॥

बाहु जुगल जानि नलनी नाल।
राजहंस [?] मधुरी चाल।
नख राख्यौ बाई आंगुरी।
सोहइ जानि कुंद की करी ॥१७९॥

मध्य खीनता बररि समान।
कुच भरि टूटइ ऊर (ओर) नियान।
त्रिबली रेखा सुछ (सुछ्छ) सुभाउ।
कुच नख तिन [?] दीउ (दिओ) सुभाउ ॥१८०॥

कटि मेखला खरु (खरो) सुंठान ।
मानह (मानहु) मदन तने नीसान ।
जांघ जुगल कदली बिपरीत ।
कूकू (कूंकूं) सम ति पींडरी प्रीति (पीति) ॥१८१॥

गरुअ नितंब [?] गज गामनी ।
मुरछै देखि उर (और) कामनी ।
चलन(चरन ?)पीडरी आंगुरी ?)[१] नख की योति (जोति) ।
मनह (मनहु)कमल दल ना(ता) महि मोति ॥१८२॥

चित धरि चित्र गुपति जनु रची ।
सुंदरि जानु संचइ की संची ॥१८३॥

पहिर्‍यौ अंगि दक्षन कौ चीर ।
चंपक दल तन सुबन सरीर ।
एक एक आभरन उतारि ।
दीइ (दियइ) छिताई ऊपरि उरि (उवारि?) ॥१८४॥

गत बासरो रजनी (रजनि) कुं (कौ) रहौ ।
पौढनि सेज सुंरसी (सौरसी) गयौ ।
मन दस बीस अबीर बिछाई (बिछाइ) ।
तापरि पलिका ढार्‍यौ गहाई (गहाइ) ॥१८५॥

जहां राउ पौढन आवास ।
उहां बहुत बातन (बासन ?) की त्रास (?) ।
कस्तूरी कूकमा (कूंकमा) कपूर ।
गवरा अगर बास को मूर ॥१८६॥

जानै कुअंन सुगंधन आदि ।
साख तरपती मेद ज बाध ।
मलयागिर मिलि केसरि घसी ।
छांटौ मइल जहां सुंरसी (सौरसी) ॥१८७॥

---

[१८२] १. 'पींडरी' पूर्ववर्ती छंद में आ चुका है ।

चोखा चोआ मृश्रुत (मिश्रुत) मेंद।
कहौ न जाइ बास रस भेद।
अधिक बास तेल तेलिया।
तिहां छंछार उजारै दिया ॥१८८॥

मिल्यौ अरगजा कीउ (किओ) अनूप।
खेउ (खेओ) महल दख्यनी (दखिनी) धूप।
बीरा धरि करि गए खवास।
चली छिताइ पीउ कइ पासि ॥१८९॥

ठाढी होइ होइ खरी लजाइ।
प्रथम रयन (रयनि) चित मांझ संकाइ।
आगइ पाछइ सुंदरि दस भइ (भईं)।
.................................[1] ॥१९०॥

तब कर पकरि सेज ले जाइ।
गइ (गईं) ति मंदिर मांभि पहुचाइ ॥१९१॥

मदन बान तन जाइ न सह्यो।
उठि सुंरसी (सौरसी) आंचल गह्यो।
छारत (छोरत) कर कुंचकी (कंचुकी) लजाइ।
फूकइ द्रिष्ट (?) दीया बुझाइ ॥१९२॥

भो बिमान (बिमौन) मुखि कंपइ देह।
चल्यो प्रसेद प्रथम सित (?) नेह।
अधर प्रकार (?) कुच गहन न देइ।
छुवन न अंग छिताई देइ (?) ॥१९३॥

घूघट (घूंघट) बदन तरहंडौ कीउ (किओ)।
दोऊ हाथ लगावत हीउ (हिओ)।
कठिन गांठि द्रिढ बिधना दइ (दई)।
छोरत (छोरन) जबहि सुंरसी (सौरसी) लइ (लई) ॥१९४॥

---

[१९०] १. क. में यहाँ पर कम से कम एक चरण छूटा हुआ है।

नना नामि नारि उच्चरइ।
तब चित चउप (चौप) चत्रगनी करइ।
संकइ सुकचइ बीरी न खाइ।
रही पीठि दे हाथ छुडाइ[१] ॥१९५॥

अति गति चतुर काम गति सयन।
हरुए बोलइ मधुरइ बयन।
दुरि (दुरी) द्रिष्ट दीपक मंदी आउ।
खिरकीं सखी त सब बहुराउ ॥१९६॥

अइसुं (अइसौ) बचन छिताई कह्यो।
मानहू (मानहु) परम सुरत सुख लह्यो।
सुंदर सुघर सुनावइ साद।
सुनत कुंअर मन भयो अहिलाद ॥१९७॥

जिम चकोर कई (?) निसि रहइ।
ति (तिम ?) निसि दहु (दुहुं) तनौ मन हरइ।
रहे ति कंठ कंठ लपटाइ।
खिनक मांझ निस गई बिहाइ ॥१९८॥

चउरासी आसन की खानि।
दूलह चतुर चतुर मनि ग्यान।
जहां बार तिथी (तिथि) अंग अनंग।
छुवत सु द्रवइ छिताई अंग ॥१९९॥

आसन [?] कमल बिध बंध।
बिपरित रविन (रतिन ?) चोज अति संध।
कोकिल बयनि कोक गुन गुणी।
कछु [?] बुधि (बुध्धि) सखिन पइ सुणी ॥२००॥

---

[१९५] १. क. में यहाँ पर छंद १९४ की द्वितीय अर्द्धाली पुनः आई है।

दोउ (दौऊ) चतुर सुरत रस रंग।
बहुत उकति उपजावइ अंग।
करत केलि सुख सेज बिश्राम।
देवगिर बोलइ राजाराम ॥२०१॥[१]

भगवन नाराइन नरनाथ।
समद्यौ कटक सुंभ्ररसी (सौरसी) साथ।
चढि चकडोल छिताई लई।
देवगिर दुर्ग पिता कइ गई ॥२०२॥

दीन्हा नवतन महल छुडाइ।
उतरे तिहां सुंरसी (सौरसी) जाइ।
निति नवरंग अखारा हुंत।
नव नाटक नाटीइ (नाटियइ) तुरंत ॥२०३॥

सिंघल की सुंदरि सुंदरी।
नित्य (त्रित्य) निपुण नटवनि नित करी।
सुध (सुध्ध) अंग देसी बहु रूप।
बहुत रंग उपजावइ अनूप ॥२०४॥

कंठ सुरंग कोकिल सम बानि।
तंति पखावज ताल समान।
रंग राग देसी नित दौज।
कूर कपूर अबीर सुखोज ॥२०५॥

दिन सुंरसी (सौरसी) अहेरइ फिरइ।
बरजौ मंत्रि (मंत्री) कह्यौ न करइ।
बागुर बोकर नेक खुदाई (खुदाइ)।
आनइ पकरि मार करि खाहि ॥२०६॥

एक न बधइ बराहि नदारु।
मूल मृगन्न को करइ संघार।

---

[२०१] १. क. में यहाँ छंद-संख्या में पुनः एक की वृद्धि हो गई है।

कबही साथि छिताई जाइ ।
गहइ हिरन घन घंट बजाइ ॥२०७॥

बरजइ रामदेव नरनाह ।
तुम्हनि कुंअर मृगया जिन जाहु ।
मृगया मुउ (मुओ) सु राजा पांड (पंड) ।
मृगया दसरथ गौ बलिवंड ॥२०८॥

मृगया राइ बहुल दुख सहइ (?) ।
मृगया दसरथ दुख तन रहौ ।
कहइ सयाने दिन समझाइ ।
मृगया बहुत बिगूते राइ ॥२०९॥

एकइ दिवस फिरत आखेट ।
भई आथमै मृग सम भेट ।
देखत तुरी सरसि रसि भिल्यौ ।
हिरन पवन सम चोकरि चल्यौ ॥२१०॥

भयो खोज सुरसी (सौरसी) पछाइ ।
सब निसि साथि फिर्‍यौ गुहराइ ।
भागो मृग (मिरिग) गयो गति गाह ।
राउ पिछंडइ हांक्यौ जाइ ॥२११॥

जहां राउ भरथरी बनबासु ।
मृग या (जा) थाढो लेइ उसासु ।
सिधि (सिध्धि) समाधि रह्यौ चित ठाइ ।
कुंअर सुरसी (सौरसी) हाकैइ जाइ ॥२१२॥

सिधि सिध्धि)समाधि रह्यौजोग्यंद्र(जोगिन्द्र) ।
हाकोहाकि जागीउ(जागिओ)निरंद(नरिंद) ।
जोगी जागि कह्यौ एहु बयन ।
कहा गुनह करि आयौ अैन ॥२१३॥

जो दंतन त्रिन बयरी गहै।
तिजहि संत आयसु इम कहइ।
ए त्रिण चरइ बसइ उद्यान।
बिन अपराध बधइ अग्यान ॥२१४॥

सुनि जोगी जंपइ सुंरसी (सौरसी)।
मरण बुधि (बुध्धि) तेरइ जीव बसी।
आप हिरण जीवत गहि मोहि।
मग कै (कै मृग) बदले मारूं तोहि ॥२१५॥

कहइ भरथरी मनह बिचारि।
मृग न देहु (देहुँ) सिर मेरूं (मेरौ) सारि।
इउ (इउं) रे अपस (अबस) जीव भागौ जाइ।
तू इन मारनि पाछौ जाइ ॥२१६॥

वस्तुबंध–कहइ जोगी सुनहि रे मूढ़।
तोहि बुधि (बुध्धि) बिधना हरी।
करहि पापु बन जीव मारइ।
भलौ बुरु (बुरो) जानइ नहीं॥
जीउ अंदेस चित माहि बिचारुं (बिचारौ)
इउ मो पहि सुनि ग्यानु।
चउरासी लख जीवा जोनि (जोनी)
ते गिन आप समान ॥२१७॥

चउपई–ए पसु आपन प्रान समान।
एहै मूढ़ धर्म करि ग्यान ॥२१८॥

सुनि सुंरसी(सौरसी)न करिहै(करिही?)कहौ।
उतरि तुरी तइ सारंग गहौ ॥२१९॥

तब उठि भरथरी लीउ (लिओ) छुडाइ।
दिन्हौ ताहि सराप रिसाइ।
मेरौ बचन न मेटइ अवसि।
तौ धन परइ पराई बसि ॥२२०॥

निफल न होइ सिध (सिध्ध) को भाउ ।
सकति सचेत हुउ (हुओ) तिहां राउ ।
भूलौ भमइ [?] फिरइ उजार ।
चाहइ बाट छिताई नारि ॥२२१॥

कीन्हौ सेज भोग कौ साज ।
रह्यौ नाह बाहरि निसि आज ।
उझकि झरोखै लेहि उसासु ।
बिष चंदन चंदन कौ बासु ॥२२२॥

बन माहिं बस्यौ राउ सुंरसी (सौरसी) ।
तपति होइ तन देख [?] ससी ।
करै सखी सीले उपचारु ।
होइ सबे अगनि आकारु ॥२२३॥

दूजइ दिवसु दिस (दिवस ?) आथमइ ।
दुचितौ कुंअर सुंरसी (सौरसी) गया (गमइ?) ।
निसि आलिंगन कीधउ धाइ ।
गाढी भीड रही पछताइ ॥२२४॥

अति सनेह † ते[1] होइ बियोग[2] ।
अधिक भोग ते[1] बाढै रोग ।
अति हासी ते[1] होइ बिगारु ।
ज्यौं[3] कौरौ[4] पंडौ व्यौहारु[5] ॥२२५॥

---

† यहाँ तकका अंश श्री. में नहीं है, किंतु यह अंश उस में भी रहा होगा क्योंकि आगे ग्रंथ में इस अंश में आई समस्त बातों की ओर संकेत विभिन्न प्रसंगों में हुआ है, यथा तुलना० ६२-९२ की ४३४-४३६ से; ६३-१०५ तथा १२५-१४७ की २२७-२४७ तथा ३८५ से; ८६-८७ की २३४-२३६ तथा ५४१-५५० से; १०६-१२३ की ३८२-३८४ से; १४८-२०५ की ३०३-३१७ तथा ५५५-७६५ से, [और २०६-२२४ की श्री. ७१८ से (दे० परिशिष्ट)] ।

[२२५] १. क. में प्रथम दो 'ते' के स्थान पर 'थी' तथा तीसरे 'ते' के स्थान पर 'थे' है (प्रतिलिपि में राजस्थानी प्रभाव ?) । २. क. बिउंग (बिओग) । ३. क. जिं । ४. क. कुअरव । ५. क. बिवहारु ।

अति सरूप सीता कौ[1] हरण।
अधिक बिषै रावन कौ मरण।
अधिक दान बलि गयौ पतार।
अति कछुवै न भलौ संसार[2] ॥२२६॥

त्यौं[1] सौंरसी[2] अधिक सुख राउ।
सुनौ[3] चितेरै[4] कियौ[5] उपाउ।
देव[6] गिरि थान राम देव राउ।
समदि चितेरौ कियौ पसाउ[7] ॥२२७॥

बरस चारि चितेरौ रह्यौ।
पुणि बाहुरि दिली (दिल्ली) सामह्यौ[1]।
दई भेंट राम देव भुवाल।
भीमसेणि कपूर रसाल[2] ॥२२८॥

बहुत रतन निर्मोलिक[1] जरे।
लै हैवति कै[2] आगैं धरे।[3]

---

[२२६] १. क. को। २. क. में यह अर्द्धाली नहीं है। प्रसंग-त्रुटि से यह प्रकट है कि वह भूल से छूट गई है।

[२२७] १. क. त्यूं। २. क. में 'सौंरसी' के स्थान पर सर्वत्र 'सुंरसी' है, जो पढ़ने में 'सौरसी' होगा। ३. क. सुनहि। ४. क. में सर्वत्र 'चितेरै' के स्थान पर चितौरइ है; यह पुरानी राजस्थानी लिपि में 'रै' को 'रे' के रूप में लिखने के कारण हुआ ज्ञात होता है। ५. क. में प्रायः सर्वत्र 'कीउ' है जो पढ़ने में 'कीओ' होगा। ६. श्री. में 'देव' के स्थान पर सर्वत्र 'द्यौ' है। ७. क. में छंद का उत्तरार्द्ध नहीं है। प्रसंग-क्षति से उसका भूल से छूटना प्रकट है।

[२२८] १. क. सबै देखि देव गिरि की बात। गुदरी पातिसाहि सूं जात। किंतु आगे ही हैवती तथा सुल्तान ने चित्रकार से देवगिरि के संबंध में जो प्रश्न किए हैं (छंद २२९-३०) वे इस पाठ के स्वीकार करने पर निरर्थक हो जाते हैं। २. क. जे राजाइ दीध रसाल। भीमसेन कपूर बरास।

[२२९] १. क. मोती मानिक हीरा। २. क. हेम तवक करि। ३. क. में प्रथम तथा द्वितीय चरण परस्पर स्थानांतरित हैं, और उनके अनंतर अतिरिक्त है: हाथी गज सिंघली दरिआइ। तेजी तुरत दीए सुंरगाइ। सुरंग

कहिबे देवगिरि की कैफीति ।
रामदेव खूबै खैरीति ॥२२९॥

बूझै ढिल्ली कौ[1] नरणाहु ।
कैसै भौ कन्या कौ ब्याहु[2] ।
अनु[3] मुंह[4] देखि कहै सुलितान ।
तुझै कछू[5] जहमति का ब्यान[6] ॥२३०॥

मुंह दूबरौ गयौ कुम्हिलाइ ।
कीयौ (कियौ) दूबरौ देव गिरि राइ[1] ।
नाइ सीसु तिहि कीयौ (कियौ[2]) सलाम ।
अबहि नहीं कहिबे कौ[3] कामु[4] ॥२३१॥

सईं हथ काढि लियौ[1] अंगार ।
नयन नेह तनु जरि भौ[2] छारु ।
जिती सौज देव गिरि[3] की आहि ।
सौंपी[4] जामदार कौ[5] साहि ॥२३२॥

कहै अलावदीन यौं भूप ।
यह देव गिरि कर्पूर अनूप ।

चकोर सुवटा सार । जे दक्खणी बस्त बिवहार । करि सलाम ठाढ़ौ होइ रह्यौ । पतिसाह तहां पूछउ पूछओ । किंतु, 'हाथी' और 'गज' समानार्थी हैं, उपहार के लिए 'दरिआई हाथी भी एक अनसुनी वस्तु है, 'तुरंत' अनावश्यक है, और 'सार' निरर्थक है । इस लिए ये पंक्तियाँ प्रक्षिप्त लगती हैं । इनके द्वारा वस्तु-सूची में वृद्धि की गई है ।

[२३०] १. क. दीलीपति । २.क. कहिवे कइसइ भयौ बिवाह । ३. श्री. अकु । ४. क. मुहि । ५. क. तुम्ह कहा । ६. क. कछु यान । ७. क. में प्रथम और द्वितीय अर्द्धालियाँ परस्पर स्थानांतरित हैं ।

[२३१] १. क. में यह पूरी अर्द्धाली नहीं है । २. क. अनु ले उसास तिण करी । ३. क. कुं । ४. क. ठाउ ।

[२३२] १. क. मइ सइ हथि काढे । २. क. नीक्ष जरिगो । ३. क. जुतौ सुंज देव गिर । ४. क. सुंपी । ५. क. कुं ।

ताकी आगुर दस दस फरस।
देखि ताहि भूली सब परस[1] ॥२३३॥

देव गिरि तनी दासि दोइ आहि।
हसी त उपरि (ऊपरि) उचौ (ऊचौ) चाहि[1]।
हसत[2] परी सुरितानहु दीठि।
तुम्हि क्या हसी कहौ किन धीठ[3] ॥२३४॥

[1]दासी कहइ सुनहि[2] सुरितान।
इह भूमि मूरिख लोक अयानु ॥२३५॥

तुम रीझे एहु[1] देखि कपूर।
राणिन[2] के गहने कौ चूर।
जु तौ[3] कपूर राम देव खाइ।
ताकी महिमा बरणी न[4] जाइ[5] ॥२३६॥

चितै[1] चितेरै तन सुलितान।
तब तिहि साखि भरी तिहि थान[2]।
पातिसाहि जिय पऱ्यो[3] बिचारि[4]।
बहुरि सभा सब कियौ जुहार[5] ॥२३७॥

---

[२३३] १. इस पूरी चउपई के स्थान पर क. में है : कहइ अलावदीन सुलितानु। ईह कपूर अति फरस समानु।

[२३४] १. की. रही सु उपरा ऊपर। २. की. तहा। ३. श्री. संकि सकुचि तिन्ह दीनी पीठि।

[२३५] १. श्री. में यहाँ और है : तब बूझी सुलितान बुझाइ। तुम क्या हसी कहौ समुझाई। २. श्री. सुनौ।

[२३६] १. श्री. या। २. क. रानी। ३. क. जेतौ। ४. क. उपम कही न। ५. क. में यहाँ अतिरिक्त है : ए तो कहत साहि परिजऱ्यो। रोस बसि अति उत फिऱ्यौ। किन्तु रोष संबंधी यह विस्तार प्रसंग-सम्मत नहीं लगता है।

[२३७] १. क. चितहि। २. क. दे कान। ३. क. तिह रह्यो। ४. श्री. विचार। ५. क. बहुराइ सब सभा जुहारि। किंतु 'बहुराई' का कर्त्ता साहि होगा, और उसने जुहारि (=जुहार करके) सभा बुलाई, यह कथन ठीक नहीं प्रतीत होता है।

अपने[१] साथ चितेरौ लयौ।
तब उठि गैर महल मैं[२] गयौ।
जिसे छिताई के[३] ब्यौहार।
लागौ[४] दुष्ट करण[५] बिस्तार ॥२३८॥

यह र णीच कै चित्त[१] सुभाउ।
रचि रचि बुरी कहै त्यौं[२] चाउ।
जैसौ स्वातु सयानौ[३] खरौ।
तैसौ चारु जाणिजै बुरौ[४] ॥२३९॥

जतननि[१] भांडै धरै[२] उतारि।
बस्त खाइ तामैं कौ[३] झारि।
अपनौ काम बुधि करि[४] करै।
भांडौ तिहि ठा[५] धर्‌यौ ण[६] परै ॥२४०॥

कहै सु[१] लावन लाख लगाइ।
एक जीभ क्यौं[२] वर्णन जाइ।
जैसौ हो ता तनौ[३] चरित्रु।
कर ते काढि दिखायौ[४] चित्रु ॥२४१॥

देखत चित्र समर सर[१] लाग।
देषि चित्र बाढ्यौ अनुराग।
देखत चित्रहि मुरछा भई।
जानिकु[२] उठि आगैं तें गई ॥२४२॥

---

[२३८] १. क. आपन। २. क. माहि। ३. क. जिसौ छिताई कौ। ४. क. लागु (लागो)। ५. क. कहन।

[२३९] १. क. इह रे नीच को सरीर। २. क. करि। ३. क. समान। ४. क. छंद के तृतीय तथा चतुर्थ चरण परस्पर स्थानांतरित हैं।

[२४०] १. क. जंतनि। २. क. लेहि। ३. क. तिह माटिकी। ४. श्री. कै। ५. क. भांडु (भांडो) तिहां थी। ६. क. उघरौ।

[२४१] १. क. त। २. क. कुं (कौं)। ३. क. तनुं (तनौ)। ४. क. दिखाउ (दिखाओ)।

[२४२] १. श्री. हियै बान ज्यौं। २. क. मनह।

उर परि[1] चित्रु धर्यौ[2] सुलितान।
पाणी पियै न खाई खाण।
श्रवण स्वाद रस मरै कुरंग[3]।
नयन नेह नित्र जरै[4] पतंग[5] ॥२४३॥

हस्ती सुरत रंग रस खीन।
रसना रसहि[1] बंधावै मीन।
परिमल भंवरु प्राण परिहरै।
कहा सु नर निज नेही करै[2] ॥२४४॥

मरहिं एक इंद्री लग सांच।
नरु क्यौं जीवै[1] व्यापै पांच।
हैवति[2] हरम हिंदुनी[3] जाति।
तासौं[4] चित्तु बसै दिनु राति ॥२४५॥

तंषिन[1] (तषुषिन) चित्रु दिखायौ तासु।
देखि सरूप सु[2] लेइ उसासु।
हैवति हरम कहै सति भाउ।
जियत छिताई मोहि दिखाउ[3] ॥२४६॥

छल बल बुधि कपट करि[1] ताहि[2]।
अब लै आउ छिताई साहि[3]।

---

[२४३] १. श्री. ऊपर। २. क. धरइ। ३. श्री. पतंग। ४. श्री. परजरै। ५. श्री. अनंग।

[२४४] १. श्री. स्वाद। २. श्री. नरु बापुरौ कहा धौं करै।

[२४५] १. क. नर कुं जीव जु। २. श्री. हइमति। ३. श्री. हयंदुनी। ४. क. तासूँ।

[२४६] १. क. दौऊ। २. क. देखत चित्र। ३. क. में यह अर्द्धाली नहीं है। किंतु अगले वाक्यों का वक्ता कौन है, यह बताने के लिए वह आवश्यक है।

[२४७] १. क. छल बल कपट करि ले। २. क. साहिं। ३. क. जाई।

गयौ चितेरौ चित्रु दिखाइ।
बिरह बिथा तन सही न[४] जाइ ॥२४७॥

बोलि उम्मरणि सौं यह कह्यौ।
हौं चाहौं देव गिरि गढ़ ग्रह्यौ।
धावहु धींग साजि सब धारि।
लावहु जियति छिताई नारि[१] ॥२४८॥

देस देस पठए फुरमान।
आए साजि उम्मरा[१] खान।
दलु चतुरंग मिल्यौ अति आइ।
अगनित सेनु न बरन्यौ जाइ[२] ॥२४९॥

वस्तुबंध–चल्यो सुलितान करि रोस।
बोलि उमरा खांन सब।
हय हथ्थी दै सिलह बटाइ।
हल कलखु बुलाइ करि।
कहे घाट औघट संवारण।
बन बेहड़ औघट सबल (सकल ?)
सौंसर करहु खुदाइ।
चढ़ि (चढ़इ) सुलितान अलावदीं
छतिस निसान बजाइ[१] ॥२५०॥

---

४. क. में छंद के द्वितीय चरण के 'साहि' से लेकर चतुर्थ चरण के 'सही न' तक की शब्दावली नहीं है। तुक-वैषम्य से भूल प्रकट है।

[२४८] क. में यह छंद नहीं है। अलाउद्दीन ने आगे किसलिए फरमान भेजा है, यह बतानेके लिए प्रसंग में यह छंद आवश्यक है।

[२४९] क. आए सबे ऊबरे। २. क.में यह अर्द्धाली नहीं है, किंतु सेना के इकट्ठी होनेका उल्लेख प्रसंग में आवश्यक लगता है, इसलिए यह अंश भी।

[२५०–२५१] १. क. में ये दोनों छंद नहीं हैं। सेना के प्रयाण की सूचना अन्यत्र नहीं आई है। इसलिए ये दोनों छंद प्रसंग में आवश्यक लगते

छंद—बजि (बजै) निसान हुय पयानु
सजे उमरा खान।
बहु सेन पलान्यौ न जाइ बखान्यौ
सबदु न सुनिजै कान[१] ॥२५१॥

खिलची सु[१] खुरेसी राखस भेसी
लोदी अरु लंगाह।
जुरि जुलवानी जाति खुमानी[२]
सूरणि सेन अथाह ॥२५२॥

बलक वोरी[१] बब्बर गोरी[२]
औ रन रंगी[३] तोग।
राखस नामी स्वामि न (ज ?)[४] कामी
रण रुपि जूझहिं लोग[५] ॥२५३॥

किरराणी नौहानी सिरजानी
कंकर तारण दार।
मेच्छ खिलसी (?)[१] सूर सूरिवां
लाहौरी दल भार[२] ॥२५४॥

है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'जान' (२४६.२) तथा 'कान' (२५१.४) के अन्त-साम्यके कारण भूल से बीच का अंश क. में छूट गया।

[२५२] १. क. ज। २. क. जुर जलवानी ईसपखानी।

[२५३] १. श्री. बलोची, किंतु 'बलोच' आगे २५५ में है। २. श्री. गोची। ३. क. अर तरंगंडी। ४. तु० छंद ६४,६६,६८। ५. क. में यह चरण नहीं है; भूल प्रकट है।

[२५४] १. श्री. 'खिलची', किंतु यह शब्द छंद २५२ में आ चुका है। २. क. में इस छंदका 'नौहानी' शब्द मात्र है। इसलिए इस छंद का उसके किसी पूर्वज में रहा होना प्रकट है। २. श्री. में इसके बाद निम्नलिखित छंद और है—

कंकर बंकर फौज भयंकर मादी जाति पठान
सुंदर खानी जुरि सौदानी मुरछेरी जैदीर ॥

कवोम सबानी जाति कुताणी
खरे[1] खुरमुली बलोच ।
न्याजी पाजी फौजैं साजी
महा निरदई[2] पोच ॥२५५॥

चउपई–महा मलेच्छ निरदई पोच[1] ।
चले ति बब्बर बली बलोच ॥२५६॥

अलू खांन[1] ढिल्ली गढ रह्यौ ।
अलावदीन आपुनु सामह्यौ ॥२५७॥

मुंह राते मोटे गरदान ।
मुंडले[1] मूंड कखाए कान ।
डाढ़ी मूछनि राते[2] बार[3] ।
मुगल जाति दल साठि हजार ॥२५८॥

पंच पंच[1] मन की हाथनि गुरज ।
ढोवा ढारि ढहावैं[2] बुरज ।
पातिसाहि की जिती[3] पलानि ।
बढ़ै कथा जौ कहौं[4] बखानि ॥२५९॥

किंतु इसका 'ककर' पूर्ववर्ती पंक्तियों में आ चुका है, और 'छंद' तुक-साम्य रहित है, जब कि अन्य समस्त 'छंद' तुक साम्य युक्त हैं, इसलिए इस छंदकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। नामों की सूची में इस प्रकार वृद्धि प्रायः प्रक्षेप द्वारा होती रही है। यहाँ भी प्रक्षेप द्वारा नाम सूची में वृद्धि की गई प्रतीत होती है।

[२५५] १ श्री. खिरी। २ श्री. महामीर दर; किंतु अगले छंद की प्रारंभिक शब्दावली से क. पाठ का ही समर्थन होता है।

[२५६] १ क. में यह चरण नहीं है; भूल प्रकट है।

[२५७] १. श्री. उलू षान।

[२५८] १. श्री. बडडे। २. श्री. लांबे। ३. क. बाल।

[२५९] १. श्री. पांच पांच। २. क. गिरावइ। ३. क. जती। ४. क. कहुं।

दिन दस कोस चलत[1] ठकुरई[2] ।
छठै मास देव गिरि गढ़[3] गई ।
बसहिं[4] नगर कूकरा उडान ।
खोदि खेह कीनै सुलितान ॥२६०॥

सुलितानी बंदुनि की खेलि ।
फौजैं गईं देस मैं[1] फैलि ।
मारहिं[2] तुरक भीति सौं भीति ।
ढाहि देहुरे[3] करैं मसीति ॥२६१॥

फैल्यौ कटकु देस मैं[1] जाइ ।
तब सुधि लही रामदेव राइ ।
बुलवायौ[2] पीपा परिगही ।
तासौं[3] बात रामदेव कही ॥२६२॥

कौण[1] बिदारै हमारो देस ।
असो मांडिया (मांडियौ ?) कौण[1] नरेस ।[2]
तब देखन पठए दौरहा ।
चहूंघा[3] धुवां देस मैं[4] कहा ॥२६३॥

गए तब (जब ?) सुध्धि[1] बावसू लैन ।
तब देषी[2] तुरकनि की सैन ।
चितवहिं चित धरि[3] दिष्टि[4] पसारि ।
मणौ सेत सर[5] छांडी[6] पारि ॥२६४॥

---

[२६०] १. श्री. दरकूच चढ़ी । २. क. कटकई । ३. क. में 'गढ़' छूटा हुआ है । ४. क. बसत ।

[२६१] १. क. माहिं । २. क. मारइ । ३. क. ढाहै देहरे ।

[२६२] १. क. माहिं । २. क. तब बोल्यौ । ३. क. तासूं ।

[२६३] १. क. कुंण (कौण) । २. श्री. इसौ भिडैया निपट नरेस । रहै न सुचित लाग्यौ जा देस । किंतु यह पाठ प्रसंग में निरर्थक प्रतीत होता है । ३. क. देखइ । ४. क. माहिं ।

[२६४] १. श्री. दौरहा । २. क. देषे । ३. क. धर । ४. क. दिष्ट । ५. क. मनह सेत सरि । ६ क. छंडी ।

कहै राइ सौं सब ब्यौहार ।
कटकहि नाहीं वारंपार[१] ।
जब देवगिरि देखी सुलितान ।
तबहि बजाए गहिरे णिसान ॥२६५॥

चौकी[१] बांधि चल्यौ[२] चढ़ि साहि[३] ।
लागे लागि बाजने[४] घाइ ।
पुर पुर बंधे इक इक धाप[५] ।
तरकस काढ़ि चढ़ाए चाप ॥२६६॥

एकनि करि[१] काढ़ी तरवारि ।
मूंडनि टोपा धरे संवारि ।
एकनि गही सैहथी हथि (हाथि)[२] ।
पदरकि[३] चले बीस दस साथि[४] ॥२६७॥

जे चटकला[१] चोट आगरे ।
तिन[२] सिर टाटर[३] सौंसर धरे[४] ।
देखि फौज हिंदू[५] असवार ।
धंसे पेलि पौलि के[६] किवार ॥२६८॥

जैतौ[१] जाजो गंगो[२] गोग ।
सांवत सांगो भाषर[३] [भोज] ।

---

[२६५] १. क. कटक नहीं कांइ आर पार (प्रति में राजस्थानी प्रभाव) ।

[२६६] १. क. चाके । २. श्री. बंध चले । ३. क. चाइ । ४. श्री. बजाई । ५. क. पुर धप धपे धपीए धाप । किंतु यह पाठ निरर्थक प्रतीत होता है ।

[२६७] १. श्री. कर । २. श्री. हाथ । ३. क. पदरक । ४. श्री. साथ ।

[२६८] १. श्री. चुटचला । २. क. तिहां । ३. श्री. टोपा । ४. क. करे । ५. श्री. ह्यंदू । ६. क. धंसे फौज के ठेलि ।

रूंदा रूपा रिणमल रैंण।
धंसे देखि तुरकनि की सैन ॥२६९॥

भोजा भाना बैरीसाल।
परैं रौरि परिगाहन माल।
कीका करमा चाहर चंद।
देल्हा सौंझा दल कौ दंद ॥२७०॥

खरहथ खरगा घाटम घाघ।
भाला भगर गाडरा बाघ।
दामा अरु देवरा जुभारु।
पामा पंच भैया परमारु ॥२७१॥

सोमा जी सोनगरा धंस्यौ।
पहिरि कवचु सिर टोपा कस्यौ।
चढ़ियौ पामा जी चौहान।
गाढे राइ तनौ गुर ग्यांन ॥२७२॥

बाघा जी सु महा बरियाम।
जमधर जोरि जुरै संग्राम।
भामा जी देवरा जुभार।
धीरा धंस्यौ कटक खैकार ॥२७३॥

ए सब सुहर साथ सौंरसी।
ह्यंदू (हिंदू) फौज हांक दै धंसी।
लए नराजी ओडन हाथ।
पाइक लाख सौंरसी साथ ॥२७४॥

बरणि कहै को तिनकी जाति।
बाजे बजे दखिखनी भांति।

---

[२६६] १. श्री. जैता। २. क. जागो। ३. यहाँ से क. में एक पूरा पत्रा निकल गया है जिसके कारण उसमें तीस या इकतीस छंद नहीं हैं।

धाए तुरक धसत ठकुरई।
खिभिरी खेत एक ह्वै गई ॥२७५॥

लागी हौन दुहूं दल मार।
भादौं घन ज्यौं बरसै सार।
हिंदू[1] रुपे न टारे टरैं।
पाइक पैठि धुरकटी करैं ॥२७६॥

फौजैं भई मुहांमुंह भीर।
परहिं लाख लाखौरी तीर।
रहहिं न ति (तै) अंगनि मैं हटकि।
निकसहिं सर सनाह मैं सटकि ॥२७७॥

पैदासक असवारणि छोडि।
रुपे मिटै (मिटे) नहीं ओडन ओडि।
पैदाटनक टेकि ठकुरई।
गज घटान ते टारी टरई ॥२७८॥

सांगा काटि सांगि लै गयौ।
खांन उम्मरणि कौ जमु भयौ।
जहां उठ्यौ सौंरसी पचारि।
हनै बीर हांक दै संभारि ॥२७९॥

बाघा बाघु रह्यौ रण रोहि।
पीपा पैठ्यौ पर दलु छोहि।
खरहथु खरगा खांडै लरै (लऱ्यौ ?)।
भोजा भिरत साहि खरभऱ्यौ ॥२८०॥

घाघा सौं भोगी घमसान।
जूझ्यौ तहां मुहब्बति खांन।
पीलवान पेलैं मैमंत।
ठाठा हौहि महा चौदंत ॥२८१॥

---

[२७६] १. श्री. में सर्वत्र के समान यहाँ भी 'ह्यंदू' है।

सहि न सकै हिंदू[1] की भीर।
तब मुंह मोरि भरहरे मीर।
चल्यौ छत्रु डगमगि चौडोल।
तब उडान सी फिर्‍यो मंगोल ॥२८२॥

गही कोपि कर कठिन कमान।
लागौ बरसन पंथ समान।
इक इक मूठि लोह मन साठि।
तब फाटी पैद्दल की गांठि ॥२८३॥

करी ठेल साहि कै उज्जीर।
तब भ्वैं दई पयादे भीर।
चली देखि हिंदुन[1] की अनी।
तब पैठे पाइक दख्खिनी ॥२८४॥

लै गए मुगलनि अनी उसारि।
जूझे तहां पयादे चारि।
फिरि देखैं हिंदू[1] असवार।
कोपि काढ़ि पैठे करिवार (करवारि) ॥२८५॥

तुरकनि सेन तिसी खरभरी।
मनहुं लेजु (बीजु ?) गिरवर ते परी।
फिरि पीछे न चाहई कौन।
मनौ पनो हर (पयोहर ?) तार्‍यौ (टार्‍यौ ?) पौन ॥२८६॥

पर्‍यौ खेत तहं लाखौं लोग।
सुत सम भौ सुलितानहि सोग।
जूझ्यौ जैन दीन अज्जून।
गुरज घाइ सिरु ह्वै गौ चून ॥२८७॥

---

[२८२] १. श्री. में सर्वत्र के समान यहाँ भी 'ह्यंदू' है।
[२८४] १. श्री. में सर्वत्र के समान यहाँ भी 'ह्यंदुन' है।
[२८५] १. श्री. में सर्वत्र के समान यहाँ भी 'ह्यंदू' है।

एक नाम बारह बाजीद।
भए कनौजी पीर सहीद।
जहां लर्‍यौ सोनगरा गोग।
तहां पर्‍यौ मोल्हनि कै लोग ॥२८८॥

हतौ रामदेव कौ खवास।
सीसौदिया नाम स्यौदास (सिवदास)।
उझकन (उझकत) कोट हवाई हयौ।
सु द्रिढ़ प्रहार हंसु उडि गयौ ॥२८९॥

चालु भयौ चालु चालु (?) उबरै।
फिरि जूझै जि लाज मन धरै।
करानति आवहिं नाव बराउ।
जिनकी नहीं इत्तनी आउ ॥२९०॥

त्यौं बहुरी तुरकनि की अनी।
ज्यौं कसुंभी पाहरैं बानन्नी।
तब बहुरे घाइल असवार।
जनु गेरू खेलैं फगुहार[1] ॥२९१॥

दोहरा—क्या क्या हुवा क्या होइगा मीरहु कैं परसाद।
अन गंजे भी गंजियै जौलौं कंठहि साद ॥२९२॥

चउपई-जूझे सुहर परे बिकरार।
मानहुं छाके परे गंवार।
ठाठा घाइल तोरहि धाइ।
इह ईकेनै किये खुदाइ ॥२९३॥

कत सेवग कीनै करतार।
जूझे ढिल्ली कैं दरबार।

---

[२९१] १. श्री में. यह अर्द्धाली आगे भी आई हुई है (दे० छंद २९८), केवल वहाँ पर 'घाइल' के स्थान पर शब्द 'पाइक' है।

घर छुडाइ धरणी में लुटाइ।
एकति उदर अंत अखुटाइ ॥२९४॥

लूटन हार जि हने अनाथ।
बिडरत मुंह मैं मेलैं हाथ।
ओछे घाइनि भए सरीर।
एक सैन दै मांगैं नीर ॥२९५॥

लगी जिनहिं तरपी तलवारि।
गई कुम्हैंडे लौं निरवारि।
गुरज घाइ जे मुगलनि हए।
तिन सिर फूटि फूट लौं गए ॥२९६॥

परी जि लोथिनि ऊपर लोथि।
भिरैं मल्ल जनु बाथा पोथि।
हए जे हियै सांमुहै सेल।
परे धरणि लोटहिं बगमेल ॥२९७॥

[1]परे जूझि हाथी सै चारि।
मार्यौ साइर तनी करारि ॥२९८॥

ढाल रु गोजा रण मैं रहे।
रुहिर णदी जनु तरवर बहे।
टोपा सौं सिर जीभि* (जीव) समान[1]।
टूटि सनाह भए सौ थान[2] ॥२९९॥

---

[२९८] १. श्री. में इसके पूर्व छंद २९१ की दूसरी अर्द्धाली पुनः आई है।

* क. में २६६. २ के 'भोज' से लेकर २६६. ३ के 'जीभि' तक का अंश प्रति का पूरा एक पत्रा निकल जाने के कारण नहीं है। उसके एक पत्रे में ३०-३१ छंद आते हैं और इन छंदों में रामदेव तथा सुल्तान के पक्षों का बलाबल समान निरूपित किया गया है, जो आगे आए हुए रामदेव-सौरसी संवाद (३[illegible]-३०७) तथा सुल्तान-राघव संवाद (३१८-३२२) से समर्थित है, [illegible]ए वह माना जा सकता है कि श्री. के ये

बिन सिर मांझ[१] महावत रहे[२]।
तरवर लहरि पात बिनु बहे[३]।
इण[४] बिधि जूझ महानौ[५] भई[६]।
बिचरि अनी[७] तुरकनि की गई ॥३००॥

दए[१] कोट तर तंबू तानि।
चहुंवा[२] तुरक चंपाए[३] आनि[४] ॥३०१॥

वस्तुबंध–कटक मेल्यो घेरि[१] चहुं[२] पासि[३]।
मनो राहु ससिहर गिल्यो।
महा[४] जूझ दिन मान मच्यौ[५]।
निसि बासरु ढोवा करै सोणित[६] बहै प्रवाह।
छठौ मासु छेकैं भयौ गांउ न आवै थाह[७] ॥३०२॥

चउपई–छेक्यौ गांउ न आवै[१] थाह[२]।
कीनौ मतौ राम नरणाह।
तबहि सौंरसी लियौ बुलाइ[३]।
तासौं बात कही समुझाइ[४] ॥३०३॥

छंद क. में भी प्रायः सभी रहे होंगे।

[२९९] १. श्री. मसान। २. क. बूड़े बहुत ऊबरे षांन।

[३००] १. क. मन सर माहिं। २. क. बह्यौ। ३. क. तरवर पौन लहर जु लह्यौ। ४. श्री. इह। ५. क. महा झूझ नइ। ६. क. बही। ७. क. फौज।

[३०१] १. क. दीए। २. क. चिहुंघा। ३. क. अत्रासौ। ४. श्री. में यहाँ और है : ज्यौं ज्यौं गढ़ लगतौ दलु होइ। परजा मन डरपै सत्र कोइ। ये चरण प्रसंग में व्यवधान उपस्थित करते हैं, और प्रक्षिप्त लगते हैं।

[३०२] १. क. कटक। २. श्री. चौ। ३. श्री. पास। ४. क. होइ। ५. क. माचइ। ६. श्री. श्रवनन। ७. श्री. आह।

[३०३] १. क. छेके गाम न आवइ। २. श्री. आह। ३. क. हकारि। ४. क. कही बात तिहां सरस बइसारि।

राणे मन महं[1] देखि बिचारि ।
लै धंसि साथ[2] छिताई नारि ।
तूं जो खेम कुसल घर जाहि ।
यह अलोकु सबु हमकौ आहि[3] ॥३०४॥

तब सौंरसी नाइ सिर कह्यौ ।
हुं (हों) इण कारणि ईहां[1] रह्यौ ।
हम रजपूत मरैं रज काजि[2] ।
भागैं गोत बंस कौं लाज ॥३०५॥

सामि संकडइ छोडण हार[1] ।
महा नरग[2] ते परैं गंवार[3] ।
दसमैं दांइ जि[4] छोडै मीच ।
तातैं[5] औरु ण दूजौ नीच ॥३०६॥

यह गढु गाढो कै निग्रह्यौ[1] ।
तूं धंसि करै हमारौ कह्यौ[2] ।
ढोलसमुद को[3] दलु पुण ल्याव[4] ।
देवगिरि दुर्ग छिडावहि[5] आवि ॥३०७॥

---

[३०४] १. क. माहि । २. क. तूं धसि जाइ । ३. क. में यह अर्द्धाली नहीं है । किंतु किस अभिप्राय से रामदेव ने पूर्ववर्ती कथन किया, यह बताने के लिए यह अनिवार्य है ।

[३०५] १. श्री. हौं दिन याही कारण । २. श्री. काज ।

[३०६] १. श्री. स्वामि संकरैं छंडनहार । २. श्री. नर्क । ३. क. गति बूडण हार । ४. क. दस दइ जे । ५. क. तायइ ।

[३०७] १. क. यो गढि गाढौ करि बिग्रहौ । २. श्री. हम जी घरैं सु तूं करि रह्यौ । ३. श्री. गढ । ४. श्री. पचल पल नाइ । ५. क. छूडावउ । ६. श्री. आइ ।

बीरा[1] दियौ राम नर ईस।
चल्यौ सौंरखी नायौ[2] सीस।
बर मैं[3] गयौ छिताई पासि[4]।
जहां हती सतखनै[5] अवासि[6] ॥३०८॥

कह्यौ[1] छिताई सौं यह[2] वैन।
ल्याव (ल्यावुं)[3] ढोलसमुद कौ सैन।
तू चिंता न[4] करहि बर णारि।
देखि आपनै हियइ बिचारि ॥३०९॥

इतनौ जबहि[1] छिताई सुन्यौ।
नैन सजल करि[2] माथौ धुन्यौ।
आंसू नयन[3] दिए[4] ढरकाइ।
पागा[5] सौंरखी पोंछतु जाइ ॥३१०॥

कै मो आपुन साथ भगाउ[1]।
कै बिसु कोरौ[2] बांटि खवाउ।
कै लै भागि बेगि मो आजु।
नातरु सबहु बिगरिहै[3] काजु ॥३११॥

---

[३०८] १. क. बिडी। २. क. नाइ। ३. क. महि। ४. श्री. पास। ५. क. सखी साहत जिहां गई। ६. श्री. अवास।

[३०९] १. क. कहै। २. क. आ। ३. श्री. ल्याऊं। ४. क. तु चिंत जिन।

[३१०] १. क. ऐसौ बचन। २. श्री. है। ३. क. अंसु नैन। ४. श्री. दए। ५. क. पगाई।

[३११] १. क. लेइ भजाउ। २. क. करवो। ३. क. नहि तो बहुत बिगरै को।

परवस[१] परणाहार सुंदरी।
तिहि तौ[२] बुध्धि बिधाता हरी।
मानै कह्यौ[३] न बरज्यौ रहइ[४]।
बाहुरि बचनु छिताई कहइ[५] ॥३१२॥

दे कछु चिन्हु[१] आपणो नाह।
जाते जीउ[२] रहै घट मांह।
कंठ माल राणे[३] की ग्रीव।
दीनी मनहुं[४] प्रीति की नीव ॥३१३॥

बागे सौं[१] जमधर दखिवणी[२]।
इतनी सौंज दई आपनी।
जो कछु[३] गहनौ पहिरै णारि।
चलत सौंरसी दयौ[४] उतारि ॥३१४॥

पीय कौ बागौ पहिरै अंगि।
जमधर[१] णिसि लै सोवै[२] संग।
कंठमाल जपमाला[३] करी।
पीउ पीउ जपति रहै सुंदरी ॥३१५॥

बाला[१] अन्न पानु परहर्यौ।
कुस सांथरौ छिताई कर्यौ।
सचल चीर[२] बिनु तेल अन्हाइ[३]।
दिन कौ[४] सिव की पूजा जाइ[५] ॥३१६॥

---

[३१२] १. क. परि बस। २. क. ठा। ३. क. मान्यो कहइ। ४. श्री. रह्यौ। ५. श्री. कह्यौ।

[३१३] १. श्री. च्यन्हु। २. क. जीउं जीव देखि। ३. क. रानी। ४. क. जानि।

[३१४] १. क. बागा सु। २. श्री. दख्यणी। ३. क. कुछु। ४. क. लिओ।

[३१५] १. क. जिमधर। २. क. सोइ। ३. क. जपमाली।

[३१६] १. क. रानी। २. क. सीस। ३. क़. सीलइ जल न्हाइ। ४. क. दिव घसि।

इहि बिधि रहै छिताई नारि।
धंस्यौ[1] सौंरसी मनह बिचारि[2]।
देवगिरि उतरि[3] सौंरसी गयौ।
पातिसाहि मन[4] धोखौ[5] भयौ ॥३१७॥

ढोवा करत होइ दिन हारि।
राघौ चेतनि लए[1] हंकारि।
बसिठारौ नवि[2] मानै राउ।
बेटी देइ[3] न छाड़ै[4] ठांउ ॥३१८॥

सेवा करै ए कुतबा (खुतबा) पढ़ै।
अहि निसि जूझ करण ही[1] चढ़ै।
धंसि सौंरसी दिसंतर गयौ।
यह मेरैं मन धोखौ भयौ[2] ॥३१९॥

किधौं[1] छिताई गढ़ मैं[2] रही।
किधौं[1] सौंरसी साथ सांमही।
रिणथंभौर देवै[3] लगु गयौ।
मेरो कामु न एकौ भयौ ॥३२०॥

यौं[1] बोलै ढिल्ली कौ[2] धनी।
मैं[3] चीतौर सुनी पदमिनी।
बांध्यौ रतनसैनि मैं जाइ।
लै गौ[4] बादिलु ताहि छिडाइ ॥३२१॥

---

[३१७] १. क. धरइ। २. क. मझारि। ३. क. छोडि। ४. क. जीउ। ५. क. धोखुं।

[३१८] १. क. लिए। २. श्री. नहीं। ३. क. देउ। ४. क. छोरइ।

[३१९] १. क. दिन दिन झूझ बराबरि। २. क. में यह अर्द्धाली नहीं है, किंतु छंद ३२० के प्रसंग के लिए यह अनिवार्य है।

[३२०] १. क. किधुं। २. क. माहि। ३. क. देवल।

[३२१] १. क. इम। २. क. कुं। ३. क. मइ। ४. क. ले गयौ। ५. क. छुड़ाइ।

जौ अब के न छिताई लैउं[१]।
तौ निज[२] सीसु देवगिरिहि दैउं[३]।
इतनी बात कहै यौं साहि।
क्या कीजै गढ़ देवगिरि ढाहि[४] ॥३२२॥

गई छिताई बिनस्यौ काजु (राजु ?)।
हमहि कहा देव गिरि सौं काजु।[१]
चेतनि चेति[२] मंत्रु[३] करि बुध्धि।
गढ़ ऊपर की ल्यावुं (ल्यावौं)[४] सुध्धि[५] ॥३२३॥

किधौं छिताई गढ़ मैं आइ (आहि)।
कै सौंरसी लै गयौ ताहि[१]।
जौ तौ[२] ढोलसमुद्दह[३] गई।
तौं सै[४] दल साजौं ठकुरई[५] ॥३२४॥

बांधि समुद्दहि[१] उतरौं पाटु।
रामचंद्र ज्यौं कपि दल ठाटु[२]।
जतौ[३] छिताई या गढ मांहि।
तौ ढोवा लीजै गढ ढाहि[४] ॥३२५॥

---

[३२२] १. क. लेहु।

[३२३] १. क. हमहि नहीं देवगिर सूं काज। हमहि छिताई सूं बहु-राज। २. क. चेतन चितहि। ३. क. में यह शब्द नहीं है। ४. श्री. आनौ। ५. क. बुधि।

[३२४] १. क. में यह अर्द्धाली नहीं है, किंतु आगे आने वाले अंश के लिए यह प्रसंग में आवश्यक है। २. क. ते। ३. क. ढोलसमुद गढ। ४. क. सि। ५. क. साजुं कटकई।

[३२५] १. क. समुद मइ। २. क. जिउं रामइ रावन कौ घाट। ३. क. जौरि। ४. क. ढोवा करि गढ़ ढावौ ताहि।

बेगि मंत्र तुम्ह करौ इताल[1]।
नातरु[2] दौत[3] कढाऊं खाल।
भौ[4] चेतन पर[5] अधिक गुमान।
रोस भर्यौ[6] बोल्यौ[7] सुलितान ॥३२६॥

मैं क्या कीना देवगिरि[1] आइ।
मलिक मीर मारे झूझाइ[2]।
अनु[3] मो भई देस मैं[4] गारि।
ढूंढतु[5] फिर्यौ[6] पराई नारि ॥३२७॥

कहिहै हैवति तरक पचारि।
लाए भली दच्छिनी नारि[1]।
राघौ मोल्हनि[2] नइ[3] जैसमु[4]।
ए सबु[5] जानै गढ कौ मर्मु ॥३२८॥

अरु ए भेदु राइ कौ लहैं।
मो सौं[1] कूर ए कबहूं कहैं[2] ॥३२९॥

---

[३२६] १. श्री. वेगौ मंत्रु करौ दर हाल। २. क. नहिं तर। ३. क. दौति। ४. क. भयौ। ५. क. परि। ६. श्री. भरै। ७. क. बोलै।

[३२७] १. क. कीआ देस महि (तुलना० ३२७. ३)। २. श्री. मार्‍यं यं जुझाइ। ३. श्री. अरु। ४. क. माहि। ५. श्री. चाहत। ६. क. फिरइ।

[३२८] १. क. में यह अर्द्धाली नहीं है, किंतु यह प्रसंग-सम्मत लगती है। २. क. चेतनि। ३. श्री. अरु। ४. क. जै भ्रम। ५. क. सकि।

[३२९] १. क. मो सुं। २. क. तथा श्री. दोनों में इसके अनंतर है : जौ न छिताई अब कै लेउं। तौ निजु सीस द्यौ (देव—क०) गिरिहि दैउं। किंतु यह ३२२ का पूर्वार्द्ध है, और वहीं पर प्रसंग सम्मत है। यहाँ पर जो धमकी अलाउद्दीन राघव चेतन को दे रहा है, उसके प्रसंग में यह कथन ठीक नहीं है।

बेगि मंत्रु परगासौ[१] आइ
ना तरु[२] दौति[३] मराऊं ठांइ[४] ।
ऐसी बात सुलितान ज कही
राघौ चेतनि मन माहिं रही[५] ॥३३०॥

दोहरा—आसा बैरी[१] न कीजियै[२] ठाकुर न कीजै[३] मित्त ।
खन[४] तातौ खन[४] सीयरौ खन[४] बैरी खन[४] मित्त ॥३३१॥

चउपई—ठाकुर खन बैरी खन मित्त[१] ।
थिरु[२] ण रहै ठाकुर[३] कौ चित्त ।
आप सुहाती सब कछु करै[४] ।
पर दुख बेदन चित्त न धरै[५] ॥३३२॥

[१] सिंघु[२] सपु आपनौ न होइ ।
ठाकुर मिंत[३] कहौ जनि कोइ ॥[४]३३३॥

---

[३३०] १. श्री. बेगौ मंत्र प्रगासौ । २. क. नहिं तर । ३. श्री. दौत । ४. क. ताहि । ५. श्री. में यह अर्धाली नहीं है किंतु छंद ३३१—३३५ में कथित बात किसने सोची यह इस अंश के अभाव में ज्ञात नहीं होता है, इसलिए यह अंश प्रसंग में अनिवार्य है ।

[३३१] १. श्री. बड़ी । २. क. कीजीइ । ३. क. कीज । ४. क. खिन ।

[३३२] १. क. खिण खिग बयरी खिण खिग मीत । २. क. खिण । ३. श्री. तिरिया । ४. स. सब कोइ कहइ । ५. क. कोइ नहि अरै ।

[३३३] १. श्री. में इसके पूर्व और है :

ठग ठाकुर और स्यंत सुनार । ये सब ज्यों खंडे की धार ।

किंतु 'ठग' और 'सुनार' इस प्रसंग में अनावश्यक लगते हैं ।

२. श्री. स्यंघु । ३. श्री. स्यंत । ४. क. : ठाकुर मीत करइ जणि कोइ ।
अयसी बात कहत सब कोइ ।

जैसो खलटकटाई (करकंटाई ?)[१] पान।
त्यौं[२] ठाकुरु जानिजै (जानियै) नियान[३]।
पलटत ही[४] कर कंटो[५] डसै[६]।
यह मति गति ठाकुर चित बसै[७] ॥३३४॥

तूठौ करै दलिद्र की[१] हानि।
रूठौ[२] मारि बहावै पानि।
यह सोचत[३] उठि डेरै[४] गयौ।
भौ[५] दिन अस्तु सूरु अंथयौ[६] ॥३३५॥

दोहरा—चेतनि हियैं[१] विचारियौ कैसी करौं सुबुध्धि[२]।
क्यौं सुरखुरू सुलितान सौं क्यौं आनौं गढ़ सुध्धि[३] ॥३३६॥

क्यौं[१] गढ़ सुध्धि कहौं[२] सुलितान।
क्यौं मो बोलु होइ परवान[३]।
क्यौं[१] परतीति साहि जी धरै[४]।
क्यौं[१] मो सुजसु पहुमि बिस्तरै[५] ॥३३७॥

जब ही साहि बूझतौ[१] बात।
तब मो बुधि त्यौं फुरती गात[२]।
अब मो बुध्धि बिधाता हरी।
जबहि साहि कुमया मन[३] करी ॥३३८॥

---

[३३४] १. श्री. जैसें रतन कटाई। २. क. तिम। ३. क. जानीइ निदान। ४. क. पलटत पत्र। ५. श्री. करकंटकु। ६. क. गढ़इ। ७. क. असी मति सब ठाकुर सटइ।

[३३५] १. क. तूठै करै दलिद्रहि। २. क. रूठै। ३. क. सौचित। ४. श्री. डेरा। ५. क. भयौ। ६. क. आथयौ।

[३३६] १. क. हीइ। २. क. किउं आनुं गढ़ सुधि। ३. क. किं कहीइ आ सुधि।

[३३७] १. क. किं। २. श्री. लहै। ३. क. परिमान। ४. क. मो करइ। ५. क. किं मेरु जस अपजस टरइ।

[३३८] १. क. जबहि साहि हसि बूझत। २. क. तब हुं मेलत तैसी वातु। ३. क. जीउ।

भंखत[१] चेतनि लेइ[२] उसास।
अब मो गई जीवन[३] की आस।
अन (अनु ?)[४] मो भई देस मैं[५] लाज।
साहि मोहि मारै बे काज[६] ॥३३९॥

कत मो [हि] बुध्धि बिधाता दई।
कत पहिचानि साहि सौं भई।
कण बृति पेटु भरतौ[१] करि भीख।
कहा बिधाता दीनी[२] सीख ॥३४०॥

जपु जपियौ पद्मावती तनौ।
अरु (अनु ?) गुर गम्य[१] सुमिरि[२] आपनौ।
चेतनि निसि जागत भंखियौ[३]।
नैन नींद् भबकौ[४] लागियौ ॥३४१॥

पद्मावती हंस आरुही।
चेतनि सरिसु बात यह[१] कही।
जौ तैं चिंततु[२] कीनौ[३] मोहि।
सिध्धि दानु मैं[४] दीनौ[५] तोहि ॥३४२॥

पठवहु दूती[१] गढ़ह मंभारि।
ते सब सुध्धि कहैंगी[२] नारि।
यह[३] सोचत भुनसारौ[४] भयौ।
तौ लौं[५] साहि हंकारौ गयौ ॥३४३॥

---

[३३६] श्री. तंषिन। २. श्री. लयौ। ३. श्री. कटुंब। ४. श्री. अरु। ५. क. माहिं। ६. क. अकाज।

[३४०] १. क. कण वृत पेट भरत हुं। २. क. लाई।

[३४१] १. क. गुरु गुर्म। २. क. कीओ। ३. क. झंषत जागीओ। ४. क. टबको।

[३४२] १. क. इउ। २. क. चिंतवन। ३. क. कीनुं। ४. क. बर। ५. क. दीन्हुं।

[३४३] १. क. बसीठन। २. क. दोही आनि देहिकी। ३. क. इम। ४. क. म मनुसारो। ५. क. तब लगि।

राघौ[1] हंसत रावरहि गयौ।
पातिसाहि पहं[2] ठाढ़ौ भयौ।
बूझइ[3] साहि क्रोध सौं[4] बात।
बेगौ मंत्रु प्रगासहि तात[5] ॥३४४॥

कवि नराइनदास वाच*—

तब राघौ[1] चेतनि उच्चर्‌यौ[2]।
मंत्रु एक मेरैं जी फुर्‌यौ[3]।
लीजै दूता भली हंकारि।
तिन सौं कहिजै बात उसारि[4] ॥३४५॥

खूब खूब खुदि आलमु कहै।
भलौ मंत्रु तेरैं[1] जी[2] रहै।
जिन मुनि तपा किए बस[3] धूति।
चेतनि चितै ल्यावि दुइ[4] दूति ॥३४६॥

पातिसाहि कौ आइसु[1] भयौ।
चेतनि दुइ[2] दूती लै गयौ।
नाइनि जाति नांउ धनसिरी।
मनमौहनि मालिनि[3] देवसिरी[4] ॥३४७॥

---

[३४४] १. क. चेतन। २. क. माझं दाषवलि। ३. क. पूछइ। ४. क. सुं। ५. क. कछु न कही गढ की बात।

* क. में यह नहीं है।

[३४५] १. क. बाचा। २. क. उच्चरै। ३. क. फुरइ। ४. क. पठवो दूती गढइ मंझारि। तेही आणि देइगी नारि। किंतु दूतियाँ समाचार लाने के लिए भेजी जा रही थीं, छिताई को साथ लाने के लिए नहीं।

[३४६] १. श्री. तोरैं। २. क. जीव। ३. श्री. जे मनु तपु जु लैहि पर। ४. श्री. लाउ द्वै।

[३४७] १. क. आयुस। २. श्री. द्वै। ३. क. मालनि। ४. श्री. दूसरी।

बोलहिं[1] देस देस की भाष।
सती बिगोई[2] अगनित लाख।
तिरी चरित कै[3] खरी सुजान।
बूझीं बोलि आपु सुलितान ॥३४८॥

कहै अलावदीन समुझाइ।
छल बल छलहु छिताई जाइ।
देहौं कापर कनै पसाउ।
तुमहि निवाजि करौं उमराउ ॥[1]३४९॥

लाख तुरी पाछैं कौं[1] देउं।
अरु जु कहौ सु कह्यौ करेंउ[2]।
दिल मैं बस्यौ चित्र कौ रूप।
ताते मो हठु भयौ बहूतु[3] ॥३५०॥

अरु टूटौ राजा सौं नेहु।
यह मो भयौ बहुतु संदेहु[1]।
दू महं कछू न एकौ भयौ[2]।
तातैं मैं तुन सौं बीनयौ[3] ॥३५१॥

---

[३४८] १. क. बोलइ। २. क. बिउगी (बिओगी)। ३. क. ते।

[३४९] १. क. में इस छंद के स्थान पर केवल निम्नलिखित है—

तुम्हहूँथी बोल हमरौ रहइ। बारंबार साहि इउं कहइ।

(तुलना छंद ३५७)

किन्तु आगे आए हुए 'लाख तुरी पाछै कौं देउं' (छंद ३५०.१) से स्वीकृत छंद की अनिवार्यता प्रकट है।

[३५०] १. क. कइ। २. क. में यहाँ और है—अर तुम्ह दीउ संभरि को देस। छंद ३५० के कथन के अनंतर तुरंत ही साँभर देश दे डालना ठीक नहीं लगता है। सांभर देश देने के लिए उपयुक्त स्थान छंद ३५७ ही लगता है।

[३५१] १. क. में यह अर्धाली नहीं है, किन्तु बाद ही में आए हुए 'दू मह कहं कछू न एकौ भयौ' से इसकी अनिवार्यता प्रकट है। २. क. मो अति होइ छिताई रही। ३. क. बीनई।

नाक पकरि तब नाइनि कहै।
मो पहं सतु न सती कौ रहै ॥३५२॥

केतिक[1] बात छिताई तनी।
हम आनैं अच्छरि जच्छिनी[2]।
मृत्त[3] लोक की केतिक बात।
आवहिं लखैं छिताई साथ[4] ॥[5]३५३॥

मैगल ते[1] मैगलु बस होइ।
मृग ते मृगहि[2] गहै सब कोइ।
त्रिय कौं भेदु त्रिया पै लहै[3]।
मन मैली साहिब सौं कहै[4] ॥३५४॥

मालिनि पैज करै समुहाइ।
मोपै सतु न (ज?) सती कौ जाइ।
पाहन की पुतरी मढ होइ।
बातनि हूका द्याउं सोइ[1] ॥३५५॥

नाइनि करि भगौहैं बिस्तार।
कीनी मसवासी की सार।
मालिनि करि तन औरै बात।
दोऊ दूती एक संघात[1] ॥३५६॥

---

[३५३] १. क. किती एक। २. क. हुं आनुं किन्नर जख्यनी। ३. क. मृत्य। ३. क. अबले आवं (आवौ) छिताई सात। ५. श्री. में यह छंद ३६१ के बाद आता है किन्तु यहाँ भी है: हौं कन्या आनौं जरव्यनी। छिनक बात पै चाहौं सुनी।

[३५४] १. क. थी। २. क. मृगथीमृग। ३. क. तीअ थी मेद तीआ को लहइ। ४. क. ऐसे चतुर सयाने कहइ।

[३५५-५७] क. में ये तीनो छंद नहीं हैं। इनके निकल जाने से मालिन की ओर से भी आश्वासन का मिलना (छंद ३५४), नाइन और

कहै साहि दूतिनि सौं बात।
तुम गढ़ जाइ चढ़ौ अधराति।

कवि रतन रंग वाच*—

तुम ते बोल हमारौ रहै।
दूती सरिसु साहि यौं कहै[1] ॥३५७॥

बोलै करि कै मया नरेस[1]।
तुमहि दियौ संभरि कौ देस।
दूती[2] कहैं सुनौ हो साहि[3]।
हम गढ़ ऊपर कैसे जाहिं[4] ॥३५८॥

जौं गढ़ चढ़न लहैं इहि भेस।
चुकवहिं सबहिनि सबै नरेस।
कोट्ठु बिषमु गढु दुर्ग नवेसु।
कौन जतन करि करै प्रवेस[1] ॥३५९॥

लोह जरित तहं बज्र किवार[1]।
लीधइ[2] बैठे बिषम जुझार[3] ॥३६०॥

मालिन का कपट वेष धारण करना (छंद ३५६), और छंद ३५८ में आए हुए 'तुमहि दियौ संभरि कौं देस' की भूमिका (छंद ३५७) का अभाव हो जाता है, जो प्रसंग में आवश्यक है।

* क. में यह नहीं है।

[३५८] १. क. में यह चरण नहीं है, भूल प्रकट है। २. क. दासी। ३. क. सुलितान। ४. क. जाउ।

[३५९] १. क. में यह छंद नहीं है। छंद की स्थिति स्पष्ट नहीं है।

[३६०] १. क. कोट विषम गढ़ विषम झूझार। २. श्री. लवेनि। ३. श्री. में यहाँ और है—

कोट कांगुरे ढारे गची। बहु बिधि भांति बिधाता रची।

बाद के चरणों का संबंध इसके पूर्व के चरणों से है, इससे नहीं। ये चरण प्रसंग में व्यवधान उपस्थित करते हैं।

भार ढेंकुरी जंत्र निबान ।
गढ पर पंछि न पावै जान ।[१]
जौ गढ ऊपर पावहिं जान ।
तौ सब बौलु करैं परवान[२] ॥३६१॥

पातिसाहि जिइ बिसमौ भयौ ।
चेतन कूरु मंत्र मो दयौ ।
मास सात गढु घेरै भयौ ।
इकु इकु दिवसु बरिस बरि गयौ[१] ॥३६२॥

अब दूती क्यौं गढ़ पर जाहिं ।
कहौ बुद्धि यौं बोलै साहि ।[१]
तब चेतनि उठि देइ असीस ।
सुनि ढिल्लीपति करहि न रीस[२] ॥३६३॥

पठौ[१] बसीठ गढ़ह[२] मंझरि ।
ताकैं साथि[३] चढैं ए नारि ।
पकरि साहि रावौ की बांह ।
लै गयौ महल भीतरे मांहि[४] ॥३६४॥

---

[३६१] क. में इस अर्धाली के स्थान पर है—बहइ हवाई गोला गोली । अरहट यंत्र बहइ ढीकली । और अतिरिक्त है : तीर तुपक ने कठिन कमांण । २. श्री. में इसके अनंतर निम्नलिखित चरण और हैं—
दूती कहै सुनौ हां साहि । हम गढ़ ऊपर कैसे जाहिं । (तुलना ३५८-३-४)
तौ हम बोलु होइ परवान । (तुलना ३६०-४) पुनरावृत्ति प्रकट है ।

[३६२] क. में यह छंद नहीं है, किंतु प्रसंग में आवश्यक प्रतीत होता है ।

[३६३] १. क. में यह अर्धाउी नहीं है, किंतु पिछले स्वीकृत छंद के साथ यह अंश भी प्रसंग में आवश्यक प्रतीत होता है । २. क. में इस अर्धाली के स्थान पर है : चेतन कही साह सूं बात । उर न काहू कीनी ताति ।

[३६४] १. श्री. पठै । २. श्री. बसीठनि गढ़ । ३. श्री. साथ । ४. क. तब उठि पकरी चेतन बांह । लै गयौ भीतरी महल की छांह ।

जौ तूं[1] चेतनि चित्त सुभाउ।
देवगिरि दुर्ग मोहि दिखराउ।
चेतनि कहै सुनौ हो साहि।
तूं ढिलीपति साहिबु आहि[2] ॥३६५॥

तोहि गहत सबु बूडै राजु।
तोहि गहैं सबु होइ अकाजु।[1]
तेरै गहत कटकु होइ सोरु।
तेरे गहत कछु रहै नहीं ठौरु ॥३६६॥

तोहि पिछानै[1] राजा रामु।
तोहि गहैं सबु होइ अकामु[2]।
सुलितान वाच—कपट रूप तूं होइ बसीठ।
हौं जु पयादौ आगै धीठु[4] ॥३६७॥

तूं चलि जाइ (जाहि) राइ कै पास।
हौं देव गिरि देखौं चौपास।
चेतनि वाच—हठ बल सिंधु[2] गहन क्यौं जाइ।
हठ मैगलु क्यौं गहिजै धाइ ॥३६८॥

---

[३६५] १. क. तो। २. क. तब उठि चेतन देहि असीस। सुनहु ढीली पतहि नरेस। किन्तु यह छंद ३६३ का उत्तरार्द्ध है। आशीर्वाद देना वहीं पर ठीक लगता है, यहाँ तो बादशाह की बात का चेतन समर्थन भी नहीं कर रहा है।

[३६६] १. क. में यह अर्धाली नहीं है, इसके स्थान पर केवल है—अइसै मंत्र दीउ कुं बाइ। (तुलना छंद ३७२)। २. क. कुछु।

[३६७] १. क. तो पहिचानइ। २. क. तोहि गहत सब होइ बिकाम। ३. क. में यह अर्धाली तथा बाद के पाँच छंद नहीं हैं, किंतु यह तथा इसके बाद आई हुई छंद ३६८ की प्रथम अर्धाली छंद ३७६-७८ की भूमिका के रूप में प्रसंग में आवश्यक हैं।

[३६८–७२] १. क. में इन छन्दों के स्थानपर केवल है—

हठु तजि साहि बिप्र यौं कहै।
तोहि गहत कछु बंधु न रहै।
सुलितान वाच–मैं भी कह्या आपने पेट।
मेरा कह्या बना ही मेट[१] ॥३६९॥

मंत्रु जानि हौं बिनऊं तोहि।
देवगिरि दुर्ग दिषाऊ मोहि।
मो बुधि अैसी भई ब आहि (आइ)।
देवगिरि सब देखौं निकुताइ (निकुताहि)[१]॥३७०॥

चेतनि हुकमु न मेटहि मोहि।
अैसी यह न बूझियै तोहि।
चेतनि वाच–कुमति बुध्धि तुम कियौ उपाउ।
मोहि अलोक अलोकी नाउं[१] ॥३७१॥

तेरौ मरगु मोहि अति गारि।
अहो साहि जी देखि विचारि।
कूरौ मतौ साहि तैं कियौ।
मो पहिं मतौ जाइ क्यौं दियौ[१] ॥३७२॥

जौ बरजौं तौ[१] मारौ (मारै ?) मोहि।
करहि साहि जो[२] भावै तोहि।
चेतनि सरिसु साहि तब कह्यौ।
तूं करि बेग जु मो मन रह्यौ[३] ॥३७३॥

तबहि रोस साहि चित कीऊ। तू मेटइ मेरं फुरमान। (तुलना ३७४.४)
तुक वैषाम्य से प्रकट है कि क. में कुछ चरण छूट गए हैं। यह अर्घाली भी स्पष्ट है।

[३७३] १. क. जा बरजे ता। २. क. जीव। ३. क. में यह अर्घाली नहीं है, किंतु प्रसंग में यह अंश आवश्यक लगता है।

बार बार हौं[1] बीनवुं[2] तोहि।
देव गिरि दुर्ग दिखावउ मोहि।
हौं सिर साहिबु देखि बिचारि।
तूं मेटै मेरी मनुहारि[3] ॥३७४॥

औरु होइ तौ हनौं पराण।
तूं मैं दीनौं जीवनु जान।
तब राघौ जान्यौ जिय मांहि।
क्रोध रूप भयौ मोसौं साहि[1] ॥३७५॥

वेगि चलौ जनि लाउ (लाओ) बार।
चढियै जाइ दुपहरी बार।[1]
उठि खल्याइ पहिरी[2] पैजार।
औरु ण कोई जाणै सार ॥३७६॥

कारौ बागौ पहिरै अंग।
भयौ साहि कछु औरै रंग।
माथौ कारी सोहै खोल।
अरु कर सोहै लाल गिलोल[1] ॥३७७॥

---

[३७४] १. क. बहु। २. श्री. बिनऊँ। ३. क. में यह अर्धाली नहीं है, किंतु प्रसंग में यह आवश्यक है।

[३७५] १. क. में यह छन्द नहीं है। इस छन्द की स्थिति स्पष्ट नहीं है।

[३७६] १. क. में यह अर्धाली नहीं है, किंतु चलने का निश्चय चेतन या बादशाह के कथन के रूप में अपेक्षित था, इसलिए यह अंश प्रसंग में अनिवार्य है। २. क. पहिरे।

[३७७] १. क. में यह छंद नहीं है, किंतु आगे छंद ४१९–२१ में बादशाह ने गुलेल का जो उपयोग किया है उसकी भूमिका के रूप में यह उल्लेख अनिवार्य है।

फैंटा गोरा लीनै घनै ।
जानिकु साहि तरैया बनै ।[१]
चेतनि साजि सुखासनु लियौ[२] ।
आगैं साहि पयादौ कियौ[३] ॥३७८॥

लीधी[१] दूती संग लगाइ ।
देवगिरि दुर्ग चढ़े ते[२] जाइ ।
धनि सुबंसु राघौ तो तनौ ।
धनि सो जननि जिनै तू जिन्यौ[३] ॥३७९॥

धनि सु दनु (दानु ?) पूरब नै दियौ ।
जिहि आगै साहि पयादौ कियौ ।
सुनहु सभासध मन धरि भाइ ।
जैसे लागे हौन उपाइ[१] ॥३८०॥

चढ़ि ब साहि देवगिरि पर गयौ ।
चेतनि चतुर मंत्रु अर ठयौ ।
पठई दूती महल मंझारि ।
सोधौ जाइ छिताई नारि[१] ॥३८१॥

---

[३७८] १. क. में यह अर्धाली नहीं है, किंतु पिछले छंद के प्रसंग में यह अंश अनिवार्य लगता है । २. क. लयो । ३. क. भयो ।

[३७९] १. श्री. लीनी । २. क. तब । ३. क. में यह अर्धाली नहीं है, इसकी स्थिति स्पष्ट नहीं है ।

[३८०] १. क. में यह छंद भी नहीं है । इसकी स्थिति भी स्पष्ट नहीं है ।

[३८१] १. क. में इस छंद के स्थान पर केवल निम्नलिखित है :

पठई दूती कुवरि के पासि । चेतन पहते राइ अवासि ।

इसमें आया हुआ 'कुवरि के पासि' असंगत लगता है, क्योंकि अभी तक कुंवरि का कोई पता न था : राघव को यह भी ज्ञात न था कि छिताई गढ़ में है या नहीं ।

रायौ हांकि रावरहि गयौ।
आपुनु साहि नगर कौ भयौ।
देख्यौ राजा तनौ अवास।
देषे रंग सु परम बिलास[१] ॥३८२॥

देखे मंदिर अन अन खंभ।
जहां अखारौ णाटारंभ।
देखे कलस ति कंचन तनै।
देखे तोरण जे अति बनै[१] ॥३८३॥

सोवन पीपर साख अकास।
बरसहि मेह बारहौ मास।
फटिक सिला भौ अधिक बनाउ।
सभा साजि जहं बैठे राउ[१] ॥३८४॥

देख्यौ चित्रु चितेरे तनौ।
इंद्र भुवन जनु इंद्रहि बन्यौ।
ब्रह्मलोक जनु ब्रह्म निवास।
मानहुं ईस तनौ कइलास[१] ॥३८५॥

देख्यौ मानिक चौक अनूप।
भूख तजैं जिन देखत भूप।
देखे मतंगुरे मैमंत।
गज स्यंघली (सिंघली) जि सोभित दंत[१] ॥३८६॥

---

[३८२] क. में यह छंद नहीं है, किंतु छंद ३८९ में बादशाह से जो नगर-दर्शन कराया गया है, उसकी भूमिका के रूप में यह छंद प्रसंग में अनिवार्य है।

[३८३–८६] क. में ये छंद भी नहीं है। इन छंदों की स्थिति स्पष्ट नहीं है। किंतु असंभव नहीं कि ३८२ के साथ क. में ये छंद भी छूट गए हों।

देखे ताजी[१] तुरी तुखार।
जे महि फिरैं महूरत बार[२]।
देखे सुहर आपु चलि बीर।
जे रण गंजहिं साहस धीर[३] ॥३८७॥

[१]देखे हाट बजार णरेस।
देखे साहि गरीबी भेस[२]।[३]
फिरतु फिरतु[४] साहि गौ तहां।[५]
राम सरोवरु सागरु जहां ॥३८८॥

---

[३८७] १. श्री. तेजी। २. क. देखे घर मंदिर बाजार। किंतु बाजार देखना छंद ३८८ में आता है। ३. क. में यह अर्धाली नहीं है, इसकी स्थिति स्पष्ट नहीं है।

[३८८] १. श्री. में इसके पूर्व और है : देखे भर अरु तीर कमान। जिन पहं पंछि न पावै बान। (तुलना ३६०.२) इसके अतिरिक्त 'सुहर' का उल्लेख पूर्ववर्ती छंद में आ चुका है, इसलिए 'भर' के उल्लेख में पुनरुक्ति प्रकट है। २. क. देखे देवगिर गढ़मढ़ देस। ३. श्री. में इसके अनंतर निम्नलिखित और है : देखे सबै जु कुवा निवान। देखे सभा सरोवर थान। किंतु, 'सभा' का उल्लेख छंद ३८४ में आ चुका है, और 'सरोवर' का बाद की पंक्तियों में आता है। ४. क. देषत देष। ५. क. में दो पन्ने इस स्थान से खंडित हैं, जिसके कारण कुल ६०–६२ छंदों को त्रुटित होना चाहिए, किंतु श्री. में यह अंश ६८ छंदों का है। अतः कम से कम पाँच छः छंद श्री. में इस अंश में क. की अपेक्षा अधिक होंगे। ये छः छंद कौन से होंगे, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है, किंतु ३६७–४०१ के संबंध में इस बात की संभावना यथेष्ट प्रतीत होती है, क्योंकि इनमें आए हुए 'फुलवादि' के वर्णन में पुनरुक्तियाँ अनेक हैं कुछ फूलों के नाम तीन-तीन बार आए हैं, और 'फुलवादि' का उल्लेख आगे छंद ४१८ में भी हुआ है। शेष छंदों में राम सरोवर की उस घटना का विवरण है जिसका उल्लेख संक्षेपतः आगे भी हुआ है (छंद ४८०–८४ तथा छंद ४७२), इसलिए ये छंद स्थूल रूप में क. में भी रहे होंगे।

देख्यौ साइरु गहर गंभीर।
लहरि उतंग झकोरै णीर।
रावट रंग सुमानी कन्यौ।
तामहि फटिक सु पेटा जन्यौ ॥३८९॥

फटिक सिला बैठक अति बनी।
छाजे (छाजैं) मौजैं संदिर तनी।
चान्यौ घाट पटाए पाट।
नीर भरैं सुंदरि के ठाट ॥३९०॥

बाला अबला प्रौढा नारि।
भरैं णीर न्यूमल (निर्मल) पनिहारि।
तिन कौ रूपु बरनि को कहै।
कहत कथा कछु अंतु न लहै ॥३९१॥

द्रिष्टिवंतु सोहै चकराइ।
गहिरवंतु नहीं बरन्यौ जाइ।
सोहैं कमल कमोदिनि पान।
भंवर बास रस भूलहिं न्यान ॥३९२॥

निमसहिं हंस हंसिनी संग।
भरे अनंद कुरंग कुलंग।
क्रीलति चकई चक्क चकोर।
बन के जीव गुंजरहिं मोर ॥३९३॥

ढेंकि पंखि मटामरे घनै।
जल कूकरी आरि अनगनै।
सारिस बग्ग हंस उनहारि।
निमसहि पंखि सरोवर पारि ॥३९४॥

पुरइनि कमल रहे जल छाइ।
बहु फुलवारि रही महकाइ।
खिन इकु बैठो सरवर तीर।
बैठि साह तहं अंचयौ नीर ॥३९५॥

बिरव (बिरह) ताप मदन सर हयौ।
चलि ब साहि फुलवादिहि गयौ।
मलतु (मालति ?) अरु केतुकी कल्हार।
राइ चंपौ केवरौ अपार ॥३९६॥

मलयागिरि मचकुंद असेस।
परिमल रस भूलयौ नरेस।
श्रवन सुसाद पंछि के घनै।
मानौ बान मदन के हनै[१] ॥३९७॥

नैननि रस सोभा लखि लई।
घ्रान बासुना ते त्रिपतई।
बर्णों (बरणौं) जाति नामु तिन तनौ।
रत्न (रतन) रंग गुनीयन गुन गनौ[१] ॥३९८॥

छंद — कुसम कुंद मचकुंद मरुवौ केवरौ केतुकी कल्हार।
गुलाल सेवती मोकरो सुंदर जाइ।
महंदी पदमाख केवरौ अतिवर्ष चंपग पाइ।
जाति कूजौ जुही अति गनि (अनिगनि) रही महकाइ।
सघन दार्यौं दाख कमरख नार्यंग निबुवा नारि।
बादम्म अंम जंभीर खारिक सघन सरवर पारि[१] ॥३९९॥

चउपई—कुंद खिरणी जाती फुलवादि।
गनत त्रिच्छ को जानै आदि।
लौंग लाइची बेलि अनूप।
चंदन बन देखे महि भूप[१] ॥४००॥

केसरि केरा केरि के मूल।
उपजहिं भीमसेनि कपूर।
तहां प्रसाद त्रिस्न सिव तनौ।
धजा उतंग कलस अति बन्यौ[१] ॥४०१॥

[३९७-४०१] १. श्री. में जैसा ऊपर कहा जा चुका है, ये पाँच छंद प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं।

देखि साहि जी चितयौ यौं र।
यह निजु धरती आसिष ठौर।
देख्यौ राय सरोवरु तिसौ।
पुहमी मान सरोवरु जिसौ ॥४०२॥

तिहि परसंग छिताई नारि।
खेलै बनसी सरवर पारि।
सौनै सांट पाट की डोरि।
लीनी बनसी पिय औ ेरि ॥४०३॥

पिय कौ बागौ पहिरै अंग।
सखी बीस दस बाला संग।
ग्रीव माल जमधर द्रिढ़ अंग।
तरिवन ते ज हीर मनि मंग ॥४०४॥

कुसम सुरंग लाल ओढ़नी।
बनिता बनी काम मोहनी।
पंकज दल लोचन अति चंग।
दसन पांति सोहियै सुरंग ॥४०५॥

मधु मनि तिलक कुंभ गज नंक।
बदन संपूरण ज्यौं मयंक।
बिछुरि चक्क चकरी संग गयौ।
बाला बदनु चंद उगयौ ॥४०६॥

अरुण कमल संपुट गए बंधि।
अलि चलि गए कमोदिनि संधि।
प्रेम बिछुरि चकई चक गई।
अंतर कुरल सरल सांचई ॥४०७॥

प्रजलित मदन प्रेम कै जोग।
व्यापी अधिक काम की रोग।
इकु कोइल अरु चकई मोर।
इकु बसंत अरु सलिल झकोर ॥४०८॥

कीर चकोर हंस सर सचवै।
बिरहिन बिरह अधिक तनु तवै।
सारस सबद सुनावै पीव।
बिकलित बदन सुंदरी जीव ॥४०९॥

मस्त परेवा घुटक गंभीर।
ब्यापी अधिक काम की पीर।
भौ भै चक्रित सरवर तीर।
काम बिथा बिष लहरि सरीर ॥४१०॥

लोग कहैं सबि सीतल नीर।
मो विषइनि बिष दहै सरीर।
मो मंदिर नहीं सेज सुहाइ।
चलहु सरोवर खेलैं जाइ ॥४११॥

सरवरु देषि बहुतु दुखु भयो।
चक्कु बिछुरि चकई संगु गयौ।
मो पापिनी जनमु कत भयौ।
मो तजि कंतु बिदेसह गयौ ॥४१२॥

मो मुख देखित चकई बिछोह।
मो मुख देखि पंखि कौ कोह।
सुनि सुनि सखी मैनसुख बैन।
ब्यापी काम कटक की सैन ॥४१३॥

मैन चोर (चोरी ?) ब्यापी अति खरी।
ज्यौं जल सीत कमल पांखुरी।
मो दिनियर सम कंत अपार।
सो बिष सीत बुझावन हार ॥४१४॥

जब पिरि परै कंत की मैन।
तब देखिहौं तुम्हारी सैन।
तजि दुख सुंदरि सरवर तीर।
बाहुरि खेलै बनसी नीर ॥४१५॥

बिष अति मदन बिरह कैं ताप।
पंखी सबद सुमिरि सुख आप।
निमसहि पंखि सरोवर संग।
आपु अनंद करै बहु रंग ॥४१६॥

हंस सबद सरवर मंझारि।
बट उपकंठ मनोहर णारि।
अति फुलबादि चहूंघा घनी।
सिर घट नीर भरहिं कामिनी ॥४१७॥

बदन सुकोमल नैन सुढार।
देखैं चरित सु सरवर पारि।
देखत साहि अधिक सुखु भयौ।
गहि गिलोल गोरा कर लयौ ॥४१८॥

नाखै गोरा साह (साहि) स धीर।
उडैं पंखि बैठे सर तीर।
फेरै हाथ कंध पर देइ।
बहुरू समझि फैंट तें लेइ ॥४१९॥

नाखे गोरा जब द्वै चारि।
चरच्यौ तबहि छिताई नारि।
तब सुंदरि जान्यो जी माहि।
कपट रूप काउ साहिबु आहि ॥४२०॥

मैनरेह समुझाइ पठाइ।
आपुनु मंदिर पहुंची जाइ।
द्रिष्टि दुराइ तासु पै गई।
जाइ पिछौडी ठाढी भई ॥४२१॥

नाखै गोरा सरवर माहिं।
मांगै साहि पिछौडी बाहि।
जानै मोको देइ खवास।
कीनौ साहि जीव बिस्वासु ॥४२२॥

जब जब हाथ कंध पर देइ।
तब तब दासि अबोलै देइ।
खेलत साहि घरी द्वै भई।
बहुत पंखि गोरा सर हुई ॥४२३॥

गोरा परैं सरवर मंझारि।
उठैं पंखि बैठैं सर पारि।
उडि पंखी सहु भई अखेट।
तबहिं दासि नै पकरी फैंट ॥४२४॥

नाखत गोरा एकु न रह्यौ।
तबहि दासि (साहि) सौं दासी कह्यौ।
इहां तुम्हारौ कहा खवास।
मांगहु गोरा काके पास ॥४२५॥

भयौ चकित साहि जीय आइ।
कहा बुध्धि तैं हरी खुदाइ।
दासी चित्तु बहुतु गहगह्यौ।
मैं ब साहि आलमु है गह्यौ ॥४२६॥

जा डर डरपै सकल जिहान।
जिहि संकोच्यो राजा रामु।
जिहि जीते सब भूपति साहि।
अरु दुर्गम गढ़ लीनौ ढाहि ॥४२७॥

जाहि पास नव लाख किक्यान।
सो मैं पकर्‍यौ नीकैं बान।
जिहि परताप सकलु जग जिन्यौ।
इहि कोउ त्रिन मात्र न गिन्यौ ॥४२८॥

अब सीभयौ राजा कौ कामु।
याहि गहत सुख रहिहै रामु।
तू आलम पति दिल्ली (ढिल्ली) तनौ।
बेगि प्रगासि नांउ आपनौ ॥४२९॥

तैं हमकौ गढ कियौ उपाउ (अपाउ) ।
तोहि लग्रै राजा पै जांउ ।
तो डर दुख्खु कुंवरि कौ भयौ ।
अजुगुत अंतु हमारौ लयौ ।।४३०।।

गयौ सौंरसी लेन समाइ ।
ढोलसमुद कौ सैनु अथाह ।
इतनौ दुखु तो आग्रै भयौ ।
सहियै सो जु सहावै दयौ ।।४३१।।

अब सु भयौ सबु नीकौ कामु ।
सुख सोवैगौ राजा रामु ।
भंजनु गढनु पुरुषु जो आहि ।
ताकौ जारु सुहाइ न साहि ।।४३२।।

सेवा करत कियौ जी दापु ।
अब भौ उदै तुम्हारौ पापु ।
द्यौगिरि (देवगिरि) दुग्ग जाहि गढ होइ ।
काकौ राजा सेवइ सोइ ।।४३३।।

मंत्रिनि मंत्रु कियौ ठहराइ ।
मिल्यौ साहि निसुरति को जाइ ।
दास तीनि दासी यौं कह्यौ ।
तो कहुं राजा सेवतु रह्यौ ।।४३४।।

सोऊ प्रीति न राखी चित्त ।
ठाकुरु अंत न होई मित्त ।
सेवा प्रीति न जाने हियै ।
जब तब बुरी देखियै कियै ।।४३५।।

सुलतान वाच–वे बेखबरि ए होऊं साहि ।
देखि बिचारि आपु जी माहि ।
ऐसे रूप साहि क्यों होइ ।
आलम दुनी कहैं सब कोइ ।। ४३६।।

तब हंसि दासि साहि सौं कह्यौ।
अब निज राउ तोहि निग्रहै।
सुनतहि बचन बदन दुरि गयौ।
अंग पसेउ बहुतु दुखु भयौ॥४३७॥

पातिसाहि जिय अति पछिताइ।
सिरु गीचौ सुबदन कुम्हिलाइ।
बदन मलिन देखियै कयाह।
जनु ससि गगन चंपियो राह॥४३८॥

मैं न कियौ रायौ कौ कह्यौ।
रूप दिया पतंग परिदह्यौ[1]॥४३९॥

अब बूडौ दिल्ली (ढिल्ली) कौ काजु (राजु)
मरण दुर्ग गढ भयौ अकाज।
तिहि चितु डिढु न साहि कौ रह्यौ।
महा दुखारौ दासी गह्यौ॥४४०॥

तबहि साहि सोच्यौ मन माहिं।
क्यौं उबरौं या दासी पाहिं।
मो कर सिल तर चप्यौ अकथ्थ।
अब किहि गुन कै काढौं हथ्थ॥४४१॥

दोहरा—पर दुर्गह अरु पर घरह जे (जइ) कोई मंडै रारि।
खंखरि होइ दुरलभी मिंत[1] पराई पारि॥४४२॥

समौ बिचारैं जे चलै अरु जी करैं कुबुध्धि।
तिन कारन सीरध चढै ज्यौं हनवंतहिं सिद्धि॥४४३॥

---

[४३९] १. श्री में यहां और है: अरु मो भई पुहमि मैं गारि। ढूंढ़तु फिर्यौ पराई नारि। (तुलना० ३२७)

[४४२] १. श्री में 'म्यंत' है। २. इस चरण की तुलना कीजिए ४४७-२ से।

पातिसाह वाच–हौं आलमु सिर साहि नरेस।
देखन दुर्ग कियौ परवेस।
मैनरहे (मैण रेह) हौं बिनऊं तोहिं।[१]
अदग दागु दै सुंदरि मोहिं ॥४४४॥

लै छोरी सुपगनि सिरु धरयौ (धरै ?)।
बहुतु दीन भौ बिनती करै।
मैनरेह हौं बिनऊं तोहि[१]।
राखहि सरण सुंदरी मोहि ॥४४५॥

मैं जीते बहु साहि नरेस।
लीनै बहुत दलपती देस।
अब सुंदरि तेरी पिरि पर्यौ।
करहि जु तोहि चाहिजै कर्यौ ॥४४६॥

दोहरा–अपनै अपनै देसरां सब को मंडै रारि।
खंखरि होइ दुरलभी म्यंत (मिंत) पराई पारि[१] ॥४४७॥

चउपई–अब हौं पिरि जु पराई पर्यौ।
मो पहिं बलु ब जाइ क्यौं करो।
मैनरेह गढु छाडौं तोहिं।
दैउं बचन जौ छाडै मोहि।४४८॥

तब सुंदरि जिय करै बिचार।
अपनौं नाउं करौं संसार।
डांडौं दिल्ली तनौ नरेस।
मोहि करत उबरै सब देस ॥४४९॥

पकरि लियै राजा पै जाउं।
तौ कलि चलै न मेरौ णाउं।

---

[४४४] १. इस चरण की तुलना कीजिए ४४५.३ से।
[४४५] १. इस चरण की तुलना कीजिए ४४४.३ से।
[४४७] १. इस चरण की तुलना कीजिए ४४२.२ से।

हौं दासी यह साहि नरेस।
छाड़ौं साहि करौं मुख लेस[१] ॥४५०॥*

मैन गनै नव कोरिहि तनै।
ताके कोरि बहत्तरि गनै।
कन्यौ पत्रु दै बीच खुदाइ।
दौत दर्ब तो द्यौं पहुंचाइ ॥४५१॥

ऊपर गाउं दासि कौ दियौ।
दिल्लीपति (ढिल्लीपति) तरहौं मांडियौ।
मैनरेह (मैणरेह) बोलै सुनि साहि।
बचन डिढाउ मोहि दै जाहि ॥४५२॥

जूठौ बोलि जान दै मोहि।
पाछै करहि जु भावै तोहि।
छाडहि दुर्ग और सब देस।
जौ (जेतौ ?) तौ लग रामु नरेस ॥४५३॥

असौ बोलु देहि मो आपु।
तौ छाडौं जौ छियै मुसाफु।
सुरतान वाच—मोहि नाहि तौ देस सौं कामु।
अरु मो भावै राजा रामु ॥४५४॥

मेरै[१] हियै[२] छिताई रही।
लिखि कै चित्रु चितेरै[३] कही।
मैणरेह सुनि[४] बिनऊं तोहि।
जो तूं कहै[५] सु करणौ मोहि ॥४५५॥

---

[४५०] १. छंद के उत्तरार्द्ध की तुलना कीजिए ४८७ के पूर्वार्द्ध से।

* क. में संख्या दुहरा उठी है।

[४५५] १. श्री. मो अति। २. क. चिचि। ३. क. लिख करि चित्र चितैरेइ। ४. क. हूं। ५. क. जो कुछ कही।

करौं कूंच हौं होत[1] बिहाण ।
खाण[2] खाउं तौ सुवर हराम[3] ।
मैणरेह रावर[4] चलि गई ।
छाडि वै फैंट साहि की दई ॥४५६॥

बैठो साहि तलहटी[1] हाट ।
चाहै राघौ केरी बाट[2] ।
राघौ तबहि रावरहि गयौ ।
उठ्यौ[3] राइ आंकौ[4] भरि लयौ ॥४५७॥

अरधु[1] सिंघासणु दीनौ टारि ।
अरु ता करी बहुत[2] मनुहारि ।[3]
पातिसाहि जौ[4] दई रसाल ।
आगै धरी राम[5] भोवाल[6] ॥४५८॥

बूझै[1] राह साहि कुसलात ।
राघौ कहौ कटक[2] की बात ।
पहिलै जूझ कौनु रण[3] पर्‌यौ ।
कौन काज तुम यह गढ घिर्‌यो[4] ॥४५९॥

---

[४५६] १. क. करूं कूच दौत । २. श्री. खाना । ३. क. समान । ४. क. मंदिर । ५. क. वि ।

[४५७] १. क. कलारी । २. क. में यह चरण नहीं है । ३. क. उठि । ४. श्री. अंकौ ।

[४५८] १. क. आध । २. क. आपण बहु करी । ३. क. में यहाँ और है:

चेतन कहौ एह परि ठई । सेवा करी सु निफल गई ।
हौं रांमदेव कुण परि जाउं । मोल्हण चेतन ए गुण आहि ।

बाद में राघव बादशाह के उपहार भेंट कर रहा है। इसलिए उसके पूर्व ही इस प्रकार का कथन असंगत है। ४. क. जो । ५. क. ते ले आगइ धरी । ६. क, भूआल ।

[४५९] १. क. पूछइ । २. क. चेतन कहौ लसकर । ३. क. कवण सुं । ४. क. कुंउण कारण तुम्ह गढ परि चढै ।

क्यौं[1] आए तुम लग्रै[2] रसाल।
क्यौं[3] पठए तुम साहि भुवाल।
राघो कहै साहि के बोल।
बैठे सुनैं सभा के[4] टोल ॥४६०॥

जे उवंराउ[1] जूझ मैं[2] पडे (परे ?)[3]।
सेना सहित आनि रण[4] जुदे (जुरे ?)[5]।
मैं तो प्रीति बात जोगई[6]।
तैं ह्वै दासी मोकौं[7] दई ॥४६१॥

तासु क्रोध[1] गढु घेर्‍यो तोहि।
साहि बोलु क्यौं कहिजै तोहि[2]।[3]
दै मणि सुंदरि सरस[4] तुरग[5]।
दै गज मत्त रहै ज्यौं रंग ॥४६२॥

---

[४६०] १. क. कुं। २. क. अब लीइ (लियइ)। ३. क. किं। ४. क. सुणो सभागढ बैठे।

[४६१] १. श्री. जो उम्मरा। २. श्री. सुनहि तव। ३. श्री. पर्‍यो। ४. क. सेन सहित सब आए। ५. श्री. लर्‍यौ। ६. श्री. ताकी प्रीति अधिक मो भई। ७. क. साहि कुं।

[४६२] १. क. बोल। २. क. कहइ साह पातग नहि मोहि। ३. क. में यहाँ और है:

अब क्या कहौ साहि परमाण। मान जोग तु मानु आण।
चेतन कहइ सुणइ हो राइ। पातिसाहि ए लइ ण जाइ।
मांगइ गरथ अरथ भंडार। मांगइ हाथी घोड़ा सार।
मांगइ देस वेस अरि ठाण।
मांगइ गुहिर गढ गाजणौ। मांगइ बहुत वाजणौ।
जौ तुं राजा पूछइ मोहि। साहि बोल जो कहीइ तोहि।
अब क्या कहइ साहि परिमाण। मान जोग तुं मांन आण।
चेतन कहइ सुनौ रिण राइ। पाति साहि ए लइ ण जाइ।

दै गढ़ छाडि बचै[२] जो तोहि।
देहि छिताई कन्या मोहि[३]।
सुणत राउ चेतन की बात[४]
अति रिस कोप पसीनौ[५] गात ॥४६३॥

जनिकु मेह बरसै[१] असमान
कर ते काढी कोपि[२]कमान (कृपान ?)।
अरे दुष्ट हौं[३] मारौं तोहि
असी बात कहै क्यौं[४] मोहि ॥४६४॥

अब तुंसु(तौसों)ज हतु (हतौं)पुराण (पराण[१]।
तौ मो[२] कहा करै सुलितान।
हौं गढ[३] असुपति दलपति[४] भूप।
तू बिणजइ[५] बिणजारी[६] पूत ॥४६५॥

इन पंक्तियों में से प्रथम दो तो वही हैं जो अंतिम दो और भूल से पहिले भी आ गई हैं। शेष पंक्तियाँ प्रसंगसम्मत नहीं हैं, क्योंकि आगे ४६३ में 'तुरंग' तथा 'गजमत्त' चेतन ने बादशाह के लिए माँगे हैं। इन पंक्तियों में राजा जब 'हाथी घोड़ा सार' देने के लिए कहता है तो चेतन कहता है 'पाति सहिए लइ ण जाइ।' ४. श्री. तुरत। ५. क. सुरंग। ६. क. मत्त गयंद जंगली झुंड।

[४६३] १. क. देवगिर। २. श्री. बंचि। ३. क. में यहाँ और है:

एतौ सुणत राइ कोपीउ। जानकि कान्हर वासिग जागीउ।
मनहु सिंघ कोप्यौ केसरी। जानै भीम खेलइ आंवरी।

बाद की पंक्ति में आता है: 'सुणत राउ चेतन की बात' इसलिए इन चरणों में पुनरुक्ति स्पष्ट है। कोप के प्रसंग में अंतिम उक्ति भी चिंत्य है। ४. श्री. राजो कोप चढ्यो सुनि बात। ५. क. कोपिउ (कोपिओ)।

[४६४] १. क. गाजउ। २. क. कोपिउ। ३. क. हुं। ४. क. क्यं।

[४६५] १. श्री. अब जौ पकरि कटाऊं कान। २. क. मोरौ। ३. क. हुउ गढपति। ४. श्री. गढ गाढौ गढ मैं। ५. श्री. निवरन। ६. क. विण राजा।

बरिस एक सौ घेरै रह्यौ (रहै)।
होइ न कछू राइ कै कहै।[1]

राघवचेतन वाच—

दोहरा—उत मरवावै साहि मोहि इत तूं रीस[2] नरेस।
चेतनि मनह[3] बिचारियौ ना जोगी दरवेस[4] ॥४६६॥

चउपई-जैता जाजै कीनौ बीचु।
दूतहि राइ न कीजै[1] मीचु[2] ॥४६७॥

उठि कर पकरे[1] बैरीसाल।
दूतु न मारण जाइ भुवाल[2]।
यहु मैं सुन्यौ पुराणनि पीठु[3]।
बोलै करए (करुए)[4] बोल बसीठु ॥४६८॥

बेगि वसीठ पठओ पहिराइ।
कीरति तोरि पुहमि चलि जाइ[1]।
तबहि राउ रिस कै द्वै बार[2]।
बेगौ उतरि ण लावहि[3] बार ॥४६९॥

उतर्‌यौ राघौ साहि समेत।
गढ़ मैं[1] रहै[2] राहु अरु केतु।

---

[४६६] १. क. सहस बरस जो घेरै कोइ। मारूं कछु न तुम्हथें होइ। इस पाठभेद में राजस्थानी प्रभाव स्पष्ट है और अत्युक्ति का मात्रा भी बहुत बढ़ी हुई है। २. क. राइ। ३. क. चितइ। ४. श्री. द्रवेस।

[४६७] १. क. दूत न मारण जाइ। २. श्री. बीचु।

[४६८] १. क. उठ करि पकर्‌यौ। २. क. भूपाल। ३. क. पाठ। ४. क. करडा।

[४६९] १. क. दूत न मारण जाइ भूवाल। (तुलना. ४६८)। २. श्री. क्रोध रूप तौ करै गंवारु। ३. क. बेगि न उतारो न लावो।

[४७०] १. क. महि। २. श्री. रह्यो। ३. श्री. डेरा।

राघौ साहि एकठा भए।
उतरि दुर्ग गढ डेरें[3] गए ॥४७०॥

पूंछइ साहि[1] छिताई सार[2]।
राघौ कहै राइ[3] व्यौहार।
कहै साहि दासी की[4] बात।
राघौ रह्यौ जीभ दै[5] दांत ॥४७१॥

मेरौ[1] बोलु न तुम चित धरहु।
दीया[2] पतंग साहि तुम फिरहु[3]।
जौ बरजौं[4] तौ डाटौ[5] मोहि।
ताते बात न मेटौं[6] तोहिं ॥४७२॥

तोसौं[1] कोउ न कहतौ बुरौ[2]।
मोकौं अपजसु होतो खरौ[3]।
सबु कोइ[4] कहतो ऐसी बात।
राघौ गढ लै चल्यौ संघात ॥४७३॥

दूत्यौं कै[1] पकरायौ साहि।
ऐसौ सब कहते मन मांहि[2]।
बुरी भई ही[3] राघौ कहै।
ऐसें[4] औरु ए आवन लहै ॥४७४॥

---

[४७१] १. श्री. बूझी सबै। २. क. सारि। ३. क. सभै। ४. क. नी (राजस्थानी प्रभाव)। ५. क. राघौ जीभ चपी धरि।

[४७२] १. क. म्हारौ (राजस्थानी प्रभाव)। २. श्री. भए। ३. क. मरूं। ४. क. बरजुं। ५. क. मारहि। ६. क. बोल न मेटइ।

[४७३] १. क. तुम्हसुं। २. क. कोइ न कहतो बुरूं। ३. क. माकुं अपजस हुंतो खरूं। ४. श्री. को।

[४७४] १. क. दूती करि। २. क. कोइ न आवइ साहि। ३. क. थी। ४. क. अइसु।

मोकौं[1] अपजसु हुंतो[2] घनौ।
अनु[3] बूडतौ राज तो[4] तनौ।
अब करि खैरि जनमु भौ नयौ।
आपुनु साहि बधाओ ठयौ[5] ॥४७५॥

लागे घुमरण गहिर[1] णिसान।
पंच सबद बाजे बाजाण[2]।
उतरि बसीठु जब गढ तें[3] गयौ[4]।
तबहि राइ जिय अति[5] सुखु[6] भयौ[7] ॥४७६॥

बैठो छजै छत्रु दै राउ[1]।
आजु कटक गाहरुं (गहिरौ)[2] कहलाउ।
तब बोल्यौ[3] पीपो परधान[4]।
हैहै[5] कूचु हमारैं जान ॥४७७॥

कसै लोक[1] आपणौ समदाउ[2]।
तातैं कटक होइत[3] कहलाउ।
इति[4] अंतर दासी चलि गई।
जाइ राइ[5] पै[6] ठाढी भई ॥४७८॥

हाथ जोरि करि कियौ जुहारु[1]।
लागी[2] कहण साहि ब्यौहारु ।❀

---

[४७५] १. क. मोकुं। २. श्री. होतौ। ३. श्री. अरु। ४. क तुम्ह। ५. क. घरि घरि साहि वधावुं कीउ। आपण साहि दया मुंदयौ।

[४७६] १. क. घुमरिउ गुहिर। २. श्री. गहिराण। ३. श्री. जबहि गढ़। ४. क. गए। ५. क. राइ रामदेव जीव। ६. श्री. दुषु। ७. क. भए।

[४७७] १. क. आइ। २. श्री. कछु। ३. क. बोलइ। ४. श्री. पीपा परिधान। ५. क. होइहइ।

[४७८] १. श्री. लोगु। २. क. असबाब। ३. श्री. होइ बहुतु। ४. क. इस। ५. श्री. साहि। ६. क. पहि।

❀ श्री. में यह चरण दुहरा उठा है।

आजु साहि गढ ऊपरि[3] चढ्यौ।
सो तुम सुनौ दासि यौं पढ्यौ[4] ॥४७९॥

मैं पकर्‍यौ गढ साहि नरेसु।
बस्तर मलिन गरीबी भेसु।
गहि[1] गिलोल गोरा[2] करि लए[3]।
सरवर पंखि बहुत तिन[4] हए ॥४८०॥

मांगै गोरा पीछी[2] बांहि।
तातैं मैं चरच्यौ[1] इहु साहि[3]।
मैं कर दीये पहुंचिया[4] तोरि।
डांड्यौ साहि बहत्तर कोरि ॥४८१॥

लिख्यौ पत्र दै बीच खुदाइ।
दौतु द्रब्बु तो यौं पहुंचाइ[1]।
बाबा बंधु तहां मो भयौ[2]।
मोकौ[3] साहि पत्रु लिखि दयौ[4] ॥४८२॥

आप्यो पत्रु राइकै[1] हाथ।
देख्यौ बांचि तबहिं[2] नरणाथ।

---

[४७६] १. क. बीनवउ बौहार। २. श्री. लाग्यौ। ३. श्री. ऊपर। ४. क. राउ रामदेव तव खिण सुण्यो।

[४८०] १. क. हाथ। २. क. गोला। ३. श्री. कर लयौ। ४. क. उन।

[४८१] १. क. गोला पाछिली। २. क. तब मइ लच्यौ सुणो। ३. श्री. मांह। ४. क. पुंचिया।

[४८२] १. क. द्रिव्य मोहि देहि चढ़ाइ। २. क. कीउ। ३. क. मोकुं। ४. क. दीउ।

[४८३] १. क. साहिकइ। २. क. बाचा देखि राउ। ३. क. मइ तो पकर्‍यो नीकइ बान। (तुलना० ४२६)। मोरूं करी बहुत मनुहारि। (तुलना० ४५०)।

मैं अति बहुतु मल्यौ ता मानु ।
झूठु न कहौं राइ की आन[3] ॥४८३॥

मारु मारु सब काहू[1] करी ।
डहकी कहूं छैल सुंदरी[2] ।
वह[3] आलमु सिर साहि नरेसु ।
सो क्यों[4] करै गरबी (गरीबी) भेसु[5] ॥४८४॥

जौ[1] तैं दासी पकर्यौ साहि ।
जौ तौ बोलु धरै जी[2] माहि ।
कहै राइ[3] करवावै कूंचु[4] ।
गढ ग्रह[5] ग्रहणु होइ क्यौं[6] मूचु[7] ॥४८५॥

वेगि कटक उचकावहि[1] आजु ।
तौ तो देउ[2] अर्ध गढ राजु ।
छाजै चढ़ी[3] मैनसुख नारि ।
तबै साहि सौं[4] कह्यौ हकारि ॥४८६॥

हौं दासी तूं[1] साहि नरेसु ।
छाडहि[2] दुर्गु करहि सुख लेसु[3] ।[4]
छाडहि दुर्गु देसु अरु णारि[5] ।
कहै साहि बाचा प्रतिपारि[6] ॥४८७॥

---

[४८४] १. क. कोई । २. क. डहकी छयल कह तो तीरी । ३. क. ३. । ४. क. सो कुं । ५. श्री. दुर्ग परवेस ।

[४८५] १. क. जइ । २. क. तोरूं बोल धर्यो जीउ । ३. क. राज । ४. श्री. करि वहै बिचारु (तुक वैषम्य प्रकट है) । ५. क. भो । ६. क. जो । ७. श्री. कूचु ।

[४८६] १. क. उदकाओ । २. तो कुंदीउ । ३. श्री. चेटी । ४. क. पातिसाहि सुं ।

[४८७] १. क. हुं । २. क. छांडो । ३. श्री. अलबेसु । ४. छंद के पूर्वार्द्ध की तुलना कीजिए छंद ४५६ के उत्तरार्द्ध से । ५. क. दहचाल । ६. क. अहो साहि बाचा प्रतिपाल ।

पहिरै कारौ बागौ[1] अंग।
चढ्यौ (चढै) साहि कररिला[2] तुरंग।
कारौ छत्रु आपु सिर करै[3]।
गढ कौ बोलु अबहि चित धरै[4] ॥४८८॥

तब ते साहि ज करइ बिचार।
बोल (बोले) बचन करइ प्रतिपाल।
बाचा बंध हरीचंद भयो।
भरे नीर नीच पर (घर ?) रहो ॥४८९॥[1]

बाचा[1] लागि बलि गयौ पयालि[2]।
कर्‌यौ कूंचु यौं[3] कहै भुवाल।
बचन[4] कूंच[5] आपीउ (आपिओ)[6] निरंद (नरिंद)[7]।
बचन धरणि सिर लियौ फणिंद[8] ॥४९०॥

होत दौत दल होइ[1] निसान।
कीनौ[2] बचन साहि परमाण।
दीनी बिदा[3] पेस पेसरी।
लादे ऊंट बलद[4] बेसरी[5] ॥४९१॥

जो जो बात[1] कही सुंदरी।
सो सो बात[2] साहि सब करी।

---

[४८८] १. क. बेस जु। २. क. काले इइबर चढ़इ। ३. क. कालो वस्त्र साहि सिर धरयो। ४. क. गढ़ कुं लेख बचन चित धरो।

[४८९] १. श्री. में यह छंद नहीं है।

[४९०] १. क. बचन। २. श्री. पताल। ३. क. करै कूच हम। ४. क. करण। ५. श्री. कप। ६. श्री. कूचण। ७. श्री. हित दयौ। ८. श्री. इंद बचन सीस धरि लियौ।

[४९१] १. श्री. दले। २. क. कीनु। ३. श्री. दीनै दाम। ४. श्री. लाखा। ५. केसरी।

[४९२] १. क. कला। २. क. कला। ३. क. सजे अंबाड़ी। ४. श्री. लाल। ५. क. आगिलै थोक।

सजी अमारी[3] ढाल[4] सिदूख।
उचक्यौ कटकु आगिली खूख[5] ॥४९२॥

दीनै बदिरा[1] दुर्ग चढाइ।
लियौ पत्रु आपणौ[2] मंगाइ[3]।
भली भली दासी गढ होइ।
उलस्यौ[4] साहि पुंजी सी खोइ ॥४९३॥

तब बोल्यौ पीपो परिगही।
मैं जु राइ[1] सौं तब ही कही।
जौ तूं दासी चतुर सुजाण।
आणि मेलाण[2] फेरि सुलितान ॥४९४॥

बैठी छजै[1] मैणसुख भणै।
आपै साहि बाग धरि सुणै।
हमहि तुमहि तौ (जौ) बोल[2] प्रमाण।
तौ[3] गढ गिरद करहि[4] सुलिताण[5] ॥४९५॥

बोलै[1] कटकु साहि सबु फेरि[2]।
मेलै[3] दुर्ग चहूंघा घेरि।
तमकि[4] साहि गढ ढोवा करै[5]।
भयौ सचेतु तरहटी फिरै[6] ॥४९६॥

क्रोध रूप रिस साहिस बंग[1]।
बहुत चहूंघा लगी सुरंग[2]।[3]

---

[४९३] १. श्री. बदरा। २. क. आपण। ३. श्री. मिलाइ। ४. क. उचक्यो।

[४९४] १. श्री. साहि। २. श्री. आनहि कटकु।

[४९५] १. क. छज। २. क. हम तुम्हें बोल अबोल। ३. क. गढ। ४. क. करूं। ५. क. सुरितांण।

[४९६] १. श्री. बोल्यो। २. क. तो फेरे। ३. श्री. मेलहि। ४. क. तमक्या। ५. क. घेरु कीयो। ६. क. गयो।

ठटीं ठाठरी[४] दुगु[६] समाण
ऊपर बनीं नालि[५] कंवांण[६] ॥४९७॥

गुरज गुरज (बुरज बुरज) तकि मारहिं[१] मीर।
जनु अकाल घन गरज गहीर[२]।
कोट षरहरहि समद (समुद) समान[३]।
खिण एक मांझ[४] चुनि लैहिं[५] सुजान ॥४९८॥

इत उत मारु दुहू दल[१] होइ।
क्रोध रूप भए साहिब[२] दोइ।
चढहिं[३] मुगल जनु बंदर[४] लंक।
मन न धरहिं मरिबे की संक ॥४९९॥

गढ जर दुर्ग[१] दांति[२] की ओट।
बहुतनि हनत[३] खरहरै कोट[४]।
अति भर दुर्ग चलहि असरार[५]।
टिकहिं न साहि तनै असवार[६] ॥५००॥[७]

---

[४९७] १. क. पातिसाह सुरंग। २. क. चिहुधा सुरंग चली तुरंत। ३. क. में यहाँ और है :

कवीअण कहत नराइन दास। पठइ साहि छिताई पासि।

किंतु यह ५४२का पूर्वार्द्ध है और वहीं पर संगत है। ४. क. कहीं गढ़े। ५. क. वाणी लाल। ६. श्री. कमान।

[४९८] १. क. गुरज चले बड़। २. क. पवन बेगि सर मारूं स तीर। ३. क. कोट खरहरत गिरे असमान। ४. श्री. खिन कमान। ५. क. चिण लीइ (लियइ)।

[४९९] १. क. चाहुघो। २. क. साहि। ३. क. चढ़े। ४. क. बानर। ५. क. धरइ तेग की मारु निसंक।

[५००] १. क. गढ़ चिहुंपासि। २. क. दात। ३. क. देखे साहि। ४. क. में यहाँ और है :

चक्रचूर गढ विढ मुगलांण। इह विघ जूझत गिघ समांण।

छिरकहिं ताते तेल निकंद ।
त्यौं त्यौं कोपै साहि नर्यंद (नरिंद) ।[१]
गढ़ उपरि[२] उठण[३] न पावै हाथ ।
तीरणि बेभि करै आकाथ[४] ॥५०१॥

देखि जूझ[१] पीपा परिगही[२] ।
जी महि लाज तबहि तिहि गही[३] ।
सनमुख जाइ साहि सौं लऱ्यौ[४] ।
बहुतक[५] मारि जूझि रण पऱ्यौ[६] ॥५०२॥

ताकौ राजा अति दुख कियौ[१] ।
कालु हंकारि[२] आपु कौ लियौ ।
हम सैं हथ करि लए[३] अंगार ।
मेटन हारु कौनु[४] संसार ॥५०३॥

रतन रंग वाच—

रतन रंग कवियन बुधि लई ।
समौ बिचारि कथा[१] बरणई ।
गुनियन गुनी नराइन दास ।
तामंह रतन कियौ परगास ॥५०४॥

ये चरण न सार्थक लगते हैं, न संगत । ५. क. वीर असराल । ६. क. गढ़ कर लोक भिडइ भड मार । ७. क. में यहाँ और है :

एक भागइ एक आगइ सरइ । इक इक जाई घूमर धरि परइ ।

ये चरण पूर्ववर्ती 'टिकहिं न साहि तनै असवार' के प्रक्षिप्त विस्तार मात्र प्रतीत होते हैं ।

[५०१] १. क. छिरकइ नितेल तांता तन भीड़ मार । उचा नीचु चितवन चाल । २. श्री. महिं । ३. क. उडण । ४. क. रिण रंग दुइ भिडइ भडवाथ ।

[५०२] १. क. मारि । २. क. परगह्यौ । ३. क. धरे भर भमौ । ४. क. साहिसुं लरइ । ५. क. बहुतन । ६. क. झूझ घर परै ।

[५०३] १. क. तबहि राय जीय महि दुख भयौ । २. क. बुलाइ । ३. क. सांम्हुउ ली धरे । ४. मेटन कोइ न को ।

[५०४] १. क. नाथ ।

नराइन दास वाच—

दूती तजिव[१] रावरहि गई।
सीह दुवारहि ठाढ़ी भई।
बूझी जाइ छिताई सार।
ब्यौरौ सबै कह्यौ प्रतिहार[२] ॥५०५॥

दूती महल भीतरी गई।
कुंअरि बुलाइ आपु पहं लई।[१]
पौहंची पानि[२] कमंडलु हाथ।
दोऊ दूती एक णि[३] साथ ॥५०६॥

पहिली[१] गई[२] मसवासणि[३] बार।
भीतर लही छिताई सार[४]।
सुनि[५] मसवासणि[३] लई[६] हंकारि।
आसण दै[७] समीप बैसारि ॥५०७॥

भागौती दै तिलकु लिलार।
साथ सुमिरणी गल जपमाल[२]।
राम नाम की टोपी सीस।
कर तुलसी लै दई[३] असीस ॥५०८॥[४]

छिताई वाच—कहौ तपोधन अपनी बात[१]।
कौन कौन[२] तीरथ को जात।

---

[५०५] १. क. तवहि। २. क. दासो असीस कही व्यौहार।

[५०६] १. क. दुती बुलाइ आप पह लई। आगी छिताई ठाढी भई। २. क. पौंछी तुलछी। ३. श्री. एकहि।

[५०७] १. श्री. पहिलु। २. क. ग। ३. श्री. मसवासी। ४. क. नारी। ५. क. ते। ६. क. लीह। ७. क. डाली।

[५०८] १. क. भगवति तिलक बन्यो ललाट। २. क. जंरइ राम नाम मुखि पाठ। ३. क. दीन्ही असीस। ४. क. में यहाँ और है :

सुनत छिताई आसन दोउ। बीड़ भोग आंनि थिति ठयौ।
किंतु आसन वह ५०७ में दे चुकी है।

दूती वाच–मकर प्रयाग[3] बरत[4] मैं कियो।
गया पिंड[6] बिधि पूरब दियौ[7] ॥५०९॥

वदरी बाणारसी निमषार।[1]
अन (अनु) परस्यौ केल्हण[2] केदार।[3]
हौं[4] षट मास द्वारिका रही।
जिय[5] दृढ़ भगति राम[6] की गही ॥५१०॥

भांवरि भंवतहि[1] बिधवा भई।
दिष्या हमहि[2] संत गुरु दई।
जगन्नाथ गोदावरि न्हाई[3]।
बहुत बात को कहै बढाई[4] ॥५११॥

हौं पवित्र परमानंदि नाउं।[1]
सेतबंध रामेसर जाउं[2]।
तेरौ[3] भाव[4] सुन्यौ हम[5] कान।
तातें हम आई इहि ठाण ॥५१२॥

सुनि रु* छिताई उत्तरु दियौ।
आजु पवित्रु ठौर यह कियौ[1]।

---

[५०९] १. श्री. वाच। २. क. कुण कुण (राजस्थानी प्रभाव)। ३. क. प्रीआग। ४. प्री. मकर। ५. क. कीउ (कियो)। ६. श्री. खंडु। ७. क. दयौ।

[५१०] १. क. बरत नेम बाणारसी पार। २. श्री. कासी परसि कियौ। ३. क. में यहाँ और है। बार च्यारि द्वारामति गई। नगर कोट देवी सुधि भई। किंतु आगे भी आता है। हौं षट मास द्वारिका रही। ४. श्री. हम। ५. क. भइ। ६. क. राइ।

[५११] १. क. भामर भमत सु। २. क. मोहि। ३. क. जाइ। ४. क. में यह चरण नही है।

[५१२] १. क. में यह चरण नहीं है। २. क. जाइ। ३. क. तेरु (तेरो) ४. श्री. नाउ। ५. क. मइ। ६. क. हुं (हौ) आव्यो। ७. श्री. थान।

*चिह्नित शब्द क में नहीं हैं।

दूती वाच–कहि मेरी आपणा[2] ब्यौहारु।
तोसी णारि[3] नहीं संसार ॥५१३॥

अति दुर्बल[1] सचिंत[2] सरीर।
कौण बात की[3] ब्यापै पीर।
बीरा खाइ न माथै न्हाइ।
कहि का दुख तेरैं जी आइ[4] ॥५१४॥[5]

छिताई वाच–मो पिय पीर पिता की लाज।
यह गढु घेर्यौ मेरै काज[1]।
मो लगि[2] नाहु बिदेसह[3] गयौ।
यह संताप मोहि मन भयौ[4] ॥५१५॥

दूती वाच–तूं म्रिगनैनी देखि[1] बिचारि।
जोबन कौ सुखु जुवा म[2] हारि।
जोबन रयण[3] पाहुणो आहि।[4]
गऐं मूढ पाछै पछिताहिं[5] ॥५१६॥

तरवर कस्यौ[1] बहुरि पालुहै[2]।
सरवर सूको[3] बहुरि जल भरै।
बिछुर्यौ मिलै बहुरि हू आइ।
कहैं सयाने बात बनाइ[6] ॥५१७॥

---

[५१३] १. क. ठाए भयौ। २. श्रा. अपनो। ३. क. तिहो।

[५१४] १. क. दूबरी। २. श्री. सुच्यंत। ३. श्री. तो। ४. क. कहा दुखतेरे जीउ आहि। ५. क. में यहाँ निम्नलिखित दो चरण और हैं—

जाणी तेरा जीव की बात। ऐ दिन तोहि भोग बिण जाइ।

प्रसंग में ये चरण असंगत लगते हैं। तुक-वैषम्य भी इनमें प्रकट है।

[५१५] १. क. में यह चरण छूट गया है। २. श्री. तजि। ३. क. बिदेसइ। ४. क. ए अंदेस बिधाता दयौ।

[५१६] १. क. तो देखि आपणै हिइ। २. श्री. न। ३. श्री. रतन। ४. क. पांहुणु (पाहुणो) आइ। ५. क. पछताइ।

[५१७] १. क. काटि। २. क. पालवइ। ३. श्री. सूकि। ४. क. में छंद का उत्तरार्द्ध नहीं है। इसकी स्थिति स्पष्ट नहीं है।

ऐसी[1] कहैं सयाणे लोइ।
जोबनु गयौ बहुरि नहीं (नहिं)[2] होइ।
संपति बिपति होइ फुण[3] जाइ।
ए सब सुणइ[4] क्रम्म के[5] भाइ ॥५१८॥

जोबनु सुधा पाइ संसारि[1]।
सुख चूकहिं ते महा गंवार।[2]
चंपी[3] जीभ छिताई दंत[4]।
ऐसी बात कहै क्यों संत[5] ॥५१९॥

बिण सौंरसी पुरुष जे[1] आन।
पिता पुत्र तें[2] बंध समान।
तब सुणि दूती दुचिती भई।
अब मो पैज अकारथ गई ॥५२०॥

अब हम नहीं कटक मैं[1] जान।
नाक कान काटै सुलितान (सुलिताण)[2]।
ससि लोप्यौ रवि उयौ[3] आगास[4]।
साथ छिताई सखी पचास ॥५२१॥

चलीं ति रतन[1] लिंग[2] की जात।
दोऊ दूती भई संघात।

---

[५१८] १. क. अइसो। २. श्री. न बाहुरी। ३. श्री. अरु। ४. श्री. सुख। ५. क. कर्म कइ।

[५१९] १. श्री. सुधनु अति संसार। २. क. चूकइ बावरे गंवार। ३. क. चांपी। ४. क. दांत। ५. क. तुतो दूती दुष्ट अनंत।

[५२०] १. क. जो। २. क. मेरही ३. क. एह।

[५२१] १. क. मेरो नहीं कटक महि। २. क. सुरताण। ३. क. रवि-लोप्यौ ससि भयौ। किंतु आगे आता है: जबही जान्यो होत विहान (५२९)। ४. श्री. अकास।

[५२२] १. क. कली रतन। २. श्री. ल्यंग। ३. क. में छंद का उत्तरार्द्ध

वहुत बात तिन कही बनाइ।
जिसै छिताई बहुरि पत्याइ[3] ॥५२२॥

हम तौ देख्यौ तेरौ संतु (सत्तु)।
तैं तौ गह्यौ ग्यान कौ तंतु (तत्तु)।
तो सी नहीं एकचित नारि।
तबहिं लई हम बात बिचारि ॥५२३॥[1]

रची अनूप[1] सुरंग सुत्रधार[2]।
आवत जात न लागै बार।
दूतिन[3] देख्यौ सिव कौ ठाउं।
जौ सुख भयौ अब फाव्यौ दाउं[4] ॥५२४॥

सबै भेदु लै दोऊ नारि।
बाहुरि पहुंचीं कटक मंझारि।
अति सुचिंत[1] (सुचित्त) जी खरी हुलास।
पहुंचीं पातिसाहि कै पास[2] ॥५२५॥

छंदु— कहैं दूतीं रस बिगूतीं बोलि तुम सौं बैन[1]।
हम देहिं सुद्धि करह[2] बुद्धि चलत सजि करि[3] सैन ॥५२६॥

नहीं है, किंतु आगे आई हुई बातें किसने और क्यों कहीं, यह बताने के लिए यह अंश आवश्यक है।

[५२३] १. क. में यह छंद भी नहीं है। किंतु आगे दूतियों को छिताइ ने अलग नहीं किया है, इसलिए इस छंद में आई हुई बात प्रसंग में आवश्यक लगती है।

[५२४] १. क. सुबुधि। २. श्री. सुतिधारि। ३. श्री. दूती। ४. क. मन हरषी उपायो दाउ।

[५२५] १. श्री. सुच्यंत। २. क. में छंद का उत्तरार्द्ध नहीं है। किंतु दूतियों का जो कथन बादशाह से आगे के छंद में आया है, उसकी भूमिका के लिए यह अंश आवश्यक है।

[५२६] १. क. बात तुम्ह सुं बोलि। २. क. करूं। ३. क. तत षिण।

गढ हुते[१] दख्खिण जाहु तख्खिण[२] कोस सात उजारि ।
आदि देवा[३] करत सेवा[४] तहां[५] पकरहु नारि ॥५२७॥

चउपई—गढ ते दच्छिन दिस (दिसा) उजारि ।
तिहि ठां जाइ छिताई नारि ।
सिव पूजा दिन सुंदरि जात ।
पकरहु पातिसाहि परभात ॥५२८॥[१]

आगै दोऊ दूतीं भई ।
तिहि ठां सुलितानहि लै गई ।
जबही जाण्यौ होत बिहान ।
आइ* कियौ सिव कुंड[१] स्नान ॥५२९॥

जबही संपरि[१] मंडप में[२] गई ।
तुरकणि घेरि चहूंधा लई ।
सिव सिव सिव जंपै[३] सुंदरी ।
एकनि[४] सीस सारि भ्वैं[५] परी ॥५३०॥

एकनि[१] कंठ कटारिण[२] हए ।
एकनि डरणि हंस[३] उडि गए ।
मिटैं न अख्खिर लिखे जु[४] सीस ।
जूझीं तहां[५] नारि चालीस ॥५३१॥

---

[५२७] १. क. गढ हतइ । २. श्रो. षन जहां प्रसाद । ३. श्री. दिन मनि देवा । ४. क. सेवइ । ५. क. तिहां । ६. क. पकर्यौ ।

[५२८] १. क. में यह छंद नहीं है, किंतु 'छंद' के अंत में आई हुई शब्दावली बाद में आई हुई चउपई में प्रायः दुहराई गई है, इसलिए यह छंद प्रामाणिक लगता है ।

* चिह्नित शब्द क. में नहीं है ।

[५२९] १. क. कीयौ कुंड जल ।

[५३०] १. श्री. सत्र । २. क. गढ (मढ) भीतरि । ३. क. सिव सिव संपद । ४. क. एकत । ५. क. भइ ।

[५३१] १. क. एकत । २. क. कटारी । ३. क. ऐकनि प्राण उडि । ४. क. मेटइ कूण लिउ । ५. क. झूझी तिहां ।

नाह[1] वियोग[2] पुरष कै भेस।
दुख ही मैं देखिजै सुदेस[3]।
पहिचनाइ[4] जब* दूतिन[5] कही।
जीवति दस दासी सौं गही[6] ॥५३२॥

देखी जबहि छिताईं बाल[1]।
मन मैं[2] हर्षु धर्यौ भूवाल[3]।
आपुण[4] पाछै लई चढाइ।
भयौ सरीरह सुखु अति आइ[5]॥५३३॥

जबही हियौ पीठि सौं लाग[1]।
चाबुक छूटि बिछूटी[2] बाग।
जाणी जबहि छिताई बात।
सुनहि अलावदीन मो[3] तात ॥५३४॥

जी महं पापु न चितवहि[1] साहि।
हौं बेटी परि[2] तेरी[3] आहि।
ऐसौ बचनु सुन्यौ[4] सुलितान।
सीसु ढोरि कै मूंदे[5] कान ॥५३५॥[6]

---

* चिह्नित शब्द क. में नहीं है।

[५३२] १. श्री. नारि। २. क. बिउग (बिओग)। ३. क. दुख ही माहि दूणै दुख। ४. क. पहिचाणइ। ५. क. दूती। ६. क. सुंदरि सुं गई।

[५३३] १. श्री. बान। २. क. जीउ मांहि। ३. श्री. कियौ सुलितान ४. क. आपणा। ५. क. सुख बहु तिहां।

[५३४] १. क. हीउ पाठ सुं लगाइ (राजस्थानी प्रभाव)। २. क. छूटिगो। ३. क. सुणिहौ साहि तु मेरो।

[५३५] १. क. चितहो। २. क. हुं बेटी सम। ३. श्री. तेरैं। ४. कहइ ५. क. मूंदे मूंदे रहे तब। ६. क. में यहाँ और है :

जो तू घालिस मोकुं हाथ। गरौ काटि हुं मरसुं घात।
सब लसकर देख्यौ दुख घणौ। तो लगि झूझ देवगिरि तणौ।

पूर्ववर्ती दो चरणों में आए हुए 'सीस ढोरि कै मूंदे कान' के बाद ये चरण असंगत और अनावश्यक लगते हैं।

जा[1]लगि मैं कीनी ठकुरई[2]।
सोऊ[3] बात न सीरध[4] भई।
लीलत[5] सांपु छछूंदरी जिसौ[6]।
भयौ उपखाणौ[7] मोकौं[8] तिसौ ॥५३६॥

अति सु दुक्ख[1] सुलितानहि भयौ।
जानिकु[2] रतन हाथ ते[3] गयौ।
पातिसाहि जी[4] भयौ उदास[5]।
आस न पूजी[6] भयौ निरास ॥५३७॥

जौ हुं (हौं) छांडु (छांडौं)[1] छिताई नारि।
होइ अलोक पुहुमि मैं[2] गारि।
हरमणि मांझ गयौ लै साहि।
आई सुंदरि देषिण[3] ताहि[4] ॥५३८॥

नाह बियोग दुखित अति घनी।
तऊ बियोगिनि बनिता बनी।[1]
ताकौ रूप देखि तुरकनी[2]।
मदन बान जी मैं अति हणी[3] ॥५३९॥

सबनि तनै चित यह[1] व्यौहार।
हम किन पुरुष करीं[2] करतार[3]।[4]

---

[५३६] १. क. जा। २. क. कटकई। ३. क. सोई। ४. क. सीरथ। ५. क. गिल्त। ६. क. तिसो। ७. श्री. पषानौ। ८. क. मो कुं।

[५३७] १. श्री. अति सुदुष सुणि। २. क. पायो। ३. क. हाते। ४. क. जांउ। ५. श्री. निरास। ६. क. पूरी आस।

[५३८] १. श्री. छाडि। २. क. देस माहि। ३. श्री. देषन। ४. क. तिहां।

[५३९] १. क. में छंद के पूर्वार्द्ध के स्थान पर है :

रूपवंत देषी पदमणी। निंदा करइ सबे आपणी।

परबस बंदि तुरकन के परी। नाह विओग अति दुख भरी।

किंतु छंद में उत्तरार्द्ध के कथन भी बहुत कुछ इन्हीं चरणों के आशय के हैं। २. श्री. तुर करी। ३. श्री. व्यापी ते खरी।

भूली कुंअरि पग रेख ज[५] करै।
नैन धार पग ऊपरि[६] परै ॥५४०॥

अति बियोग[१] परबसि[२] पछिताइ।
भोजन करै ण कछू सुहाइ[३]।
जिन ते[४] यह उपाउ सब* भयौ।
द्वै दासी[५] निसुरति लै गयौ ॥५४१॥

कवियण कहै नराइनदास।
पठई साहि छिताई पास (पासि)[१]।
बिनती करि समुझावहिं तास।[२]
बोलति[३] बोल दक्खिनी[४] भास ॥५४२॥

तूं है कुंवरि[१] हमारी धणी।
हम तौ दासि रामदेव तणी।
यह[२] तौ बात करम बसि पड़ी[३]।
अब दुख छोड़ि[४] छिताई तिरी ॥५४३॥

तैं एते सं तनु गुण[१] हरयौ।
न्याइ बियोगु बिधाता कर्यौ।[२]

---

[५४०] १. क. सबहि नीत चित। २. क. हमहि पुर कांइ न भई। ३. श्री. भरतार। ४. क. में यहाँ और है : देखी रूप ब्यामोहित भई। यह दुख इनके दीन्ही दई। ५. श्री. भुम्मि रेख सो। ६. श्री. पाईनि पर।

* चिह्नित शब्द क. में नहीं हैं।

[५४१] १. क. बिउग (बिओग)। २. श्री. परबस। ३. क. बिकसइ कंपइ घरी धुजाइ। ४. क. की। ५. श्री. दूती।

[५४२] १. क. में यहाँ और है :

कहौ बात जाई समझाइ। अति दुख करइ रहावुं जाइ।

किंतु प्रसंग में ये चरण अनावश्यक लगते हैं। २. क. गई नारि छिताइ पासि। ३. क. बोलइ। ४. श्री. देस देस की।

[५४३] १. क. तो तो आहि। २. क. इह। ३. श्री. कर्मगति करी ४. क. छाडि।

तैं सिर गुंथी जु बैनी माल[3] ।
लाजनि गए भुयंग पयालि[4] ॥५४४॥

बदन जोति तैं ससिहर[1] हरी ।
तू सुख क्यौं पावहि[2] सुंदरी ।
हरे हरिण[3] लोचन तैं नारि ।
ते म्रिग सेवैं अजौं[4] उजारि ॥५४५॥

जे गज[1] कुंभ तोहि कुच भए ।
ते गज देस दिसंतर[2] गए ।
तैं केहरी मंझस्थलु[3] हऱ्यौ ।
तौ हरि ग्रेह[4] कंदल[5] नीसऱ्यौ ॥५४६॥

दसन योति (जोति)[1] ते दारिम भए[2] ।
उदर फूटि ते दारिउं गए[3] ।
कमल बासु लई अंग[4] छिडाइ ।
सजल नीर ते रहे[5] लुकाइ ॥५४७॥

जइ तैं[1] हरी हंस की चाल ।
मलिन मानसर गए मराल ।
होइ[2] संत माननी मान[3] ।
तजै[4] देस कै छाडै जीन (जान ?)[5] ॥५४॥[6]

---

[५४४] १. श्री. तैंत्रिय संतनु को । २. क. में यहाँ पुनः है : इह तो बात करम बसि पड़ी । अब दुःख छांड़ि छिताई तिरी । (तुलना छंद ५४३) ३. क. तइ कच कावरि कीन्हे वारि । ४. श्री. भुजंग पताल ।

[५४५] १. क. सीस की । २. क. पावइ । ३. श्री. मृगनि । ४. क. अजूँ ।

[५४६] १. क. जग । २. क. देस देस तजि । ३. क. हरि कुंमध्य स्थल । ४. क. ते हरि गह । ५. श्री. कंद । ६. क. नीकलउ ।

[५४७] १. श्री. ज्योति दाऱ्यौ बिंब । २. क. भई । ३. क. गई । ४. क. तउ लीउ । ५. क. सजले जल माहि ।

[५४८] १. श्री. तैं जो । २. श्री. हौहि जे । ३. श्री. मान कै मलीन ।

रिस करि[1] कियौ छिताई रोस।
अली यौं आनि लगावहु दोस[2] ॥५४९॥

यह उपाउ सब तुमही कर्यौ।
अरु परबित्तु लगावहु[1] हर्यौ।[2]
दासी यौं राखी समुझाइ।
बहुत बात को कहै बढ़ाई[3] ॥५५०॥

दक्खिन[1] आन फेरि आपणी।
घर पहुंच्यौ[2] ढिल्ली कौ धनी।
जैसे साहि* छिताई लई[3]।
प्रगटी देस दिसंतर भई ॥५५१॥

पाप द्रिष्टि छाडी[1] नरणाथ।
सौंपी राघौ चेतनि हाथ।
बारह सहस टका दिन मान।
आपु न्यौंधु बांध्यौ[2] सुलितान ॥५५२॥[3]

देखन[1] दक्खिन गुन की आस।
अतु[2] सौंपी पातुर पंचास।
तिण संगीत सधावति[3] रहै।
बिधना कर्म दयौ[4] दुखु सहै ॥५५३॥

---

४. क. तिजै। ५. श्री. जीन। ६. श्री. में यहाँ छंद ५४४ की पंक्तियाँ पुनः आई हैं, केवल उसके 'तैं त्रिय संतन के' स्थान पर यहाँ है 'इन सबहिन को तैं;।

[५४९] १. क. दुख तजि। २. क. में छंद की यह पंक्तियाँ छंद ५४४ के पूर्वार्द्ध के बाद ही आ गई हैं, किंतु वहाँ इसकी असंगति प्रकट है।

[५५०] १. क. लगावइ। २. क. में छंद के पूर्वार्द्ध की पंक्तियाँ छंद ५४४ के पूर्वार्द्ध के बाद आ गई हैं; किंतु वहाँ इनकी असंगति प्रकट है।

[५५१] १. क. दष्यण। २. क. गयो ढीली। ३. क. गही।

[५५२] १. क. छंडी। २. क. बारइ। ३. क. दीन्यु नोध न आप।

* चिह्नित शब्द क. में नहीं हैं।

[५५३] १. क. देष्ये। २. श्री. अरु। ३. क. सिषावत। ४. क. दीउ।

जे पंखी या[1] भाट दरवेस।
जिन फिरि देखे[3] देस बिदेस।
तिनहि देइ[3] दिन मान प्रबाह।
ज्यौं[4] सुधि लहै सौंरसी नाह ॥५५४॥

इण[1] विधि रहै छिताई बाल।
लही सुद्धि सौंरसी भुवाल।
अलादीनु[2] जीवत लै गयौ।
सुणत सौंरसी जोगी भयौ ॥५५५॥

चंद्रनाथ[1] चंद्र गिरि निवास[2]।
तासौं[3] कियौ जोग अभ्यास।
तासौं दरसु सौंरसी कियौ[4]।
ताकै सीस[5] सिध्ध करु दियौ ॥५५६॥

सिध्धु होहु जंपै जोगिंद।
सुफल बाच तो फुरे[1] णयँद (णरिंद)।
गुर कौ बचनु फुरै जइ[2] जइ मोहि।
मन इच्छा बिह पूरइ[3] तोहि[4] ॥५५७॥

ग्रंसौ बचनु सिध्ध जब[1] दयौ।
राजु छाड़ि तब जोगी भयौ।
स्निध्ध[2] स्याम सुभ सींगी गरैं।
सुंदरु सुघरु,[3] बजावै खरैं ॥५५८॥

---

[५५४] १. क. आ। २. क. ते फिर देखइ। ३. तिणइ देहि। ४. क. जौ।

[५५५] १. श्री. इहि। २. क. पातिसाहि।

[५५६] १. क. चंद्र नरनाथ। २. श्री. चंद्रगिरि वास। ३. क. सुरसी। ४. क. सिधि साधक को दरसण भयो। ५. क. मस्तक हाथ।

[५५७] १. क. सफल वचन तोहि होइ। २. श्री. जौ। ३. श्री. बर पुरऊ। ४. क. मोहि।

[५५८] १. क. माथइ सिध सिध कर। २. क. निगम। ३. क. सघर।

मुद्रा स्रवननि खरे[1] सुढार[2] ।
चमकहिं चंद्रक्रंति (चंद्रक्रांति)[3] आकार[4] ।
जटा बंधि सिर खप्परु धर्‌यौ ।
मानहु गोप (गोपि) चंदु औतर्‌यौ ॥५५९।

पहिरी[1] कठिन बज्र कोपीन ।
सोहै कंध दक्खिनी बीन ।
उज्जल कोमल अंगि[2] बिभूति ।
जटा जूट बांधौ[3] सिर[4] सूति[5] ॥५६०॥

साइर-सीपि नकस[1] पावरी ।
अरुण अदित सम मौजैं खरी[2] ।
नारि बियोग[3] न नगरु सुहाए ।
बैठै[4] बाग बावरी[5] जाइ ॥५६१॥

भूल्यौ सौ चितवै बेकाज[1] ।
व्याकुल अंग[2] गवाऐं[3] लाज ।
धोए[4] बस्त्र न पहिरै अंगि[5] ।
बैठे मलिन मानसनि सिंग[6] (संगि)[7] ॥५६२॥

भोजनु स्वाद जीभ नवि[1] लहै ।
ऐसै[2] परम बियोगी[3] रहै ।

---

[५५९] १. क. स्रवन । २. श्री. सुढाल । ३. श्री. चंद्रमाल । ४. क. प्रकार ।

[५६०] १. क. पहिरइ । १. श्री. अंग । ३. क. बंधी । ४. क. सि । ५ क. जूट ।

[५६१] १. क. सीस संवारि पगे । २. क. असित चोजै भरइ । ३. क. बिउग (बिओग) । ४. क. इइसइ । ५. क. बागरी ।

[५६२] १. क. बिन काज । २. क. नइन । ३. क. गंवाई । ४. क. धोइ । ५. श्री. अंग । ६. क. मलन मानस । ७. श्री. संग ।

[५६३] १. श्री. करत न स्वादहि । २. क. इसुं (इसौ) । ३. क. बिउगी

भावै न सुन्यौ श्रवन सिंगारु[४]।
यह बिरही नित नौ ब्यौहारु[५] ॥५६३॥

चात्रिग बचन[१] सुहाइ न कान।
लागहिं अंग बिसारे बान[२] ।[३]
ब्यापहि कोकिल बचन[४] सहारि[५]।
लागो रहै सबद सुनि तार[६] ॥५६४॥

जोगी देस दिसंतर बहै[१]।
मन उचाट कह (कहूं) नवि[२] रहै[३] ।
अति बियोग जी[४] खरौ[५] उदास।
बिषइ समान बिषइ को[६] बास ॥५६५॥

फिरि बन[१] धरणि दई दाहिनी।
लहै न सुद्धि छिताई तनी ।
गयौ जटासंकर की जात।
तहां सुनी जोगी पैं[२] बात ॥५६६॥

सुंदरि तनौ[१] भेदु सबु कह्यौ।
सुनत बात[२] ततखिण सामह्यौ ।
बाट घाट सब बूझी[३] ताहि।
मनु उडिबे कौ[४] पंख न आहि ॥५६७॥

(बिओगी)। ४. श्री. स्यंगारु। ५. क. जोगी भयो सब वण्यो सरीर। ए सब बिरही बेष बिचार। तुक-वैषम्य दर्शनीय है।

[५६४] १. क. सबद। २. क. बिरह बेदन नवि जाणइ सार। ३. क. में छंद के ये प्रथम दो चरण परस्पर स्थानांतरित हैं। ४. क. सबद। ५. श्री. सरीर। ६. श्री. लागहि अंग बिसाले तीर।

[५६५] १. क. भयौ। २. श्री. जी उचाट मनु कहुंव न। ३. क. रहौ। ४. क. बिउग (बिओग) मन। ५. क. खरी। ६. श्री. बिष समान चंदन कौ।

[५६६] १. क. फिर सब। २. क. सुंदर की।

[५६७] १. क. जोगी एक। २. क. मिली बुधि। क. पूछी। ३. क. कूं।

दीरघ मजल चले करतार[1]।
पहुते (पहुतै)[2] जाइ नगर चंदवारि[3]।
कांठै[4] कालिंद्री नइ[5] बहै।
खिन इक बिरमि सौंरसी[6] रहै ॥५६८॥

पणघट पाणि* नगर पैसार।
तिहां बिउगी (बिओगी) कियो उतारि (उतार)।
चिहुंवा[2] चितै चल्यौ[3] जोगिंद।
मानहु घालि काम को फंद[4] ॥५६९॥

तिहिं ठा जिते पुरुष अनु[1] णारि।
जोगी चल्यौ मइन सरु[2] मारि।
अंब कुंभ सिर खप्पर धरै।
रूप रंग सब गुन बिस्तरै[3] ॥५७०॥

चल्यौ सु जाइ रसिक परवीन[1]।
त्रिबिध फंद जनु बनसी मीन[2]।
एकति एक करस सिर[3] दियै।
एक दुहू[4] कर राखैं हियै ॥५७१॥

एकति एक रही हाथ[1] उर माइ[2]।
बरबट चितु जोगी तन जाइ।
एक जम्हाइ रु तोरहि[3] अंग[4]।
तिन तन ब्याप्यौ अगम[5] अनंग ॥५७२॥

---

[५६८] १. श्री. मजलि चल्यौ रितार। २. श्री. पहुंच्यौ। ३. श्री. चंदवार। ४. क. कंठै। ५. श्री. नदी। ६. क. बिउगी (बिओगी)।
* चिह्नित शब्द क. में नहीं है।

[५६९] १. श्री. तिहिठा आवागवनुवंतार। २. श्री. चहुंघा। ३. श्री. चलै। ४. श्री. कामदेव नर इंद।

[५७०] १. श्री. अरु। २. क. सिर। ३. क. भू कामनी बाण मन हणी। बिर्चाबिच नाद बचन पिक बली। तुक वैषम्य द्रष्टव्य है।

[५७१] १. क. सलिल जात प्रामरी प्रवीन। २. क. बेधी जाणि सुबनसी बीण। ३. क. सीस धरि। ४. क. दोउ।

[५७२] १. क. खांभ गहइ। २. क. माहिं। ३. क. एक कामिनी ति कोरौ। ४. क. आंग। ५. ज. देखत व्यापी अधिक।

एकति कर तोरहिं कामिनी[1] ।
काम जि कोपि हियै मैं हनी[2] ।
एक नागरु नौतम[3] निकलंकु ।
महा मनोहरु ज्यौं[4] मयंकु ॥५७३॥

राज चिह्न[1] राजनि कौ अंग[2] ।
जाने लीनु (लीनो उतार औतार)[3] अनंग[4] ।
कौन भांति भयौ याहि वियोग[5] ।
भर जोबन क्यौं[6] साध्यौ जोग ॥५७४॥

तिहि पुर पतिव्रता जे नारि ।
ते जिय मैं यह कहैं बिचारि ।
जौ यह क्रिपा[2] बिधाता करै ।
ऐसौ सुतु हम[3] घर अवतरै ॥५७५॥

चितवहिं बिभिचारिनि चितु लाइ[1] ।
इसौ छयलु बिहि मिलवै आइ[2] ॥
ते सब चितवहिं मनह[3] बिचारि ।
यह न होइ नर की उनहारि ॥५७६॥

---

[५७३] १. क. एकति कुंभ कुंभ तिहां तणे । २. क. हीइ अति हणे । ३. क. एक नोतन नारि । ४. क. मन ।

[५७४] १. श्री. राजनीत । २. क. राज सब चंग । ३. श्री. देखत व्यापी अगम अनंग (तुलना ० ५६२) । ४. क. उनांग । ५. क. कुण (कौण) पाप थीइ आहि बिउग (वियोग) । ६. क. भरि जोबन माहि ।

[५७५] १. क. तेचित माहि इम धरइ बिचार । २. क. जो रे भया । ३. क. म्हां घरे (राजस्थानी प्रभाव) ।

[५७६] १. क. जे कामिनी कुटिल के राइ । २. क. एह छय मिलवइ किन राइ । ३. क. चितवहि विभजावनी ।

बिहि संयोगह भयौ बियोग[१]।
तिहि दुख[२] मदन धर्यौ तन[३] जोग ॥
है अति गुनी चतुर मति[४] प्रौढ़।
भावइ[५] नहीं चिकनिया मूढ़ ॥५७७॥

ऐसै सौं जौ हूइ (होइ) संजोग।
जनम जिये कौ तौ सुख भोग।[१]
जे छयल्ल अति छीनी[२] देह।
करै[३] चतुर तिनही[४] सौं[५] नेह ॥५७८॥

कान खुजावहिं नैन घुमाइ।
लै उसास ते खरी जम्हाइं ॥[१]
निरखि नखनि सिर ब्योरहिं[२] बार।
ब्यापै जिनहिं[३] काम की झार ॥५७९॥

देखहिं[१] छुद्र घंटिका छोरि।
तन अइठइ (अइठहिं)[२]कर अंगुलि फोरि[३]॥
घूंघट काढहिं[४] खरी[५] लजाइ।
चलहिं ति[६] नेउर[७] सबद सुनाइ ॥५८०॥

---

[५७७] १. क. जोउ विरही तसकीउ (कीओ) विउग (बियोग)। २. क. तिण धरि। ३. क. तन। ४. क. जेती सुरतर सरंग। ५. श्री. भेदै।

[५७८] १. क. में छंद का पूर्वार्द्ध नहीं है, किंतु इसके बिना प्रसंग क्षति स्पष्ट है। २. श्री. ते छींनै। ३. क. करइ। ४. श्री. चंपि चतुरणि। ५. क. सुं।

[५७९] १. क. कामलता कांम षुंजाइ। नयन धुलावइ खरी लजाई। २. श्री. निरखहिं नखनि निचोरहिं। ३. क. जबहि। ४. क. छारि।

[५८०] १. क. देखइ। २. श्री. औटहिं। ३. क. में यहाँ और है: पर बालक कुच ऊपरि धरइ। जहि कपोल मुख चुंबन करइ। किंतु इन चरणों की स्थिति स्पष्ट नहीं है। ४. क. काढइ। ५. क. कछु। ६. क. चले ते। ७. क. नेपुर।

मुरि मुसिक्याइ चलत चित हरैं[1]।
नइन[2] पास बिषयन के करैं[3] ॥
अधर सधर सुंदरि के पीयैं।
बनिता और सुहाहिं न हियैं[4] ॥५८१॥

नारि सुमिरि[2] भौ खरौ उदास।
तिहि दिन तिहि पुर कियौ उपास[3] ॥
अति बियोग ब्यापे उर बान[4]।
अधिक सूर सौरसी सुजान[5] ॥५८२॥

ढिल्ली नगर णिकट बींझौन[1]।
तिहिठां कियौ सौरसी गौन[2] ॥
बनु बर्णौं तौ[3] कथा बढ़ाइ।
सावज पंखी[4] कहन न जाइ[5] ॥५८३॥

सघण ससोभित सफल[1] असेस।
तहां बियोगी[2] कियौ[3] प्रवेस ॥
बन बिश्राम कियौ जोगिंद[4]।
किय उदोत निसि पूरण[5] चंद ॥५८४॥

---

[५८१] १. क. मुंह मुसक्याइ चलति चित हरी। २. श्री. नरुण। ३. श्री. पसीजै विषया करइ। ४. क. में छंद का उत्तरार्द्ध नहीं है किंतु वह प्रसंग में आवश्यक लगता है।

[५८२] १. क. समरि भयौ। २. क. ता। ३. क. निवास। ४. क. बिउग (बियोग) अनु व्यापइ काम। ५. क. सीता हरण रांम श्रीरांम।

[५८३] १. क. नकट को जोन। २. क. तिहां बिउगी कीउ गुण (गौण)। ३. क. वन वर्णंतु (राजस्थानी प्रभाव?)। ४. क. सिंघ। ५. क. नहिं आइ।

[५८४] १. श्री. सघन ससे मृग सुवर। २. क. तिहां बीउगी (बिओगी) ३. क. कीउ (कीओ)। ४. क. जोग्यंद्र। ५. क. भयो उदो संपूरण।

चंद्र किरणि काया पर जरी।
लीनी बीन सुमिरि[१] सुंदरी ॥
इकु बिषई अनु[२] चतुर सुजान[३] (सुजाण)।
ता सम बहुरि[४] न दूजौ आन ॥५८५॥

इहि[१] बिधि नाद कियौ जोगिंद।
चित मोह्यौ चलि सक्यौ न चंद[२] ॥
बंस सबद सुर[३] सुधा समान।
म्रिगनि किए सुनि ठाढ़े[४] कान ॥५८६॥

बिष तजि बिषई भए फुणिंद[१]।
खेलत फिरहिं[२] सौंरसी संग ॥
बिरही बिरहु बजायौ[३] खरौ।
सुनत भुजंग[४] बेषु[५] परिहर्‌यौ[६] ॥५८७॥

म्रिग सुत पियहि सिंघिनी[१] खीरु।
नाद लुब्ध[२] भयौ बिकल सरीरु ॥
हरि सुत दूध म्रिगी कौ पियै[३]।
बन बिपरी [त] बेष देखियै[४] ॥५८८॥

---

[५८५] १. क. समरि। २. श्री. अरु। ३. क. सुंदर जाणी। ४. क. तासम पहमि (पुहमि)।

[५८६] १. क. तिहि। २. क. भयो उदो संपूरण चंद (तुलना० ५८४) ३. श्री. बंस नाद सुनि। ४. क. मांगी बीन थाकरि।

[५८७] १. श्री. भुजंग। २. क. देखित फिरइ। ३. क. बिरहिणि बिरह व्यापइ। ४. क. तिह संगति सर्प्प। ५. क. बिष्णु। ६. क. में यहाँ और है: पसु जीव निर्भय भया चाक। नउरइ भो भोगणी निसंक। तुक वैषम्य के अतिरिक्त ये चरण प्रसंग में व्यवधान उपस्थित करते हैं।

[५८८] १. क. पीवइ सिंघण। २. क. स्वाद। ३. क. षीर हिरण को पीइ। ४. श्री. महासिध्धु परतष देषियै।

जननि न जानै[1] सुत पहिचानि।
बालकु सकै न जगणी जानि॥
पसु परिवारु[2] सर्ब बस कर्‌यौ[3]।
इहि बिधि नाद चतुर चित हर्‌यौ[4] ॥५८९॥

बेधे नाद स्वाद (साद)[1] सुख आस।
भ्रमि भूले सो आस पियास[2] ॥
जोगी एकु अपूरब कियौ।
रीझि[3] त्यागु पसुनि कौ दियौ ॥५९०॥

म्रिगनि कंठ[1] निर्मोलिक हार।
बगसे तत्खिन[2] उचित उदार॥
हेमु जरित ते हीरा लाल।
रोझनि उरि[4] पहिराए माल[5] ॥५९१॥

कंठ स कंठसिरी सांकरी[1]।
नउग्रही[2] निर्मोलिक जरी[3] ॥
कुंडल चौकी कटि मेखला।
पहिराए पसु पूजी कला ॥५९२॥

बगसि पसुनि को त्यागु असेस।
पुनि ढिल्ली पुर कियौ प्रवेस॥
जबहिं साहि सुंदरि ही हरी[1]।
तबही पैज छिताई करी ॥५९३॥

---

[५८९] १. क. जननी न सकइ। २. क. सीरस। ३. क. करे। ४. क. हरे।

[५९०] १. क. श्री. स्वाद। २. क. भ्रमि भ्रमि भूलि भूष तिस पास। ३. क. रीझत।

* चिह्नित शब्द क. में नहीं हैं।

[५९१] १. क. मृग गलि कंठ। २. क. बगस्यौ तिहठां। ३. श्री. उर। ४. क. प्याल।

[५९२] १. श्री. कंठ सिरी रु सूरसरि करी। २. श्री. नवग्रिही। ३. क. अति जरी।

[५९३] १. क. पाकरी।

जुतौ[1] बजावै मेरी बीन।
हौं तौ हौउं तासु[2] की लीन॥
करि खप्परु इकसबदी भयौ।
ढूंढतु[4] नाइक कैं घरि[5] गयौ॥५९४॥

कछू चिन्हु तहं[1] जोगी लह्यौ।
तबहिं[2] विचारि घरी द्वै[3] रह्यौ॥
नाइक निपुन नाउं गोपाल।
भुवन सुसकल[4] भरथ्थ भोवाल॥५९५॥

जाणहार (जाणणहार) के भए उपाइ।
तब तिणि[1] पठवी[2] बीन मंगाइ॥
पचि हार्‌यौ बुद्धि करि घनी।
टटै न बीन छिताई तणी॥५९६॥

चमकि तु चित्त[1] तूंबरा तोरि[2]।*
छोरि छिताई दई उतारि॥*
फिरतु गयौ जोगी सौंरसी।
रूपवंतु जनु[3] पूरण[4] ससी॥५९७॥

जोगी भेष भाष दक्खिनी।
नाइकु निपुण सुजाण्यौ[1] गुणी॥
सब नटवनि मिलि बूझन लयौ।
इहि दिसि क्यौं तुम[2] आवन भयौ॥५९८॥

---

[५९४] १. क. जो तु (तौ)। २. क. हुंतो हुं। ३. श्री. कर। ४. क. चितवत। ५. श्री. घर।

[५९५] १. क. तिण। २. क. तिहां। ३. क. कछू दिन। ४. श्री. सुकल।

[५९६] १. श्री. तिहि। २. क. पठवी।

* इन दो चरणों का तुक दोनों प्रतियों में नहीं है।

[५९७] १. क. चूमको तांति। २. श्री. महा सरसरी। ३. क. जांणे। ४. क. पूनिम।

[५९८] १. श्री. सुजानै। २. क. इह विधि कइसइ।

नाद स्वाद (साद) बाजै[1] ब्यौहार।
जानहि[2] जोगी कछू विचार ॥
तब आइसु जांपइ[3] मुसक्याइ।
हौं जानौं[4] घाघरी बजाइ ॥५९९॥

बीन जु आछि[1] छिताई तनी।
लै देखी जोगी दक्खिणी[2] ॥
छुवतह भौ[3] संतोष सरीर।
ग्रीषम त्रिपा लहै जनु[4] नीर ॥६००॥

त्यौं सुख भयौ सौंरसी हियै[1]।
जनिकु त्रिया आलिंगनु दियै[2] ॥
मुंदरी लअै[3] सिया सुख जिसौ।
जिय सुख भयौ[4] सौंरसी तिसौ ॥६०१॥

ठाटी जोगी जान (जानु) निबंध।
सारि संवारि (संवारी) करी सुबंध ॥[1]
जब तिहि[2] बाम कंध पर[3] धरी।
जनु ता[4] मिली छिताई तिरी ॥६०२॥

[1]तिहि बिधि सुघर सरसु[2] सुरु लयौ[3]।
नाइकु मुर्छि धरणि परि गयौ[4] ॥६०३॥

---

[५९९] १. श्री. जानै। २. क. जाणजं। ३. श्री. बोलै। ४. क. हुं जानु।

[६००] १. क. ज आहि। २. क. दष्यणी। ३. क. देखत बीण। ४. श्री. ग्रीषम रितु ज्यौं सीतल।

[६०१] १. क. भयो संतोष हरष मनि हीइ। २. क. जानि सुंदरि आलिंगन दीई। ३. क. लहइ। ४. क. देखत बीण।

[६०२] १. क. थाट पाट करी सुनिध। बंधन बंधा तंति नबध। २. क. जबहि। ३. क. परि। ४. क. जाने।

[६०३] १. श्री. में इसके पूर्व और है : तिहि बिधि जोगी राखी तान। महा सुघरु संकरहि समान। छंद ६०३ के होते हुए ये चरण अनावश्यक लगते हैं। २. क. नाद सुस्वर। ३. क. लए। ४. क. सबे मूरिछा गए।

दासी दिन[१] कौ[२] जाती जोइ ।
इण पहिं बीण कि ठाटी होइ ॥
और दिननि[३] कै धोखै गई ।
बीन तान गुण जी महि[४] हई ॥६०४॥

देखी मूरति बरणु (बर्णु) बिचारि ।
पहुंची[१] जहां[२] छिताई नारि ॥
कही सबै जोगी की बात ।
भौ[३] आनंदु छिताई गात ॥६०५॥

तन मन चित्र बिचित्र बिचारि ।
कही सुमुख मुद्रा उनहारि ॥
जिण[१] बिधि बीण बजाई जाण ।
दासी कहे सबै सहिनाण[२] ॥६०६॥

नइणे जल भरि[१] लेइ उसास ।
मनि आनंद ऊपनी[२] आस ॥
स्रावन भादौ जि[३] घनु[४] झरै ।
अंसु (अस्सु ?) पात[५] त्यौं[६] बाला करै ॥६०७॥

सैंदुर सम[१] सुंदरि के नैन[२] ।
बिदुरे[३] हियै न बोलै[४] बैन ॥
अंचलु लै मुख पोछै[५] सखी ।
रहहि नैन तो ह्वैहैं दुखी[६] ॥६०८॥

---

[६०४] १. क. नित का । २. क. कत । ३. क. तिण दिन बीत । ४. क. मन मांहि ।

[६०५] १. श्री. पहुंची । २. क. तिही । ३. क. भयौ ।

[६०६] १. श्री. जिहि । २. श्री. सहिदान ।

[६०७] १. श्री. नैन सजल करि । २. श्री. चित आनंद ऊपजी । ३. श्री. जैसे बन । ४. क. जल । ५. क. अश्रुपात । ६. क. ते ।

[६०८] १. क. सिंदूर समें । २. श्री. बैन । ३. श्री. बिदुरी । ४. क. बोलै । ५. क. मुंह पूछइ (पोछइ) ६. । क. रहो हां सुन्दरि वहु क्या झखै ।

उठइ मुगध मुख धोवौं नीर[1] ।
कितौकु भौ तो दुख्ख[2] सरीर ॥
सीता रामहि[3] भयौ बियोग[4] ।
दुष सहि फुणि भयौ संजोग[5] ॥६०९॥

नल दमयंती भयौ बियोग ।
तू मन साधहि कितौकु सोगु[1] ॥
कथा पाछिली जाइ न गिणी ।
भयौ सरापु जख्खि जख्खिनी ॥६१०॥

अब तूं अपनै मनह बिचारि ।
छाडहि सोगु छिताई नारि ॥[1]
कहै छिताई लेइ उसास ।
मोहि नहीं जीवन की आस ॥६११॥

तां लगि सखी रुदनु मैं कियौ ।
नैननि सींचि बुझायौ[1] हियौ ॥
निहचै चित चिंता पिय ध्यान[2] ।
बिरहानलु बाध्यौ[3] असमान ॥६१२॥

लागी अंग[1] अनंग दवारि ।
हिदै सुबल मु (मो)[3] लए उबारि ॥

---

[६०९] १. श्री. हियै निहारि । २. क. कहा दुख तो भयो । ३. क. रामइ । ४. क. विउग (बियोग) । ५. क. भर मैं साध्यो जोग ।

[६१०] १. क. तुं माणस तुं किती एक जोग । २. क. सरप ।

[६११] १. क. में छंद का पूर्वार्द्ध नहीं है : प्रसंग के लिए यह अनिवार्य है ।

[६१२] १. क. नइन सी बूझउ । २. श्री. पिउ त्यौं ज्यंत्यौं धन । ३. श्री. ब्यापौ ।

[६१३] १. क. लागी हीइ अंग । २. क. दुआर । ३. क. हीइ सुं बाल भली । ४. क. तां लगि सखी रुदन मइ कीउ । नइन सींचि बुझउ हीउ । (तुलना० ६१२) ।

तां लगि नैननि ढार्‌यौ नीरु।
जरै ग ज्यौं सौंरसी सरीरु[४] ॥६१३॥

मैन चोर तूं तब कत गयौ[१]।
जब संजोगु नाह सौं भयौ॥
तब जानती[२] तेरी अधिकई।
अब तैं[३] काम दिखाई दई[४] ॥६१४॥

निबलु होइ नलिनी भरतारु।
तौ निअ आपनु परै[२] तुसारु।
तौ अति सुरत (सुरित) सीत को गनै।
जौ बिधु रवि प्रगटै आपनै[३] ॥६१५॥

होइ सुदिनु जो निपट[१] अनाथ।
ताकौ कौन उठावै[२] हाथ।
करी कलप कछु[३] आसा भई।
पुणि[४] दासी देखन पाठई[५] ॥६१६॥

---

[६१४] १. क. मो मन चित कत भयो। २. क. तो जाणुं। ३. क. तां कांइ। ४. श्री. में यहाँ और है :

तब तौ तोहि जानती बात। जब तूं त्रास दिखौतौ गात॥
तन मन प्रान लगए मोहि। अैसी यह न बूझियै तोहि॥
कहा करत हो ए अपराध। अैसे क्रम्म करैं क्यौं साध॥
पाप पुन्य डरु नाहीं तोहिं। बरबट त्रास दिखावै मोहिं॥

इन दोनों छंदों में पूर्ववर्ती छंद की बातों का ही अनावश्यक विस्तार है, इसलिए ये दोनों छंद प्रक्षिप्त लगते हैं।

[६१५] १. श्री. निहचल होइ नलिनि। २. क. तु (तौ) अंबुजिन जालइ। ३. क. में छंद के उत्तरार्द्ध के स्थान पर केवल है : ता दुख अतिहि छिताई भयौ।

[६१६] १. क. होइ ज पुरुष त्रिया। २. क. तिणकुं (कौ) कुंण (कौण) उचावइ। ३. क. करि पलाप कुछु। ४. क. तन। ५. क. परिठई।

आस लुब्ध ह्वै भाष्यौ[1] दीण।
जिहि जोगी[2] यह ठाटी[3] बीण।
सो धुं (धौं)[4] कौतु कहां[6] कौ आहि।
घरु घरु करि अब सोधुं (सोधौं) ताहि[7] ॥६१७॥

ठाटी[1] बीण नाइकहि[2] सुनाइ।
तब[3] जोगी चेतनि कै जाइ।
तब ही चेतनि रावरि चल्यौ।
निकसत पौरि सौंरसी मिल्यौ ॥६१८॥

जोगी भेष को भिख्खकु[1] आहि।
चेतनि चितै रह्यौ मुंह[2] चाहि[3]।
जबहि बइण[4] जोगी बिस्तर्यौ।
सुनतु चित्तु[5] चेतनि कौ[6] हर्यौ ॥६१९॥

मधुर बचन बौल्यौ[1] जोगिंद[1]।
मोहि मिलाओ साहि[3] नरिंद[4]।
तब चेतनि लै चल्यौ संघात।
पूछतु प्रगट पाछिली बात ॥६२०॥

---

[६१७] १. क. आस लवध जो जंगइ। २. क. जोग। ३. श्री. ठट्यौ। ४. श्री. सुधौ। ५. क. कुंग (कौण)। ६. श्री. केहा। ७. क. सोधुं जाइं जाइं।

[६१८] १. श्रां. ठटी। २. क. नाइकइं। ३. क. कुणि (राजस्थानी प्रभाव)।

[६१९] १. कु (को) भक्षक। २. क. चेतन मुख जोगी को। ३. क. मैं यहाँ और है : निकसत पवंरि सुरसी मिल्यौ। (तुलना० ६२०)। ४. श्र'. वचनु। ५. बन्नन। ६. क. कुं (कौ)।

[६२०] १. क. बोलैं। २. श्री. जोग्यंद। ३. क. मोहि मेटावइ म्लेछ। ४. श्री. नन्यंद।

गयौ राखि बाहिर[१] दरबार।
सुरतांण सुं (सौं)[२] जनाई[३] सार।[४]
जोगी एकु अपूरबु आहि।
आइसु पावुं (पावौं) ल्यायुं (ल्यावौं) ताहि[५] ॥६२१॥

वस्तुबंध-कहै चेतनि[१] सुनहि[२] सुलिताण।
सिध्ध जोग (जोगि) सो बहु गुनी[३]।
गरै सुघरु सुंदरु[४] सुजाणु[५]
राजपौरि[६] राजा[७] बइट्ठौ॥
बोलतु बचन सु अमिय रस चितइ चित्तु हरि लेइ।
जौ आपुन फुरमाइयै दरसन आनि करेइ[१०] ॥६२२॥

चउपई-तक्खिण आयसु दियौ[१] नरेस।
गयौ सौंरसी जोगी भेस ॥६२३॥

जुरी हुंती[१] सुलितानी सभा।
मोहे[२] सब जोगी की प्रभा।
चित मैं चितै कहै[३] सुलितान।
नर नरिंद नहिं याहि[४] समान ॥६२४॥

---

[६२१] १. बाहरि । २. श्री. सुलितानहि जाइ । ३. क. जणवी (जणावी)। ४. श्री में यहाँ और है : गुदरी तिसी साहि सौं जाइ। जैसी कहत सु रानी राइ। इसमें पूर्व की अर्द्धाली की ही बात अन्य शब्दों में दुहराई गई है। ५. श्री. देहु बुलाऊं साहि।

[६२२] १. क. चेन। २. क. सुतहु। ३. क. जुगति सुगति पून्यौ। ४. क. गलै मेरवती सुंद। ५. श्री. सुजनु। ६. क. राज पविल। ७. श्री. रंग सौं। ८. क. बोलइ बोल अमीअ। ९. क. चितहि चित्त जोगिंद पून्यौ। १०. क. में इस चरणों के स्थान पर है :

सुरंताण फुरमायउ चेतन आणि मेलाव।
जे गुण तुं आपण कहइ सोइ देषुं चाहि॥

अगले चरण के 'तषिन आइसु दियौ नरेस' के कारण यह पाठ व्यर्थ हो जाता है।

[६२३] १. क. आइ दीउ।

[६२४] १. श्री. हती। २. क. मोही। ३. क. चिवइ चित साहि। ४. क. आहि।

झै ढिल्ली तनौ[१] नरेस ।
आइस कौन[२] तुम्हारौ देस ॥६२५॥

[१]जले मोती[२] थले माणिक[३] रणे बनेति[४] कुंजरा ।
ग्रिहे ग्रिहे[५] पद्मिनी नारी तात देस सु[६] सिंघला ॥६२६॥

चउपई–जोगी जंपै[१] सुणौ महीप ।
जनमु भयौ मो[२] सिंघल[३] दीप ॥६२७॥

मोहि भयौ जिय जबहि[१] वियोग ।
काया कष्टि धऱ्यौ तन[२] जोग ।
सिर तइं[३] खप्पर लियौ[४] उतारि ।
गहि तिण राख्यौ[५] सभा मंझारि ॥६२८॥

तत खिन जटाजूट गए[१] छूटि ।
नगर निकट हौं लीनौ लूटि ।
इहि पुरि मेरौ सर्बसु[३] गयौ ।
सुनत सभा सब[४] अचिरजु[४] भयौ ॥६२९॥

ततखिण सो[१] बूझियौ नरेस[२] ।
कहहि कानु (कौनु) तूं[३] जोगी भेस ।
कपट रूप तूं करहि फिरादि[४] ।
सांची कहि आपनी बुन्याद[५] ॥६३०॥

---

[६२५] १. क. अलावदीन । २. क. कुंण (कौण) ।

[६२६] १. श्री. दोहरा । २. श्री. जले मानिक । ३. श्री. थले हीरा । ४. श्री. बने । ५. क. घरि घरि । ६. क धन्य देस ते ।

[६२७] १. श्री. बोलै । २. क. मोहि । ३. श्री. स्यंघल ।

[६२८] १. क. भयौ । २. क. कष्टकरि साध्यो । ३. श्री. सिरते । ४. क. लीउ । ५. श्री. पुनि काया डाऱ्यौ ता ।

[६२९] १. क. गौ । २. क. लीनुं (लीनौ) । ३. श्री. पुर । ४. क. सर्ब बसि । ५. क. सुणि सभा अचंभो ।

[६३०] १. क. तब । २. क. पूछीउ रेस । ३. क. कहि तुहइ । ४. क. फिराद । ५. श्री. कहौ आपनी आदि ।

जोगी कहै सुनौ नरनाह।
जे [हिं] लूटौ सु बसै बन मांह।[1]
जौ सैं आपु चलै[2] सुलिताण।
तौ पावहिं (पावहीं)[3] चोर कौ न्यान[4] ॥६३१॥

तब सुणि साह भयो असवार।
देखण जोगी कौ ब्यौहार।
गयौ सुंरसी (सौंरसी) साथ सुलितान।
जोजन पांच तिहां उद्यान ॥[1]६३२॥

जोगी सरस नाद धुनि[1] करी।
सुधि अरु बुधि (बुद्धि) सबनि[2] की हरी।
नाद रंग भीनूहि (भीनोहि) कुरंग।
सबु भखु तजि ता डोलहिं संग[3] ॥६३३॥

रोझ रीछ पसु सबै अनूप।
देखत मोहै सब (सब्ब) सु भूप।[1]
मोर चकोर कोकिला कीर।
नाद सबद[2] तन बिकल[3] सरीर ॥६३४॥

---

[६३१] १. श्री. तब ता आपु न बूझै साहि। जिन लूटे ते केहा आहि। २. क. जो आपण चालइ। ३. क. तो तो हाइ। ४. ग्यांन।

[६३२] १. श्री. में यह छंद नहीं है, किंतु प्रसंग में यह अनिवार्य है। श्री. में इसके छूटने का कारण छंद ६३१ तथा इसका तुक-साम्य प्रतीत होता है। क. में यहाँ और है : गयौ सुंरसी साथि सुलिताण। (तुलना० ६३२-३)

[६३३] १. क. बीण बंध सुर। २. क. सुधि बुधि पसुअन। ३. क. नाद रंग बिन अबरनि रंग। मृग बालक मोहीउ भुअंग। यह पाठ अर्थहीन प्रतीत होता है।

[६३४] १. क. में ये दो चरण नहीं है। इन चरणों की स्थिति स्पष्ट नहीं है। २. श्री. लुब्ध। ३. क. भयौ।

कौतिग खैंचि रह्यौ रथु[१] भान।
सुनत बंस बस भौ सुलितान।
देखि जुगति जोगी की साहि[२]।
भिख्यगु[३] भेष गुणी को आहि ॥६३५॥

कहै साहि जी धरि[१] उल्हास।
यह चरित्रु देखै रणिवास[२]॥
अधिक रंग रस बेध्यौ राग[३]।
जौ मांगै सो दैहौं त्याग[४] ॥६३६॥

बोलै बचनु साखि कै धर्म।
यह गुन देखै मेरु (मेरो) हरम[१]।
बार बार जंपै[२] सुलितान।
जो मांगै सो दैहौं[३] दाण ॥६३७॥

सौंरसी वाच–
तज्यौ[१] देस सुख संपति ग्रेह[२]।
कहा मोहि त्याग सौं[३] सनेह।
बाचा अबिचलु करै नरेसु।
ए पसु बेगि नगरि[४] परबेसु[५] ॥६३८॥

बचन विचारि करइ नरनाह[१]।
तो आपण[२] ढिल्ली मैं[३] जाहि।
घरि घरि जाइ बजावौ पढौ[४]।
आहटु अधिकु न कोऊ करौ[५] ॥६३९॥

---

[६३५] १. क. देखी कौतिग थाम्यौ। २. क. देखी जोग जुगति की आहि। ३. श्री. भिष्षिक।

[६३६] १. क. कहै नृपति मनु भयौ। २. क. रिणवासु। ३. क. बाढ़ौ रंग। ४. क. जे मांगु ते देहुं अनंग।

[६३७] १. श्री. मेरी हर्म। २. श्री. बोलै। ३. क. बकसुं।

[६३८] १. क. तिजूं। २. क. देस। ३. क. सुं। ४. श्री. तौ पसु नगर करौं। ५. क. परिवेस।

[६३९] १. श्री. डिढाउ कियौ तिहि साह। २. श्री. तू आपुनु। ३. क. माहिं। ४. श्री. सब काहू राषौ बर जाइ। ५. श्री. कोइ कराइ।

पातिसाह वाच—

जादौ जाति राम देव राइ[१]।
मैं ताकौ गढु घेर्‍यौ जाइ[२]।
छलु कै पकरी ताकी धिया।
मांग्यो बचन तास मैं[३] दिया ॥६४०॥

अब तौ हौं उनि छल करि[१] छर्‍यौ[२]।
बणिता बध के[३] पापहि पर्‍यौ।
ए[४] गुण वाहि[५] दिखावहि बीर।
ज्यौं* क्यौं हूं[६] दुख जाइ सरीर ॥६४१॥

सुणत बात दुख भौ[१] सौंरसी।
सुंदरि सील साध जी[२] बसी।
बचन बोलि डिढ करि बंधानु[३]।
नगर मांझ लियै गौ[४] सुलितानु ॥६४२॥

जोगी के[१] गुण कहै नरिंद[२]।
सुणि सब सभा भयौ आनंद।
संध्या भई[३] गजरु जब[४] बज्यौ।
रावण (रावन) काम[५] कागदनि[६] तज्यो ॥६४३॥

---

[६४०] १. क. जादूं जाति रामदेव राउ। २. क. मइ ता कइ चढि कीउ बिवाह। (यह कथन स्पष्ट ही अवास्तविक है)। ३. श्री. मांगहि जोगी मैं तो।

[६४१] १. श्री. तै हौं बांचा। २. क. छल्यौ। ३. क. बधिकइ पापइ ड‍र्‍यौ। ४. क. गह। ५. क. ताहि। ६. क. ताकौ।

* चिह्नित शब्द क. में नहीं है।

[६४२] १. क सुणत भेद भयो। २. क. जो। ३. क. बोल द्रिढ कीउ पमाणं। ४. क. गयौ नगरि पाढौ।

[६४३] १. क. कुं (कौ)। २. श्री. नन्‍यंद। ३. क. संझया गइ। ४. क. पहर दुइ। ५. छ. बीरवनि बीरव। ६. श्री. कागदिनि।

बाजे बजहिं न ढमकहिं[१] ढोल।
बोल न सकइ अचल के तोल[२]।
त्रिपति नगर अग्या अस मान[३]।
सबदु न बोलैं हस्ति किक्यान[४] ॥६४४॥

बर्णि[१] कहै जोगी की ख्याति[२]।
बण बसि बंसु बजायौ[३] राति।
पसु परिवारु सबै बस कर्यौ।
इहि बिधि नाद चतुर चित हर्यौ[४] ॥६४५॥

बर बिवान तिन चल्यौ लिवाइ।
चल्यौ चतुर लै बंसु बजाइ॥
तजि आखरी सुरत भए अंग।
चलियौ माहि (साहि) सौंरसो संग॥[१]६४६॥

जबहि जाइ निकस्यौ बाजार[१]।
नगर लोगु भौ[२] कौतिगहार॥
सुन्यौ नगर ताकौ ब्यौहार।
कौतिग कौ उमड्यौ संसार[३] ॥६४७॥

उठि चलीं भामिनि तहां अनूप।
तिनकौ कौनु बखानै रूप॥

---

[६४४] १. क. बाजा बाजि न घरके। २. श्री. कोइ न बोले अधिके बोल। ३. क. असान। ४. क. सबद रहे संका सुरतांण।

[६४५] १. क. बरण। २. क. कोइ ईण की जात। ३. क. बंस बसायौ आधी। ४. क. में छंद का उत्तरार्द्ध नहीं है, किंतु छंद ६६१ के लिए इस अंश का होना आवश्यक है।

[६४६] १. क. यह छंद भी नहीं है, किंतु छंद ६६१ की स्थिति में इसका होना अनिवार्य है।

[६४७] १. क. निकरे दरबार। २. क. लोक सब। ३. क. में छंद का उत्तरार्द्ध नहीं है; इसकी स्थिति स्पष्ट नहीं है।

जौ कवि बरिण रूप को कहै।
कहत कथा कछु अंत न लहै[1] ॥६४८॥

एकति एक बांह दै जकीं।
थन थूल (स्थूल) ते चलतै थकीं॥
एकति अंजै एकै नैन।
एकति सूधे कहैं न बैन॥[1]६४९॥

चिकनै केस हाथ कांकही।
कौतिगु देखन कौ सब गईं॥
एकति कर चंदन आरसी।
देखिण चित्रसाल ते धंसीं॥[1]६५०॥

एकति अन न्हाऐं उठि चलीं।
हाथ उतारि लई सांकली॥
एकै तरिका पहिरैं कान।
कौतिग भूलि रहीं अग्यान॥[1]६५१॥

ठाढी तरुणि तमासै भूलि।
त्यौं त्यौं होइ सौरसी फूल॥

---

[६४८] १. क. में यह छंद नहीं है। किंतु आगे आने वाले छंदों के प्रसंग में यह अनिवार्य लगता है।

[६४६–५१] १. क. में इन तीन छंदों के स्थान पर केवल निम्नलिखित है:

एकत बांह एक कांचली। देखिण चित्रसाली तइ छली।
एकै लटका पहिरे कांन। कोतिग भूलि रहै अग्यान।
एकति आंजे एके नयन। एकि न्हानउ छीविण नयणाई।

इनमें से दूसरा चरण स्वीकृत ६५०.४ है, तीसरा-चौथा ६५१.३,४ हैं, पाँचवाँ ६४६-३ है, और छठा ६५१.१ है, यद्यपि कुछ विकृत रूप में। शेष पहला चरण ६४९.१ के प्रथम तीन शब्द, ६५०.१ के अंतिम शब्द के 'कां' और ६५१.१ के अंतिम शब्द को लेकर बनाया हुआ लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस अंश में क. का कोई पूर्वज क्षत-विक्षत था, जिसके कारण उसके प्रतिलिपिकार ने इस प्रकार कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा जोड़ कर इकट्ठा किया है।

छाजे छत्रणि[1] देखै लोग[2]।
सुणत[3] सयाणे भयौ[4] बियोग ॥६५२॥

बणिता बणी बणाइ बणाइ[1]।
करी सभा हरमै[2] हंकरई (हंकराइ)॥[3]
बैठो[4] छत्रु सीस पर[5] तानि।
ठाढी करी छिताई आनि ॥६५३॥

बणिता चित्र बिचित्र[1] अनूप।
बढै कथा जो बरणौं[2] रूप॥
एकति कामिनि करैं कटाख[3]।
भंवर भंवै जनु मदन[4] गुवाख[5] ॥६५४॥

इकु कामिणि अरु[1] जोबन[2] भरी।
सुबन सुजान सुंदरी खरी॥[3]
मधुर बचन पंकज बिस्तरै।
चाहत मनु देवणि को हरै[4] ॥६५५॥

एकणि कर सोहै स्यंगरी (सिंगरी)।[1]
जुवती जुबन[2] रंग रस भरी।

---

[६५२] १. श्री. छचिणि। २. क. देखे लोक। ३. क. सुणत। ४. श्री. में यह शब्द छूट गया है।

[६५३] १. श्री. बीण बाण बाणई। २. श्री. मै। ३. क. मुकुलाई। ४. श्री. बैठे। ५. क. तखत छत्र सिर।

[६५४] १. क. बनी चित्र। २. क. बर्णवुं। ३. क. कटाक्ष। ४. क. मुख बाख। ५. श्री. गवाख।

[६५५] १. क. अनु। २. क. नयणां। ३. क. में यह चरण नहीं है। ४. क. में ये दो चरण भी नहीं हैं।

[६५६] १. क. में यह चरण भी नहीं है। ऊपर के तीन तथा इस चरण के छूट जाने का कारण तुक-साम्य प्रतीत होता है। इन चार चरणों के न होने पर ६५५ के 'इकु कामिनि अरु जोबन भरी' तथा ६५६ के 'जुवती

एक रबाब दुतारौ धरै ।[3]
सुंदरि सुघर[4] बजावै खरै[5] ॥६५६॥

ढोलक चंद्रमंडलनि सार[1] ।
अधिक अपूरब पुजवहि तार[2] ।
बिबिध बिचक्खिण[3] बोलहिं बैन ।
जनु कसुंभ केसरि रंगि नैन[4] ॥६५७॥

एकति कामणि कंधणि[1] जंत्र ।
मानहु बसीकरण के मंत्र[2] ।
जिती[3] छिताई करी प्रवीण ।
ते संगीत रंग[4] रस लीण ॥६५८॥

सरमंडल सरबीण संवारि ।
मुरज[1] म्रिदंग लऐ बर णारि ।
पैमकपट (कपाट)[2] पखावज बीन[3] ।
बैठी तरुणि तमासै लीण[4] ॥६५९॥

कवियनु कहै नराइनिदास ।
इहि बिधि बणि[1] बैठौ रणिवास ।
पुणि[2] आयौ सौंरसी सुजान ।
हरमणि मांझ जहां[3] सुलितान ॥६६०॥

जुवन रंग रस भरी' में पुनरुक्ति प्रकट है । २. क जोबन जान । ३. क एकति कांधि उतारे करे । ४. क. सुंदर सघर । ५. क. सो गावइ गरे ।

[६५७] १. क. चंद्र मंडली अघोटी जाणि । २. क. अधिक अघोटी मिलिवइ तारि । ३. क. बिचक्षण । ४. क. सनइ सुस्तक केसरि की चेण ।

[६५८] १. क. कंधइ । २. क. को यंत्र । ३. क. जेती । ४. क. नाद ।

[६५९] १. श्री. मूज । २. श्री. क्रिपाट । ३. क. पखावध प्रमांण । ४. क. आंणि ।

[६६०] १. क. रिण । २. क. फुणि । ३. क. हरमन सहित ।

रोझ ससें संबर[1] म्रिग माल।
चलहिं[2] कुरंगिणि मधुरी चाल[3]।
मोर चकोरनि कोकिल रंग[4]।
ते सब फिरहिं सौंरसी संग[5] ॥६६१॥

जे मनुहरणि हरिण लोचनी[1]।
असे रूप बनी[2] तुरकिणी[3]।
हरम भरम भूली ता देखि।
रूपवंतु अति[4] मदन बिसेखि ॥६६२॥

म्रिगनैणी देखीं[1] म्रिग संग।
सूंघति चलहिं सौंरसी संग[2]।
असो चरितु देखि उल्हसीं[3]।
हरमणि[4] हियै बस्यौ सौंरसी[5] ॥६६३॥

ते कामिनि अतिताननि आइ[1]।
मुगधा प्रोढ़ा सब सुखदाइ[2]।
बिरही[3] बिरह बजायौ[4] बंसु।
गजमोतिनि ज्यौं[5] टूटैं अंसु ॥६६४॥

राग तरंग कियौ[1] उछाह (उछ्छाह)।
नैणनि नीर भयौ परवाहु[2]।

---

[६६१] १. क. सूवर। २. क. चले। ३. क. कुरंगनि मधरी चली। ४. क. कीर। ५. क. ए देखइ सुंरसी सरीर।

[६६२] १. क. विरां रहइ वा मृगैलोचनी। २. क. ततखिण तिहां तरुणी। ३. श्री. तरकिणी। ४. क. ने।

[६६३] १. क. देखे। २. क. सोभित चतुर ने चलइ सुरंग। ३. क. ते अति उकति देखइ उलसै। ४. क. बोहरि। ५. क. बहुत दुख बसै।

[६६४] १. क. तासुं पान मन सरती रही। २. क. देखन गई। ३. क. बिरहणि। ४. क. बजावइ। ५. क. गजमोती दइ।

[६६५] १. श्री. रागहि तान भयौ। २. क. नइण भरे भूरि प्रवाह। ३. क. निर्मल रतन जे परइ। ४. क. देखत चित चालीउ। ५. क. चाहि।

सुंदरि सबै अमोलक[3] आहिं ।
देखत चित्तु न चलियौ[4] ताहि[5] ॥६६५॥

जबही[1] द्रिष्टि छिताई परी ।
रहि गयौ[2] बंसु नाद धुणि हरी[3] ।
मिलै नैन नैननि ही[4] जाइ ।
फिरै ण द्रिष्टि सु रह्यौ फिराइ[5] ॥६६६॥

उत सुंदरि के आंसू ढरैं ।
सुलितान के कंध पर[1] परैं ।
रोवै छोह[2] छिताई नारि ।
जनु बियोग सर छाडो पारि[3] ॥६६७॥

परहिं कंध पर ताते बिंद ।
तब ही फिरि चाहियौ नरिंद[1] ।
तैसौ[2] मुंह देख्यौ नरनाह ।
उवत[3] चंद जनु[4] चंप्यौ[5] राह ॥६६८॥

मलिन[1] बेस परि (पर) बसि पदमिनी[2] ।
तऊ[3] बियोगिणि बणिता बनी[4] ।
चितवत चित्तु साहि कौ हर्‍यौ[5] ।
तरहडौ[6] बदन छिताई कर्‍यौ[7] ॥६६९॥

---

[६६६] १. क. जब तइ । २. क. रहिगो । ३. क. करी । ४. क. नइण मांहि । ५. क. फिरे द्दष्टि सुर गयो पुलाइ ।

[६६७] १. क. परि । २. क. रुदन बिछोह । ३. क. देखि आपणै हीइ बिचारि ।

[६६८] १. क. तातें बूंद परे तब पीठ । तब ते फिरि चितउ साहि न पीठ । २. क. तातै । ३. क. उओ । ४. क. में यह शब्द नहीं है । ५. क. चांप्यौ ।

[६६९] १. क. मलि । २. श्री. बस्त्र परबस सुंदरी । ३. क. तउही बिउगनि (बिओगनि) । ४. श्री. खरी । ५. क. हरइ । ६. श्री. नीचौ । ७. क. करइ ।

तब बूझी सुलितान हंकारि ।
रोवै कहा छिताई नारि ।
सुंदरि देखि अपूरब बात ।
नाद लुब्ध पसु तपी[1] संघात ॥६७०॥

तो लगि हौं लाइयौ[1] लिवाइ ।
क्यौं हू दुख धौं तेरौ जाहि[2] ।
जी[3] महि जाणि छिताई कहै ।
पापी प्राण[4] अजौं[5] घट रहैं ॥६७१॥

अब उडि जाहु (जाहि) 'हंस ज्यौं[1] पंखि ।
देख्यौ दुखी सौंरसी अंखि[2] ।
नर कौ जनम कतहि बिहि[3] कियौ ।
जौ जनमी तौ कत भी (भइ) तीआ (तिऔ)[4] ॥६७२॥

जौ त्रिय तौ[1] कत भयौ बियोग ।
उडहि हंस ज्यौं देखै लोग[2] ।
मो लगि कंतु बियोगी[3] भयौ ।
असौ दुख (दुख्ख)[4] बिधाता[5] दयौ[6] ॥६७३॥

---

[६७०] १. क. नाद सबद भए आप ।

[६७१] १. क. तो लगि आउ (आओ) । २. क. जु तेरौ जीउ दुख मांहि । ३. क. जीअ । ४. श्री. प्रानु । ५. क. अजूं ।

[६७२] १. क. बिउ उरि हंस उडि तनहां । २. क. संग । ३. क. कत बिधना । ४. श्री. दुख दियौ ।

[६७३] १. क. जो तीआ । २. क. कहइ छिताइ कर्म्म को दोष । ३. क. बीउगी (विओगी) ४. क. इतनुं (इतनौ) दोष । ५. श्री. बिनाता । ६. क. दीउ (दीओ) ।

देखि राग रीझ्यौ[१] सुलितान।
मांगहि जोगी यौं (देउं) तो[२] दान।
कहै[३] मैं बाचा दीधो[४] तोहि।
जौ राखौं[५] तौ पातिग[६] मोहि ॥६७४॥

बाचा दै जो[१] करै अबाच।
ताकौ मुंह देखै क्यौं पांच[२]।
यौं बोलै ढिल्ली कौ धणी।
हौं कीरति राखौं[३] आपणी[४] ॥६७५॥

सौरंसीवाच—
कहै सौरसी सुनहि महीप[१]।
तोहि राज सबु[२] जंबू[३] दीप।
तैं जीते दस दिसि[४] के राइ।
तोहि तेज क्यौं बरण्यौ[५] जाइ ॥६७६॥

हस्ती जो[१] न अंकुसहि सहै।
ताकैं तेज साहि[२] क्यौं रहै।
सिंधु[३] न भरण जाहि[२] अंकवारि।
तू[४] त्रिपती बाचा प्रतिपारि ॥६७७॥†

---

[६७४] १. क. देखि धुजाइचि कहि। २. क. मांगि बो लहुं बोलुं। ३. श्री. अरु। ४. श्री. दानी। ५. क. राखुं। ६. क. पातग होइ।

[६७५] १. क. बाचा बोल जु। २. क. नन पंच। ३. क. पासखुं। ४. क. में इसके बाद निम्नलिखित और है :

मरै जीउ बसै इहूवत हम। स जांणइ सब जीउक मर्म।
कहइ दीन मांगइ दुइ हाथ। मांगइ जोगी बोलै नरनाथ।

यह छंद निरर्थक प्रतीत होता है।

[६७६] १. क. कहइ जोगी सुणि महिभूप। २. क. तइ हम छांडे। ३. क. जांबू। ४. क. सब देस के। ५. क. नहीं तेज कुं कहणो।

[६७७] १. श्री. ज्यौं। २. क. तोके तेज देव। ३. क. संघ। ४. क. जो।

† श्री. में यहाँ छंद-संख्या भूल से एक और बढ़ गई है।

कहै सौंरसी मनहिं बिचारि ।
सौंपहि[1] साहि छिताई नारि ।
अनु कहइ[2] नटवा गोपाल ।
बचन बड़े कहीइ (कहियइ) संभालि[3] ॥६७८॥

पातिसाहि तब मनहि[1] बिचारि ।
लीनी[2] बोलि छिताई नारि ।
सुंदरि एकु बचनु दै मोहि ।
यह जोगी मांगतु है[3] तोहि ॥६७९॥

सीलवंतु गुन राज समान[1] ।
सुंदरि राखहि मेरौ[2] मान ।
यही बचनु मैं मांग्यौ दियौ[3] ।
अब[4] चाहौं परवानौ[5] कियौ[6] ॥६८०॥

मैं जोगी सौं हार्‍यौ बोल ।
सुंदरि राखि हमारै तोल ।
या गुनु अधिकु जाइ नहिं गन्यौ ।
सो तैं अपने काननि सुन्यौ ॥[1]६८१॥

गरै सुघरु गावै सबु कोइ ।
पसु परिवारु काहि बस होइ ।
मैं दासी तो पहिं भेजियौ ।
तिनसौं तैं यह उत्तरु दियौ ॥[1]६८२॥

---

[६७८] १. क. बकसइ । २. श्री. अरु कहिजै । ३. श्री. खरूकै हीयै रसाल ।

[६७९] १. क. जीउ कहइ । २. क. लीनुं । ३. क. भी मांगइ ।

[६८०] १. क. सीलवंत जोगी सुजांण । २. क. एकै । ३. क. एह बाच मो मांगी देह । श्री. में 'दियौ' के पूर्व 'तोहि' भी है, किंतु वह स्पष्ट ही भूल के कारण है । ४. क. इब । ५. क. फुरमांगइ । ६. क. लीउ ।

[६८१–६८२] १. क. में ये दानों छंद नहीं हैं । इन छंदों के बिना प्रसंग अधूरा रहता है, अतः ये प्रसंग में अनिवार्य प्रतीत होते हैं ।

जु तौ बीन ठाटै मो तनी।
हौं तौ होउं तासु की धनी[1]।
कहै छिताई सुनहि[2] नरेस।
राज कुंवरु यह जोगी[3] भेस ॥६८३॥

ढोल समुद नराइन भगवान[1]।[2]
ताकौ सुत सौंरसी सुजान।
मो लगि फिर्‍यौ जोग कै भेस।
सेए बहु उद्यान असेस[3] ॥६८४॥

सुंदरि बात कहै समुझाइ।[1]
तब लीनौ सौंरसी बुलाइ[2] ॥६८५॥

† पातिसाहि पहिराव्यो तोहि (ताहि)।
जोगी जुगति नाखो निज काइ।
जे बाचा द्रिढ कउ भूआल।
जे (ते) जोगी बोलीइ(बोलियइ) संभालि ॥६८६॥*

---

[६८३] १. क. में ये दो चरण भी नहीं हैं। इन चरणों के बिना प्रसंग अधूरा रहता है, अतः ये अनिवार्य प्रतीत होते हैं। २. क. साहि। ३. क. जोगिन को।

[६८४] १. क. भूपाल। २. क. में इसके बाद ये दो चरण और हैं : कहइ छिताई साहि भूवाल। ढोल समुद नाईण भूगाल। इनमें से दूसरा ६८४.१ है। ३. क. में ये दो चरण नहीं हैं। ६८३ के प्रसंग में ये चरण अनिवार्य लगते हैं; कुंवर जोगी क्यों हुआ, यह इन चरणों में बताया गया है।

[६८५] १. क. कहइ सुंरसी छिताई बिचारि। २. क. तब सुंरसी लउ (लओ) हकारि।

† यहाँ से आगे समाप्ति तक का समस्त पाठ क. के अनुसार दिया गया है। श्री. का पाठ इससे नितांत भिन्न है, और वह आगे परिशिष्ट में दिया जा रहा है। श्री. का इस अंश का पाठ प्रक्षिप्त प्रतीत होता है। यह प्रक्षेप श्री. के किसी पूर्वज में कदाचित् इसलिए किया गया होगा कि यह अंश उसमें त्रुटित हो गया होगा। (विशेष देखिए भूमिका में)

* इस छंद के अनंतर क. में छंद-संख्या कहीं नहीं दी गई है।

कपग़ा पहिर जोग उतारि ।
... ... †
जोग उतारि सुहातो कीओ ।
नुंतन (नौतन) महुल ततखिण दीओ ॥६८७॥

दई छिताई हाथि नरेस ।
परिमल बहुत सुगंध असेस ।
दीन्हे गज मोतिन के हार ।
दीए जराऊ बिबिध प्रकारि ॥६८८॥

साहि अलावदीन इउं भरी (भनी) ।
आ बेटी सम करि मइं गिनी ।
जब दई [साहि ?] छिताई नारि ।
दीन्हा हस्ती बहुत सिंगार (सिंगारि) ॥६८९॥

उठि सुंरसी (सौंरसी) गयौ आवासि ।
गई छिताई पिउ कइ पासि ।
जब गाढौ आलिंगन कीओ ।
असुपात पीउ बाला कीओ ॥६९०॥

तबहि सुंरसी (सौंरसी) पूछइ (पोछइ) नइन ।
अति सुरति करि बोलइ बयण ।
दे आलिंगन लागी पाइ ।
दई (लई) सुंरसी (सौंरसी) कंठ लगाइ ॥६९१॥

दोऊ बैठे पलिकइ जाइ ।
कहइं दुख बिरह बिरहाइ ।
मिलनन (?) को सुख केतक कहौ ।
कबि कबि केतक बनाइ कहौ (?)‡ ॥६९२॥

---

† यहां पर कम से कम एक चरण छूटा हुआ है ।

‡ यहाँ पर क. में और है : मुंदरी लइ सिया सुख भयौ । किन्तु यह छंद ६०१ का तृतीय चरण है और वहीं पर संगत लगता है, क्योंकि वहाँ पर सौंरसी को छिताई की वीणा के पाने से जो हर्ष हुआ उसका उल्लेख है । ऐसा

जो (ज्यों) सुख मिले [राम ?] अनु सीया ।
तौ (त्यौं) सुंरसी (सौंरसी) भेंटी त्रीया ॥६९३॥

जैसे कामदेव रत (रति) संग ।
जैसे देव महेस अरधंग ।
जैसे सुख आए बर पूत ।
ति सुख भयौ सुंरसी (सौंरसी) बहूत ॥६९४॥

जइसै राइ जीतइ संग्राम ।
जौ (ज्यौं) कमलनि युगै (उगें ?) दि [न] भांन ।
जि रे कमोदनि चंद्र अकासि ।
त्यों सुंरसी (सौंरसी) सुख (सुख्ख) आवास ॥६९५॥

मनुहा (मनुह) रांक धनु पयां (पायां) कोरि ।
जिउं बिबाह निसि गाढी गोरि ।
लंका तोर्‍यो रामहि जिस्यौ ।
अब सुंरसी (सौंरसी) भयौ सुख तिस्यौ ॥६९६॥

जैसे सूरि ग्रहौ उग्रहइ ।
प्रान जीवन तबहि सुख भयौ ।†
ते दिली (ढिल्ली) माहि प्रगटी भई ।
जोगी नारि छिताई दई ॥६९७॥

गइरमहल दिन भयो पंचास ।
मनुह सूर उग्यो आकास ।
जा (ता ?) ही को गुण प्रगटो लहइ ।
तैसो गुणी बर्ण (बर्णि) कै कहइ ॥६९८॥

प्रतीत होता है कि क. के किसी पूर्वज में हाशिये में किसी ने यह चरण लिख दिया था, क्योंकि उसकी स्मृति में यह चरण था और उसे लगा कि यह यहीं होना चाहिए था ।

† क. में इस अर्द्धाली का तुक-वैषम्य ध्यान देने योग्य है ।

अति मिलाप सुख हिंदु हुं भयो।
सु तौ न जाइ मो पइ अति कह्यौ।
दुहूं मिलति (मिलत) निरपीड (निरषीड=निरषिओ) सुख चैन।
मो पइ कह्यौ न जाइ सु नइन ॥६९९॥

सभा जोरि बइठो सुलिताण।
तब बोल्या (बोल्यो) सुंरसी (सौंरसी) सुजाण।
करि सलाम तिहां बइठो जाइ।
एते दिवस कैसैं बिरछे राइ ॥७००॥

कहइ अलावदीन इउं भूप।
मेरू (मेरो) अवसर होइ अनूप।
जबहि सुंरसी (सौंरसी) देखइ बइन (नइन)।
बोलइ साहि अमी रस बइन ॥७०१॥

जो हुं (हौं) गुणन दिखावु तोहि।
तो सुख होइ हिआ माहिं मोहि।
तब उसर (औसर) कुं (कौ) आइस भयौ।
परदा उठि (उट्ठि) चित्र बिनु दयौ ॥७०२॥

बने चंदुए अनु अनु भांति।
सोहइ जानुं (जानौ) तारन की पांति।
तिनके बरण[न] कइसै लहुं (लहौं)।
बढइ कथा जो अंत न लहुं (लहौं) ॥७०३॥

मिले (मिलइ) अरगजा किओ अनूप।
मिश्रत अगर कस्तूरी खूप (खूब?)।
उर (और?) सुंगधनि थै सुख भयौ।
बहुत कबित्त कबीसर कह्यौ ॥७०४॥

तइ सुरंग मंडप उछाह (उच्छाह)।
बरनी अली सखी सभ आहि (आइ)।
राग गुनी गावइ गावही।
ऊसर (औसर) अतिहि हो गुणगही ॥७०५॥

बोल्यौ तबहि सुंरसी (सौंरसी) राउ ।
देखत तनहि होइ बहु भाउ ।
बोली तबहि छिताइ (छिताई) नारि ।
आदर करि समीप बइसारि ॥७०६॥

देखी सबई सुधि दिखराई (बिसराइ ?) ।
ऊसर (औसर) देखि सुख अति भई (भाइ ?) ।
जो गुण इंद्र अखारइ आई (आहि) ।
तै सु ऊसर (औसर) दिखारइ साहि ।७०७॥

रीझ रह्यौ सुंरसी (सौंरसी) सुजान ।
धनि धनि अलावदीन सुलितान ।
जाकइ निति कौ उसर (औसर) होइ ।
बुरो नहीं गुणी जण कोइ ॥७०८॥

मोहे किंनर सुर गंधर्ब ।
नृपति सभा मोहीए सर्ब ।
उसर (औसर) उबिदि बराए पान ।
तबहि सुंरसी (सौंरसी) गयो मिलान ॥७०९॥

आई तिहां छिताई बालुं ।
जां गति मद गज मधुरी चाल ।
कर कुअर (कोंअर) अनु हरुए बोल ।
प्रान प्रीतम सेती सुख जोल ॥७१०॥

पातिसाहि उवे हरमन मांझ ।
हेवति हरम रहे (रहै) तिह थान† ।
सुंदरि तिहां रहे (रहै) सुलितानी ।
देखि छिताई मन बिहसानी ॥७११॥

---

† तुक-वैषम्य विचारणीय है । किंतु यह संभव नहीं लगता है कि दो-चार चरण यहाँ छूट गए हों, क्योंकि प्रसंग अक्षुण्ण है ।

गुण सब हैवति सों साहि कह्यौ।
हैवति गने धीया अधिक ह्यौ।
कछू करइ हसइ सुलितान।
जब आव्यौ सुंरसी (सौंरसी) सुजान ॥७१२॥

अइसि रहत मास दस गए।
राउ भगवान तबहि सुधि रए।
नफरनि कही सुंरसी (सौंरसी) बात।
फूलि राउ भयौ दौनइ गात ॥७१३॥

अब हुं (हौं? पठवुं (पठवौं?) सुत कुं (कौं?) लइन।
मइं तस देखुं (देखौं?) जीवत नइन।
उरुगाने तरतरे लए।
अंतरि बासइ डीली गए ॥७१४॥

पूछत गए सुंरसो (सौंरसी) पास।
पाइ लागि पाती दे हाथ।
हम पठवे (पठव्ये ?) भगवान नरनाथ।
पूछित राइ कही कुसलात ॥७१५॥

पतिहा कहइं कुंअर सुं (सौं?) बइन।
राजा बहुत सुख [?] चैइन।
छांडी सेज सुइ (सोइ?) साथरइ।
अइसी भांति राइ दुख सहइ ॥७१६॥

सुण्यो सुंरसी (सौंरसी) पतिहा कह्यौ।
इस सुनि सजल नइन भरि रह्यौ।
पाती लए गए नरनाथ।
साहि पासि बोलइ बर नाथ (?) ॥७१७॥

कहइ सुंरसी (सौंरसी) सुनि सुलितान।
आप लिखे कहइ भगवान ॥७१८॥

वस्तुबंध—सुणि रीझयौ साहि वलिवंड।
सुंरसीह (सौंरसीह) दल चंपि (अप्पि ?) करि* ॥७१९॥

---

* यह वस्तुबंध निश्चित ही अपूर्ण है।

[चउपई]— ... ... । ×

अरु संभारि गुजराति ति जानु ।

साहि तबहि दीउ (दीओ) फुरिमान ।

अरु दीउ (दीओ) हय गय गुणान ॥†७२०॥

बरणुं (बरणों ?) तेजी ऊच तिहां तणे ।

ऊचे आहि कंध तिह (तिन्ह ?) तणे ।

एक तीरी (तुरी ?) ते हरीअे बरनां ।

कंध आगरे छोटे करनां ॥७२१॥

सेत तुरी चंचल गुण बने ।

चित्रति जानि चितौरा (चितेरौ) तने ।

महुअ सबज सनेही बने ।

सीराजी मुगलो हांसले ॥७२२॥

उपजे सींह नदी पश्चम देस ।

बडी पुंछ (पुछ्छ) बरणइ कवि लेस ।

करतर काया तुरी तुखार ।

जरदे नीले बोर कयाह ॥७२३॥

जिते भुथार काबली आहि ।

साठि कोस थी आवइ जाईं (जाइ) ।

पीले नीले बोरु बहूत ।

चलत चाल ते भांभर भूत ॥७२४॥

गोट बहुत परबत के आहि ।

तै पुर(पुन ?) दीनी अर चौगुन थाई (थाइ)।

× छंद का यह चरण भी छूटा हुआ है। असंभव नहीं कि यहाँ पर कुछ और पंक्तियाँ छूट गई हों।

† यहाँ पर छंद ७२० का उत्तरार्द्ध पुनः इस प्रकार आ गया है :

दीन्हे हस्ती सब केकान । दीउ साहि नवौ फुरमान ।

इन चरणों में से प्रथम ७२० के अंतिम चरण का प्रायः पर्याय मात्र है, और द्वितीय तो वही है जो ७२० का तृतीय है, अंतर केवल एक शब्द के संबंध में है।

अगम अजीत सिंघले सइन ।
आत (ऊतम) आन (आने) दीन्हे बइण (गइण?) ॥७२५॥

मईमत (मइमत) दंती नई (नइ) सुलितानी ।
जे हथी अइरापति बानी ।
मद प्रबाह हस्ती अति मोल ।
साहि हाथ छत्र दीन्हौ तोल ॥७२६॥

परस्थानु (परस्थानौ) तिण दिन ही कीउ (किओ?) ।
सीख दीइ (दीयइ) छिताई तिहां† ।
जे पातर सुंपी (सौंपी) पंचास ।
समदी चल्यौ आप नरनाथ ॥७२७॥

मनो छिताई तनुं (तनौ) बिबाह ।
समुदि (समदि) साहि आपण घर नाह ।
दुख छिता[ई] बिछुरत भयो ।
जाई (जाइ) उतारी डेरइ गयो ॥७२८॥

नाह छिताई उतरे तिहां ।
हिरण रोझ सब संगति लीआं ।
पसु तणो मन चिंत्यौ भयो ।
ते सब पसू सुंरसी (सौंरसी) लीयो (लियो)॥७२९॥

संग लगाइ चल्यौ करि कूच ।
राइ राणा हूआ साथि बहुत (बहूत) ।
मेल्हौ जाई (जाइ) नगर चंदवार ।
....‡ ॥७३०॥

चले कोस पंचास मेलान ।
उठे राखि रखत कोस एक परमान ।

---

† तुक वैषम्य दर्शनीय है। यहाँ पर अवश्य ही कुछ अंश छूटा हुआ है।

‡ यहाँपर कम से कम एक चरण छूटा हुआ है।

चलत पंथ माहि खेले खेज।
दौरि (दौरा ?) दौरि उर (और) बगिमेल ॥७३१॥

जि रानी निस खेत (खेलत ?) जांइ।
कबीअण (कविअण)तुच्छ कहइ समझांइ।
कबहुं (कबहूं) एक दिवस बिच्यारि।
करइ अहेरो सब मिलि नारि ॥७३२॥

नारि करइ पुरषन के भेष।
पाग बंधि ते खरी सु देखि।
बागा बने बिबधि परकारि।
हाथन लीए (लिए) फूल के हार ॥७३३॥

ऊपरा (उपरा) ऊपरि खेलहिं खेल।
राइ सुंरसी (सौंरसी) छिताई गेलि।
खेलत बने दोइ नर नारी।
दुए चतुर पुरष अनु नारी ॥७३४॥

बहुतक करै अंग की धमारि।
कुंअरा कुंअरी जोरि सिंसार।
फोलि फूले सोहीइ (सोहियइ) अगासा।
मनुं (मनौं?) तीरी पुरष अनु बासा ॥७३५॥

मनुह (मनौह ?) रूप सुंदरी अगासा।
... ... *।
तुटे गज मोती के हार।
बाला गिरित न जानइ सार ॥७३६॥

हसत खेलतां जु बोलइ बइन।
लेहि उठाइ जु देखई नइन।
दीसे तिहां राउ सुंरसी (सौंरसी)।
बाढै जौ नितुं [उ?]रगन शसी (ससी) ॥७३७॥

---

* यहाँ पर कम से कम एक चरण छूटा हुआ है।

करहि कूच हस्ती चढि नारी ।
सोर सिंगारि कि नवल कुंआरी ।
हस्तीन (हस्तिन) रंग लहरि सहिदान ।
कछु एक अबला चढ़े केकान ॥७३८॥

हस्ती धावहिं पंथ मझारि ।
भागइ बाला चमकइ नारि ।
खेलइ राइ छिताई नारि ।
... ... *॥७३९॥

कलप वृक्ष जाने चंद समान ।
देखइ जहां पंथ मइदान ।
तिहां रावत खेलइ चौगान ।
गुंठनि नारि बधज अधिकानि ॥७४०॥

आगइ थकी गइल लगि जाई ।
एकनि एक डोरि लपटाई ।
एक नारि [?] आगलि सरी (सरइ ?) ।
जबही सुंरसी (सौंरसी) पासनि परी (परइ ?) ॥७४१॥

तबहि सुंरसी (सौंरसी) दुहाई करइ ।
खेतल नारि अधिक सुख करइ (भरइ ?) ।
तबहि कुह (कूह) करि दौरइ बाल ।
... ... †॥७४२॥

अईसी (अइसी) बिधि खेलइ चौगान ।
सर्ब नृप खेलइ इंद्र समान ।
घर के चलबे कुं (कौं?) मन कीआ ।
देवगिर दुर्ग सुंरसी (सौंरसी) गया ॥७४३॥

---

* यहाँ पर कम से कम एक चरण छूटा हुआ है ।
† यहाँ पर कम से कम एक चरण छूटा हुआ है ।

गए दौरवा राजा पासि ।
सुनि सुख उपनौ बहुत उल्हास ।
चल्यौ समुद्र (समुद?) आगइ होइ लइन ।
हाथी तुरी पलान्यौ सइन ॥७४४॥

छंद—घर सर जे बाजे बाजइ चले ति आगइ हुंन (होन) ।
हस्ती पलाने कुण(कौन ?)बखाणई मांगणि केरे बइण ॥*७४५॥

आगई हुण (होण ?) चल्यौ नरनाह ।
गज रथ तुरी थाट अनिवार† ।
बांध्ये सीकर तोरण बारा ।
घाट पाट सिंगार संवारा ॥७४६॥

कवीअण (कविअण) कहइ नराइणदास ।
मरइ फूल जीवइ दिन बास ।
गई छिताई जननी पास ।
कंठ लगाई लेइ उसास ॥७४७॥

होइ महिमानी नित नवरंग ।
राघव चेतन मोल्हन संग ।
तिण कौ मिल्यौ रामदेव राई ।
अंकमाल भेंटइ वित (चित?) ठाई ॥७४८॥

गढ दे चल्यौ रामदेव राउ ।
भयौ आनंद देइ सु पसाउ ।
बंभण बेद पढइ झणकार ।
गीत नाद नित मांगलचार ॥७४९॥

उसरे (औसरे) गाज बाज नीसान ।
सिंगारे सब लोक सुजान ।
राघव चेतन मोल्हण जहां ।
छिटक महल लै चंदन तिहां ॥७५०॥

---

* तुक-वैषम्य दर्शनीय है ।

† तुक-वैषम्य दर्शनीय है ।

पातर नाचइ गावइ गीत ।
भए गराज अनु बहु प्रीत।
बहुत बास फुलनि (फूलनि) फुलवाद ।
जैसी इंद्र राइ घरि बास* ॥७५१॥

पढतां कहतां अतं नन लहू (लहौ) ।
तिनके अधि (आदि ?) बिचारित कहौ ।
गावइ राग बजावइ तार ।
नइण फैर (फेरि) जे करइ कटाक्ष† ॥७५२॥

काम बान मारी (मारइ) कामनी ।
भरहि देव साखि (साखि देव ?) भामनी ।
कामलता दखित चित हरै ।
इंद्र राइघर ते अवतरै ॥७५३॥

दिवस सात लग अवसर भयौ ।
मोल्हण हसि रामदेव सुं (सौं?) कह्यौ ।
बिदा करौ घरि समदइ राइ ।
भयौ सुखारौ देवगिर आइ ॥७५४॥

हसि हसि राउ रा[म]देव कहई ।
अब मइ जन्म (?) सफल जन्म लहौं ।‡
गआ पाप तव फरसे पाइ ।
अब मइ [?] जीवण सब भाई ॥७५५॥

हीरा चूनी बहुते लाल ।
आगई धरी राम भौवाल ।
मणि माणिक मोती जे घणे ।
अंकमाल थाल भरि धरे ० ॥७५६॥

---

* तुक-वैषम्य दर्शनीय है ।
† तुक-वैषम्य दर्शनीय है ।
‡ तुक-वैषम्य दर्शनीय है ।
० तुक-वैषम्य दर्शनीय है ।

जइसुं (जइसौ ?) अरजन कन्हर तनो।
समद्यौ रामदेव तिहां गयौ ।+
राघव चेतन राम भूवाल।
समदि जराउ पहिराए लाल।७५७॥

राघव साहि सुं (सौं?) गयौ नरेस।
राय राइ जे दीअे असेस॥७५८॥

... ...
सुनत बात सुख मानइ राई* ॥७५९॥

निश्चै (निस्चै) भयौ निसानइ घाउ।
राउ भेट राजा ते राउ।
अनंदौ (आनंदौ) राजा पर (पुर?) लोक।
कौण बात सुबिचारइ भोग॥७६०॥

जिहि दिन मीली (मिली) कुंअरि सुंदरी।
ढोल समुद गढ पहुती तीरी (तिरी)।
चढि (चढ़ै) चकडोल छिताई राइ।
धावनि खबरि करी तिहां आइ॥७६१॥

सासु ससुरां आइ जाई।
जानु बसंत रित फूली झार०।
छाजे छत्र(?) नवतने कराई अनूप।
अतिह आनंद भयौ सब भूप॥७६२॥

आगइ होइ राइ भगवान।
आगइ सुंरसी (सौंरसी) कुंअर सुजान।
कौतिग लोग आए जहांन।
जो कुछु देस बिदेस सुजान॥७६३॥

+ तुक-वैषम्य दर्शनीय है।

* यहाँ पर कई चरण छूटे हुए हैं, क्योंकि दिल्ली और देवगिरि की कथा समाप्त नहीं हुई है, तबतक द्वार समुद्र की कथा आ गई है।

० तुक-वैषम्य दर्शनीय है।

ठाई ठाई (ठांइ ठांइ) मंगल गावइ नारी।
रहइ चतुर सुनि बात विचारी।
ठांइ ठांइ तरुणी नाचइ बाल।
ठांइ ठांइ निरत करइ भूआल ॥७६४॥

देखत सुर नर मोहै हीइ (हियइ)।
अइसी भांति दान बहु दीइ (दियइ)।
घरि आव्यो सुंरसी (सौंरसी) राइ।
नाराइणदास कहै उछाहि ॥७६५॥

———

परिशिष्ट

श्री० का अंतिम अंश

तखिन सुंदरि बांह गहाइ।
बगस्यो नटवा ताहि बुलाइ ॥६८५॥

कहै अलावदीन सुलितान।
मैं तौ देख्यौ तेरो ग्यान।
जोगी भेस कौनु तू आहि।
कहहि मरमु यौं बोलै साहि ॥६८६॥

कहै सौंरसी मनह विचारि।
यह सुंदरि मेरी बरणारि।
राजा रामदेव की धिया।
जोगु कष्ट या कारण किया ॥६८७॥

जु तौ बात खुदि आलम कही।
सुंदरि साध सकल गहगही।
भलौ भलौ कहियौ करतार।
जैसी तिरी तिसौ भरतार ॥६८८॥

जब तैं पहिलै करी फिरादि।
तब मैं जानी तेरी आदि।
जब मो चोरणि पहिलै गयौ।
तबही मैं तेरौ मनु लयौ ॥६८९॥

बंसु छाडि जब कीनौ नादु।
तब मैं जान्यौ तेरौ सादु।
जब देखो मुंद्रा उनहारि।
बगसी तबहि छिताई नारि ॥६९०॥

अब तू खेम कुसल घर जाहि।
दई बिदा यौं बोलै साहि।
जामदार कौं आइसु भयौ।
अगणित कोट द्रब्बु गणि दयौ ॥६९१॥

पहिराए पूरष अरु णारि।
आपुन साहि करी मनुहारि।
बोलि सौंरसी दई इनाम।
ज्यौं तो जानै राजा राम ॥६९२॥

दीनौ पालि खंड कौ देस।
बिजयागिरि गढ़ दुग असेस।
मद सिंघली[1] दए मैंमंत।
अधिक उतंग जि दीरघ दंत ॥६९३॥

दीनै तेजी तुरी तुषार।
पहिरायौ बीसा सौ बार।
दिये हाथ के नेजा संगि।
दीनै डेरा लाल सुरंग ॥६९४॥

दियौ मालु सौ साडि भराइ।
तिनकौ द्रब्बु गन्यौ नहि जाइ।
दियौ णिसानु गहिर बाजनौ।
दीनौ साहि हाथ ताजनौ ॥६९५॥

दिये बेसरा लाख सवाउ।
जिन घर चलत न लागै पाउ।
दीनी तेग सौंरसी हाथ।
मो बर दुर्ग लेहि नरणाथ ॥६९६॥

जहां न बलु जानहि आपनौ।
तहां सैनु बोलहि मो तनौ।
इतनी सौंज सौंरसी दई।
बोलि छिताई आगै लई ॥६९७॥

---

[६९३] १. श्री. स्यंघलो।

बाप स बहुतै बोल्यौ मोहि।
हौं बेटी सम जानौं तोहि।
दए साहि आभर्ण (आभरण) मंगाइ।
हीरा लाल सुरंग गढाइ ॥६९८॥

जरे पांचि पेरोजा लाल।
दीनी गज मोतिणि की माल।
पेरोजा मणि माणिक चुणी।
जे णिर्मोलिक जाणहि गुनी ॥६९९॥

दीणै रतन पदारथ घनै।
ते मणि माणिक जांहि न गनै।
दिए साहि निर्मोलिक चीर।
पाटंमर खीरोदिक खीर ॥७००॥

ऐसी साहि करी बगसीस।
आफे सब ढिल्ली के ईस।
अधिक मया जु साहि जी बसी।
लीनौ बोलि बेगि सौंरसी ॥७०१॥

सौंपी साहि छिताई हाथ।
आपु हजूर बोलि णरणाथ।
अब घर कुसल खैम तू जाहि।
दई बिदा यौं बोलें साहि ॥७०२॥

यह नरवै मैं सौंप्यौ तोहि।
जासौं जीउ बसतु हो मोहि।
कहै सौंरसी सुनहि नरेस।
तोहि धाक कंपहि अरि देस ॥७०३॥

तोहि धाक सब पहुमी आहि।
ऐसौ भयौ न कोई साहि।
तैं बाच पारी आपनी।
कीरति साहि चली तो तनी ॥७०४॥

चल्यौ सौंरसी कियौ जुहारु ।
डेरा जाइ भयौ असवारु ।
चली घटा गज ढोल तुरंग ।
सोहै कटकु सौंरसी संग ॥७०५॥

लई कुंवरि चौडोल चढ़ाइ ।
सो चौडोलु ण बरन्यौं जाइ ।
दीपति होइ बरण पंच रंग ।
अधिक जोति देखियै सुरंग ॥७०६॥

मोती लर सोहै चौपास ।
हेम डंड सोहिजै तरास ।
बने लछा रेसमी अनूप ।
समदी कुंवरि तबहिं महि भूप ।७०७॥

और सखी सब समदी संग ।
ते पुणि समदी तैही रंग ।
तबहि सौंरसी चल्यौ बजाइ ।
चंदागिरी पहूंच्यौ जाइ ॥७०८॥

देख्यौ रतन भलौ मैदान ।
तहां सौंरसी कियौ मिलान ।
कालिंद्री नदि नीर णिधान ।
कीनौ नारी पुरष मिलान ॥७०९॥

सलिल तेज अति लहरि तुरंग ।
खेलै नारि सौंरसी संग ।
खेलै संग सलिल तट नीर ।
तज्यौ दुक्ख सुख भयौ सरीर ॥७१०॥

पणिघट नारि णागर पैसार ।
तिहि ठा आवागवनु वतार ।
देखत कुंवरि (कुंवर) मुर्छि धर गईं ।
जानिकु कामवान ते हईं ॥७११॥

बदन देखि जिय लेहिं उसास ।
ऐसौ पुरिषु होइ जौ पास ।
जी धरि गई तपा जोगिंद[1] ।
काम बान ते हई नरिंद[2] ॥७१२॥

ते सुंदरि चलि मंदिर गई ।
भली सेज पुरिष संगई ।
रंवहिं कंतु हंसि करहिं अनंदु ।
मण महिं धरहिं सौंरसी इंदु ॥७१३॥

इहि विधि पुरिष सेज संग्रही ।
होत दौत तत्खिन संमुही ।
चल्यौ कूच करि तबहि नरेस ।
पहुंच्यौ जाइ चंद्रगिरि देस ॥७१४॥

परसे चंद्रनाथ के पाइ ।
बचन सिध्धि भई तुम्है सहाइ ।
कहै सौंरसी सुणि गुरणाथ ।
अब हौं रहौं गुसांई साथ ॥७१५॥

चरण कमल णित बंदौं तोहि ।
मनु डिढु रहै जोग सौं मोहि ।
लोक लाज परबस सुंदरी ।
अतिहि दुक्ख तुरकणि बस परी ॥७१६॥

ता लगि गुन दिखरायौं नाथ ।
सौंपी साहि सुंदरी हाथ ।
जौ नहिं कह्यौ साहि कौ करौं ।
तौ रहै नारि होइ दुख घनौं ॥७१७॥

एकौ विधि कीनौ जी दापु ।
म्रिग (मिरिग) बधत मैं दियौ सरापु ।

---

[७१२] १. श्री. जोग्यंद । २. श्री. नरचंद।

बचन भरथरी कियौ बियोग।
चंद्रनाथ प्रसाद संजोग ॥७१८॥

अबहि तजौं सुख संपति राजु।
मनु द्रिढु धऱ्यौ जोग पर साजु।
चंद्रनाथ जिय करयौ अनंद।
जाहि पुत्रु गढ ढाल समुंद ॥७१९॥

भुगवहु धर पहुमी मै धरी।
एकु बचनु मेरौ प्रतिपरी।
भौ जगि अब (अब्ब) अवंती धनी।
जाणि मीचु काया आपनी ॥७२०॥

जितौ राजु सुख सयल असेस।
गुर के बचन भश्रो परदेस।
गोपचंदु धौरागिरि तनौ।
तिहि पुर राजु तज्यौ आपनौ ॥७२१॥

सिघ[1] बन सुख धरी समाधि।
जोग जुगति कै काया साधि।
जिनहि अंतेवर हती अपार।
तिनहूं तजत न लागी बार ॥७२२॥

मेरैं ग्रेह एक बर नारि।
गुर के बचन न घालौं हारि।
बोलै सिध्धु सुनहि रे बच्छ।
जोग जुगति भाषा अरु कच्छ ॥७२३॥

अविचलु ध्रिगु बोल अरु मूलु।
इन सम भ्रिग आन को तूलु।
औरु कहा सिखऊं तुम जोगु।
राजनीति प्रतिपालहि लोगु ॥७२४॥

---

[७२२] १. श्री. स्यंघ।

सिध्ध सबदु मति मेटहि मोहि ।
　　अबिचलु राजु पुहमि मैं तोहि ।
रावल नांउ धरहि तो तनौ ।
　　अरु जो पुत्र बंस आपनौ ॥७२५॥

आदि बिरदु जनि मेटहि मोहि ।
　　यह निजु सीख सौंरसी तोहि ।
छाडहि जोग जुगति कौ भेसु ।
　　करि प्रनाम चालियौ नरेसु ॥७२६॥

दीरघ मजलि चल्यौ करि तार ।
　　पहुंच्यौ देवगिरि[1] दुर्ग मझारि ।
स्यौं दल कटक राम बरबीर ।
　　भेंटन चल्यौ सौंरसी धीर ॥७२७॥

सुत भेंटी तिहि कंठ लगाइ ।
　　लै गयौ देवगिरि[1] दुर्ग चढ़ाइ ।
गावहि मंगल नारि अनंत ।
　　सबद अतंत ति बणित कहंत ॥७२८॥

बेद मंत्र धुनि बोलहि ब्यास ।
　　जनु सुर देव ब्रह्म कइलास ।
नाचहिं चतुर मनोहर णारि ।
　　चित्ररेख रंभा उनहारि ॥७२९॥

तिसौ सादु उपज्यौ तिहि काल ।
　　नाचहिं नारि तरुण ब्रिध बाल ।
रतनरंग पहं कही न होइ ।
　　त्यौं कहि अंतु न जानै कोइ ॥७३०॥

समदे बिप्र भाट मंगना ।
　　सोवन कलस ठए अंगना ।
पून्यौ चंदन चौक अनूप ।
　　कियौ अनंदु महा महि भूप ॥७३१॥

---

[७२७] १. श्री. द्यौगिरि ।
[७२८] १. श्री. द्यौगिरि ।

अधिकु अनंद नगर मैं होइ।
हंसत बदन दीसै सबु कोइ।
पकरि राउ राणी की बांह।
बैठौ अर्धछत्र की छांह ॥७३२॥

राजा बूझै सुणि हो बच्छ।
कैसे भेंट्यौ साहि मलिच्छ।
क्यौं ढिल्ली गढ़ कियौ प्रवेस।
कैसैं भेंट्यौ साहि नरेस ॥७३३॥

क्यौं रिझयौ ढिल्ली कौ धणी।
कैसैं लई बाल कामिनी।
कहै सौंरसी सुनि हो राइ।
ए सब कर्म लिखत के भाइ ॥७३४॥

जौं समरथु मेटै सौ बार।
तउअ न अख्खर मिटै लिलार।
कहै सौंरसी सुनहि नरेस।
मैं कीनौ जोगी कौ भेस ॥७३५॥

चंद्रनाथ पहं दख्या लई।
मो अति सिध्धि जोग की भई।
हौं जोगी इक सबदी भयौ।
जंबू दीपु सोधि सबु लयौ ॥७३६॥

गौ धौरागिरि संकर जात।
तहां सुणी सुंदरि की बात।
जोगी एकु भेदु सबु कह्यौ।
मिली बिंदी तख्खिन सामह्यौ ॥७३७॥

बाट घाट बूझी जोगिंद[1]।
तब हौं हरष्यौं सुनहि नरिंद[2]।
तब मैं मनु चलिबे कौ कियौ।
ढिल्ली णगर पयानौ दियौ ॥७३८॥

---

[७३८] १. श्री. जोग द । २. श्री. नरय द ।

पंख नहीं तनु जाइ उडाइ।
ढिल्ली नगर पहूंच्यौ जाइ।
तिरी चरित अति खरौ सुजान।
छाडि चल्यौ सो नगर णिधान ॥७३९॥

पुर पट्टनु नहीं नगरु सुहाइ।
बन उद्यान पहूंच्यौ जाइ।
देखे हिरण रोझ मृगमाल।
तब गुन प्रगट्यौ सुनहि भुवाल ॥७४०॥

हिरण बराह रोझ झंखार।
गांडे सावज ससे मराल।
सेही ससे सुवर सिंगाल[1]।
मोहे बंस साद भोवाल ॥७४१॥

सो बनु छांडि नगर महं गयौ।
हौं जोगी इक सबदी भयौ।
कियौ सबदु नाइक कै बार।
दीनी बीन आणि प्रतिहार ॥७४२॥

बीण कहा कहि आणी बच्छ।
मो आगैं गुन कहि ते अच्छ।
कौन काज नाइक कै गयौ।
सिध्धि कामु क्यों तेरौ भयौ ॥७४३॥

जबहि साहि लै गयौ भुवाल।
बेटी बरि थापी नरपाल।
नाइक घर राखी मिछाइ।
मो प्रभु बीन बजावै आइ ॥७४४॥

---

[४१] १. श्री. स्यंगाल।

देखत मोहि अधिकु सुखु भयौ।
बीन ठाटि राघौ कै गयौ।
बैरागी हौं रूप जोगिंद[1]।
राघौ तब बीनयौ नरिंद[2] ॥७४५॥

जब ते बीन रीझयौ साहि।
पुणि लै गयौ म्रिगणि बन माहि।
मोह्यौ पसुपति सयल असेस।
मोह्यौ ढिल्ली तनौ नरेस ॥७४६॥

जो मांगे सा देहौं भाइ।
यह गुन मो हरमणि दिखराइ।
मैं हरि आणी देवगिरि[1] णारि।
रूप रेख रंभा उनहारि ॥७४७॥

सो मैं बगसी तो जोगिंद[1]।
सो नग खंजरि दई नरिंद[2]।
निसि बसि पसु मन लए छिडाइ।
महल मांझ तब गयौ लिवाइ ॥७४८॥

बैठौ साहि जु दै सीस।
सुंदरि बैठीं सहस पचीस।
हरम अंतेवर अगनित पार।
रीझीं तंति नाद झुनकार ॥७४९॥

रीझ्यौ साहि बाच चित धरी।
बकसी कंवल नयनि सुंदरी।
तब हौं प्रगट्यौं सुनहि नरेस।
बगसे हय गय तुरी असेस ॥७५०॥

अरु बकसीस करी अति धनी।
इहि बिधि लई बाल कामिनी।

---

[७४५] १. श्री. जोग्यंद। २. श्री. नरयंद।
[७४७] १. श्री द्यौगिरि।
[७४८] १. श्री. जोग्यंद। २. श्री. नरयंद।

तबहि राउ उठि बहु थुति करै।
 ऐसो पुत्र बंस अवतरै ॥७५१॥

धणि जननी जिहि तूं उर धर्यौ।
 धणि सुबंस जिहि कुल अवतर्यौ।
धणि सुदेस साइर कौ तीर।
 जिहि थिति उपज्यौ साहस धीर ॥७५२॥

रावत राणा बंधौ भाइ।
 सबै कुटंब सहित भौ राइ।
दीणौ छत्रु सौंरसी सीस।
 अबिचलु राज करहि नर ईस ॥७५३॥

सौं दल राजा कियौ जुहारु।
 राजनीति तैसौ ब्यौहारु।
इंद्र रूप भोगवै भुवाल।
 आवै दसौ देस कौ मालु ॥७५४॥

रिपु दल भंजन भुवन असेस।
 करै राजु सौंरसी नरेस।
अहनिसि बसै छिताई हियै।
 जिसैं भुजंग हेम मणि लियै ॥७५५॥

जैसैं जती जोग अभ्यास।
 ज्यौं पतिब्रता कंत की दास।
ढोल समुद साजि दलु गयौ।
 देसु असेसु समुद ढिग लयौ ॥७५६॥

मात पिता जिय अति सुख लह्यौ।
 देवगिरि[1] दुर्ग बहुरि सामह्यौ।
कियौ समौ कंचन कै तोल।
 ओछे देखि न रावर बोल ॥७५७॥

---

[७५७] १. श्री. चौगिरि।

रतनरंग कबि देखि बिचारि ।
करी कथा सो अम्रित सार ।
ज्यौ मंदिर दीपक बिनु ग्रेह ।
साइर सीपि स्वाति बिनु मेह ॥७५८॥

त्यौं बिनु कलस कथा आरंभ ।
लीनी बरणि कथा कबि रंग ।
इतनी कथा सुनै दै कान ।
तिनकौ फुरै गंग अस्नान ॥७५९॥

चरित छिताई आयौ छेउ ।
जयौ सकल मैं त्रिभुवन देउ ॥७६०॥

अर्थ

६२. पैदल सैनिक, हाथी तथा घोड़े निसुरत खाँ के साथ चल रहे थे। नगर (?) दुर्ग, पट्टन तथा नगर तुर्कों से वैर कर के बच न सके।

६३. इस वार्ता को बढ़ा कर क्या कहूँ? तुर्क सामंत देवगिरि जा पहुँचे। तुर्क सेना देश में फैल गई। राजा रामदेव नारी छिताई को देकर ही त्राण पा सकता था।

६४. जो गाँव स्ववश (सभी प्रकार से संपन्न) बसे हुए थे, उनके चिह्न तक [उनके] स्थानों से तुर्कों ने समाप्त कर दिए (उनके नाम तक शेष न रक्खे), और जो शंकित होकर तुर्क सेनापति विसुरत खां से आ मिलता था, और [उसके बाहु] मींजता था—उसके बाहुबल की शरण लेता था—उसके कंधे ठोककर वह उसे [उपहार में] क़बा (लंबा अँगरखा) पहनाता था।

६५. [रामदेव की] प्रजा भाग कर समुद्र [के तटवर्ती भूभाग] में जा छिपी। देवगिरि में रामदेव ने यह समाचार सुना। तब राजा रामदेव के मन में चिंता उत्पन्न हुई, और उसने अपने बुद्धिमान सचिवों को बुलाया।

६६. "जिस प्रकार जिसकी बुद्धि प्रविष्ट हो सके, वह अपना मत प्रकाशित करे"—राजा ने कहा। "साम, दान, भेद तथा अस्त्र [—ग्रहण] में से जो भी जिसे ठीक समझ पड़े, वह बताए।"

६७. उसके ज्ञानवान सचिव अपना मंत्र प्रकाशित करते हुए कहने लगे—"[यदि निसुरत खाँ का सामना किया गया तो] दो पखवाड़े में हमारा विनाश हो जावेगा। यदि निसुरत खाँ युद्ध में विचलित हुआ, तो सुल्तान अलाउद्दीन [स्वयं] सेना के साथ आवेगा।

६८. "और यदि युद्ध में उसके सामने हमारे पैर विचलित हो गए तो उससे जीवित बच कर ये (हमारे सैनिक) नहीं जा सकते।" राजा को ऐसी चिन्ता हुई कि उसे शरीर की सुधि-बुधि जाती रही, क्योंकि इस प्रकार अनजान में शत्रुसेना [उसके ऊपर] आ पहुँची थी।

६९. [सचिवों ने पुनः कहा—] "या तो अपनी कन्या (छिताई) को देकर निश्चल (निरापद) हों, और या तो आप दिल्ली जाने का निश्चय

करें ।" यदि, हे राजा, आप दुःख स्वतः सहन कर लेंगे, तो प्रजा, देश और कोष निश्चल (निरापद) रहेंगे ।"

७०. इस प्रकार की मंत्रणा करके [राजा रामदेव अलाउद्दीन के सामंतों से जा मिला और] उसने मोल्हन के बाहु मींजे [जो अलाउद्दीन पक्ष का था] ।

७१. सागर के तटवर्ती प्रदेशों में जो अनेक राजा थे, निसुरत खाँ ने उन्हें अपने [वश में] किया, और राजा रामदेव को अपने साथ कर लिया । बीच में न रुक करके वे दिल्ली जा पहुँचे ।

७२. [यह समाचार सुनकर] सुल्तान अलाउद्दीन को अत्यंत सुख हुआ । अलू (उलुग) खाँ ने उनका स्वागत किया । अलाउद्दीन ने वाराम (न्यौछावरें) कीं और दस लाख टके इनाम (पुरस्कार) के रूप में दिए गए ।

७३. सुल्तान ने रामदेव पर यह विशेष स्नेह किया और उसे अपने समान [सुख और सत्कारपूर्वक] रक्खा । वह ग़ैरमहल में सुल्तान के पास ही रहने लगा जहाँ पर सुल्तान के आवास में हर्म रहता था ।

७४. दोनों में प्रेम बहुत अधिक बढ़ा—यहाँ तक कि वे [परस्पर] अपना-अपना गुह्य विषय भी कहने लगे । राजा संगीत-रस में अत्यंत पटु था, और उसने इस प्रकार (संगीत के द्वारा) सुल्तान को वश में कर लिया ।

७५. इस प्रकार [धीरे-धीरे] तीसरा वर्ष आ गया, और राजा को घर का स्मरण भी न हुआ । तब रानी ने वज़ीर (मंत्री) को बुलवाकर उससे कहा—

७६. "हे कुबुद्धि मंत्री, तुम [तनिक] आँखें खोलो; तुम आज भी राजा की सुधि नहीं कर रहे हो । बिना स्वामी के राज्य नहीं चलेगा, इसलिए राजा को आज ही वहाँ से बिदा होने के लिए लिखो ।

७७. "घर में कन्या [सयानी होकर] विवाह करने के योग्य हो गई और लोग भ्रम (चिंता) वश होकर हाथ मलते हैं । जिसके घर में कन्या क्वाँरी रहती है, क्या वह नींद भर रात में सो सकता है ?

७८. "घर में कन्या अथवा ऋण के होने की पीड़ा जिन्हें व्याप्त होती है, उनके शरीर में चिंता हो जाती है । [छिताई की] देह अब घट चली है, उसका हृदय (वक्ष) ऊँचा हो चला है, और उसके शरीर में काम ने बसेरा कर लिया है ।

७९. "[उसके] हृदय (वक्ष) को फोड़ कर क्रूर कुच निकल पड़े हैं, वे मानों मदन के बैठने के मोढ़े हों। यह बाला रूपी वेली कुम्हला जावेगी यदि अवसर पर इसे खींचा न जायेगा।

८०. "कुँआ का जल यदि नित्य [उससे] निकाला जाता है, तो वह निर्मल होता है, और उपहार (?) में भी चढ़ता है। उसी प्रकार भोग से कामिनी सुख प्राप्त करती है, और वह प्रमदा अपने चरम स्वरूप को धारण करती है।"

८१. घर के सभी हाल चाल उसने लिखे, और चार सवार पत्रवाह होकर चले।

८२. कुछ दिन बीच में ठहरे, और फिर वे जाकर दिल्ली नगर पहुँच गए। [राजा के] ठहरने का स्थान पूछ-पाछ करके वे राजा के पास गए, और उसके चरणों की वंदना करके उन्होंने उसे पत्र दिया।

८३. इस पर [राजा ने] घर के हाल-चाल पूछे, छिताई तथा समस्त परिवार का कुशल पूछा, और फिर अपनी कन्या (छिताई) की बात पूछी— "क्या छिताई अपने शरीर से सकुशल तो है ?"

८४. पत्रवाह शिर नवा कर (नमस्कार करके) कहने लगे, "रानी ने अन्न-जल का परित्याग कर दिया है।" ऐसा सुनकर राजा के नेत्रों में आँसू आ गए, और वे [वहाँ से घर] चलने की आकांक्षा मन में करने लगे।

८५. राजा स्वतः [यह] बात कहने लगे—"मैं सुल्तान के हाथ में यह पत्रिका दूँगा।" [साथ ही] राजा ने यह भी विचार किया—"और कहूँगा कि मेरी कन्या का विवाह है, [इसलिए अब मुझे देवगिरि लौटने की अनुमति दी जावे]।"

८६. मंत्री [जो राजा के साथ ही देवगिरि से आया था] समझा कर यह बात कहने लगा—"हे राजा, खेल-खिलवाड़ से काम नहीं सधता। तुमने जो दो दासियाँ कुरूप [समझकर] बादशाह को दीं, वे उसके मन में अनूप [बनकर] बसी हुई हैं।

८७. "उनसे सुल्तान तुम्हारे भेद प्राप्त किया करता है, और यदि तुम से वह बेटी [के विवाह] की बात सुनेगा, तुम जाने नहीं पा सकते। [तब तो] वह तुम्हें बेड़ियों में डलवा कर तुम्हें पकड़ रक्खेगा, और तब तुम, हे राजा, छिताई को [उसे] देकर ही छूट सकोगे।"

८८. राजा ने ऐसी बात सुनकर दाँतों तले जीभ दबाई और कहा—[हे मंत्री,] तुम ऐसी बात किस प्रकार कह रहे हो, शांत हो (चुप रहो)। "जिस प्रकार निसुरत खाँ और अलू उतुग़ खाँ हैं, उन्हीं के समान (उसी प्रकार) बादशाह मुझे भी मानता है।"

८६. [मंत्री ने कहा,] "मद (मत्तता) में जीभ का सच्चा (?) स्वाद किसको प्राप्त होता है, और जुवे के खेल में सच्ची बात कौन कहता है ? कामिनी जिस प्रकार कामरहित नहीं हो सकती, उसी प्रकार राजा-मित्र कभी भी गुणकारक (हितकारी) नहीं हो सकता।"

६०. राजा [मंत्री की] एक भी बात नहीं सुन रहा था, और प्रभात होने पर वह पत्रिका लेकर अलाउद्दीन के पास] गया।

६१. "यहाँ मुझे बहुत दिन हो गए हैं और देवगिरि के [लिखे पत्र] आए हैं कि"—राजा रामदेव ने कहा—"मेरे यहाँ कन्या का विवाह है।"

६२. सुल्तान अलाउद्दीन ने आज्ञा दी—"राजा को [कल] सबेरा होते ही बिदा करो।" [और राजा से कहा—] "तुम्हारी सेवा से मुझे बहुत सुख हुआ है, [अतः] हे रामदेव, जो तुम्हें अच्छा लगे, मुझसे माँगो।"

६३. उसको शिर झुकाते हुए राजा कहने लगा—"इस भूमि (पृथ्वी) पर अनुपम चित्र (दृश्य) और चरित्र (कार्य-व्यापार) हैं, अतः मेरे जी में यही एक इच्छा है कि बिदाई में मुझे बादशाह एक गुणी चित्रकार दें [जो इन चित्रों और चरित्रों को सफलतापूर्वक अंकित कर सके]।"

६४. बादशाह प्रसन्न होकर कहने लगा—"[जो] गुणी होता है, वह गुण का संग्रह करता है।

६५. "[जब कि] लोभी अपने समस्त सुकृत (पुण्य) गँवा देता है, कर्माकर्म (कर्त्तव्याकर्त्तव्य) से द्रव्य का संग्रह करता है, [और] कामी कामिनी चाहता है। गुणी गुण का संग्रह [वैसे ही] करता है—

९६. "जैसे हंस जल को छड़ देता है, और स्वाद-लुब्ध होकर क्षीर का पान करता है। [किंतु] जिस प्रकार चलनी (जिससे छानकर अनाज साफ किया जाता है) अवगुण (अनाज की खराबी—उसका कूड़ा-कचड़ा) चाहती है (ग्रहण करती है) उसी प्रकार मूर्ख व्यक्ति निर्गुणता को जानता है (प्राप्त करने की चेष्टा करता) है।"

९७. [अलाउद्दीन ने एक चित्रकार को आज्ञा दे दी कि वह रामदेव के साथ देवगिरि जावे]। राजा ने चित्रकार को अपने साथ बुला लिया उसे अपना क़बा (लंबा अँगरखा) प्रदान कर उसके शिर पर छत्र धारण कराया, उसे हाथी और घोड़े दिए, और फिर सौ बार उसे वीसा (?) पहनाया।

९८. [राजा के] साथ चित्रकार [इस प्रकार] चला, मानो वह पिटारे में डाला हुआ साँप हो। मंत्री मना करता और कहता रहा कि [राजा] गाँठ में अंगार बाँध कर ले चला है।

९९. [किंतु राजा को] मंत्री की बात अच्छी न लगी। वे (सभी) देवगिरि दुर्ग जा चढ़े। समस्त नगर को हर्ष हुआ कि राजा सकुशल घर [वापस] आ गया था।

१००. राजा नगर में गया, घर-घर आनंद-मंगल हुआ, गीत हुए और बाजे बजे; हाथी, घोड़े, कपड़े, कनक के कंकण और भांडार दिए गए; याचक-जन को संतुष्ट किया गया, और संसार आनंदित हुआ।

१०१. [राजा को] देखकर संसार आनंदित हुआ, मानो राजा का [पुनः] अवतार हुआ हो (दूसरा जन्म हुआ हो) [क्योंकि वह अला-उद्दीन के चंगुल से निकलकर घर आ गया था]। याचकों को प्रसन्न करके राजा ने बिदा किया और चित्रकार को बुला लिया।

१०२. [वह उसकी] बाँह पकड़कर [उसे महल के] भीतर ले गया, और महल दिखलाने के लिए खड़ा हुआ। उसने कहा—"वर्षा के मेघों के पुनः बरसने के [पूर्व] शीघ्र हमारे घर को चित्रित कर दो।"

१०३. चित्रकार ने कहा—"हे राजा, सुनो, ऐसे चित्र किस प्रकार किया जा सकता है? मैंने पुराणों में पढ़ी हुई यह बात सुनी है कि जीर्ण काया, [जीर्ण] कपड़े और [जीर्ण] काष्ठ—

१०४. "इन पर रंग की रेखा नहीं चढ़ती, ऐसा जानकार और विशेष चतुर लोग कहते हैं। चित्र पुराने वर्णों (रंगों) पर नहीं हो सकता, [इसलिए] मेरी समझ में आप [पहले] इसे सँवराइए (ठीक कराइए)।"

१०५. तब रामदेव ने हृदय में विचार किया कि चित्रण नवीन घर बनवाने पर ही होगा, [इसलिए] जो प्रवीण और प्राग्रसर (प्रमुख)

सूत्रधार (राजगीर) थे, [उन्हें] बुलाकर राजा ने [भवन निर्माण का] बीड़ा दिया।

१०६. [साथ ही] कमठानों (कर्माध्यक्षों ?) को आज्ञा हुई, और इस कार्य के लिए [राजा ने] अगणित द्रव्यों को दिया। [उसने] ज्योतिषी बुलाकर लग्न निकलवाई, और शुभ वार में तथा शुभ शकुनों के साथ नींव रचवाई।

१०७. [राजा ने] क्षेत्रपाल (ग्राम-देवता) की पूजा भावपूर्वक की जिससे कि गृह [अपने] स्थान पर दृढ़ और अभंग (पूर्ण) हो। राजा ने चारो ओर गहरी नींव खुदवाई और पाँच पुरसे की उसकी भरान भरवाई।

१०८. [उस भवन में] चौबारे, चोपखे और चडोर (?) बनाए गए थे, और कलशों पर कंचन के मोर निर्मित हुए थे। एक स्थान पर नगर (पट्टन) बना हुआ था जो हाटों से पटा हुआ था, और [उसकी] नटशालाओं में नवीन नाटकों का नाट्य (अभिनय) हो रहा था।

१०९. रमणीय (?) रंगशाला में कोर करके (जड़ाव के लिए छिद्र करके) [लगाए गए] रमणीय लाजवर्द—एक प्रकार के हल्के नीले पत्थर—की भूमि (फर्श) में अक़ीक़—एक प्रकार के प्रायः लाल रंग के पत्थर—जड़े हुए थे। [निर्धनों के] खाटों पर बने छप्परों से लेकर [धनिकों के] सतमंजिले आवास तक [उसमें बने हुए] थे। उसका कंचन का कलश मानो कैलाश का शिखर था।

११०. केलि के लिए [उसमें] काँच की कामिनियाँ—कामातुरा स्त्रियाँ—बनी हुई थीं, वे [रति से] आहत भामिनियाँ विचार (सुधि-बुधि) भूली हुई थीं।

१११. बादल-महल (वर्षा-भवन) के चारों ओर उठी हुई घन-घटाओं में अट्टालिकाएँ और अटाएँ (छतें) अनुपम रची हुई थीं। छत्र और गवाक्ष भी अनुपम बने हुए थे, और उन की ओट में राजा झाँकी (दर्शन) देता था।

११२. बावन (अनेक ?) वस्तुएँ वर्ण करके (दीप्ति उत्पन्न करके) मिली (लगी) हुई थीं, जो आरसी (दर्पण) के समान अत्यंत अनुपम थीं।

चित्रशाला भी मन लगा कर निर्मित की गई थी, जिसको देखते ही मन लुब्ध हो उठता था।

११३. [उसमें] जो माणिक चौक बनी थी, वह मनमोहिनी थी; वह ऐसी अनुपम बनी हुई थी कि चोर की भी आँख-मिचौली हो जावे। [उसमें] नाना भाँति के भुंइधरे भी बने हुए थे; उनमें [इस प्रकार का अँधेरा लगता था] मानो अँधेरी रात हो।

११४. [उसमें] हिंडोले भी बने हुए थे, जिनके खंभे कंचन के [चित्रित] थे; [उन हिंडोलों को देखकर ऐसा लगता था] मानो स्वसंभवी उक्ति उत्पन्न हो रही हो। अत्यंत अनुपम और सुंदर शृंगारवती रमणियाँ निर्मित करके खड़ी की गई थीं, [जो देखने में ऐसी लगती थीं] मानो भराव की भरी हुई (कुछ भरकर ठोस बनी हुई) सुंदर नारियाँ हों।

११५. जहाँ पर राजा सभा लगा करके बैठता था, वह स्थान स्फटिक की पीठ से बाँधा हुआ था—अर्थात् सभा-मंडप में चारों ओर स्फटिक इस प्रकार लगाया हुआ था कि उससे सभासद् अपनी पीठ टेक सकें। [वहाँ] चकवा तथा चकवी एक ही डाल पर [बैठे चित्रित] थे, और जल-कुक्कुटी, मटामरे, आरि [आदि जल-पक्षी] भी [चित्रित] थे।

११६. वहाँ पर और भी जितने जीव [चित्रित] थे, वे [ऐसे लगते थे मानो] भराव के भरे हुए (कुछ भर कर ठोस बनाए हुए) हों, और नीव में सुसज्जित हों। कमल, कुमुदिनी, तथा उनके पत्ते [चित्रित] सरोवर में समान रूप से झलमला रहे थे।

११७. मछलियाँ और कछुवे भी उस [चित्रित] सरोवर में बहुत बड़े-बड़े बने हुए थे, और उन्हीं के समान चाल्हा (?) भी [बड़े-बड़े] बने हुए थे। सभा-मंडप में बना हुआ (चित्रित) वह सरोवर ऐसा दिखाई पड़ता था, जैसा कि हस्तिनापुर में पांडवों का था।

११८. जो राजागण [उस सभा-मंडप को] आकर देखते थे, वे [जल के भ्रम से] डरकर उसमें प्रवेश नहीं कर सकते थे।

११९. [उस भवन में] चंदन-काष्ठ के और ही ढंग के कठहरे बने हुए थे; वे ग्रीष्म में भी हिम (हेमंत) ऋतु के समान [सुख देते] थे। सुंदर चौबारे और चौपखे भी थे, जहाँ पर वर्षा-काल में राजा समय व्यतीत करता था।

१२०. [उस भवन में] स्वर्ण के पचास [फ़ौवारे] पीपल [की आकृति

के] बने हुए थे, जिनसे बारहो मास जल की वर्षा होती रहती थी। और खरबूजे के आकार के गोमटों (गोमेदों ?) के बने हुए उनकी पौरियों के किवाड़ थे।

१२१. वहाँ पर सरिकाओं और शुकों का भी निवास था, और खुमरी मधुरी भाषा में बोलती थी। पुनः [उस भवन में] एक महल [इस प्रकार का था कि उस] में [यद्यपि जल भरा हुआ था [ऐसा लगता था मानो बैठने का स्थान हो।

१२२. उसे देखकर शरीर को [भ्रमवश] सुधि नहीं रहती थी और जो उसमें पैर रखता था वह गहरे गंभीर जल में डूब जाता था। और हलब्बी काँच से भरी हुई जो गच बनाई गई थी, वह तो ऐसी शोभित होती थी मानो भरी हुई कालिंदी हो।

१२३. वहीं पर राजा का जीवन-वारि (पीने के जल का राजकीय जलाशय) था, जो यमुना के जल जैसा दिखाई पड़ता था। [वहाँ पर] भाँति भाँति के मंदिर, जिनशालाएँ और स्वर्णजटित शयनकक्ष (?) भी शोभा दे रहे थे।

१२४. जब आवास बनकर तैयार हो गए, चित्रकार राजा के पास गया। वह राजा को आज्ञा लेकर पाँच वर्णों के (पँचरँगे) विचित्र चित्रों की रचना करने लगा।

१२५. गणेश का स्मरण कर [उसने] लेखनी साधी, और अपनी बुद्धि (कल्पना) की वह रचना करने लगा। पहले उसने सरस्वती का स्वरूप निर्मित किया, जिससे कि उक्ति-चित्र अनुपम हो सकें।

१२६. उसने नल और दमयंती का संयोग चित्रित किया, और तदनंतर उनका वियोग [भी]। उसने भारत (महाभारत) और रामायण [के दृश्यों] का चित्रण किया, और महामनोहर मृगया [के दृश्यों] का भी।

१२७. उसने कोक-कला के चौरासी प्रकार चित्रित किए, और चार प्रकार की स्त्रियाँ—पद्मिनी, चित्रिणी, हस्तिनी और शंखिनी—भी कीं, जो अत्यंत मनोहर निर्मित हुईं।

१२८. उसने हाथी बनाए (चित्रित किए) जो सुंदर थे, और खेड़ों (क्रीड़ाओं) में खड़े थे। उसने चार प्रकार के पुरुष भी बनाए (चित्रित किए), जो चार आकृतियों के थे। कविजन नारायणदास कहता है कि जब वह चित्रकार उक्त आवास को [इस प्रकार] चित्रित करने लगा—

१२६. नगर के लोग देखने के लिए जाते थे और चित्र की ओर देखकर लुब्ध हो रहते थे। जितने भी पंडित, चतुर और सुजान थे, वे अवश्य ही आते थे और दिन भर देखते थे।

१३०. एक दिन की [घटना] कहते नहीं बनती । छिताई छज्जे पर आकर झाँकने लगी। [जब] सुन्दरी [झाँक कर] दामिनी के समान छिप गई, उसे देखकर चित्रकार को मूर्छा हो गई।

१३१. चित्रकार मन में यह लगाए रहता था कि वह फिर कभी आकर झाँक जाए। जब वह आवास सूना हो जाता, तब वह [उस] निवास को देखने आती।

१३२. और तब वह अनेक रागों को रच और सँवार कर वीणा को ठोंकती (बजाती ?) हुई उस चित्रशाला को देखती। किंतु वह [एक दिन] काम की व्यथा के कारण अत्यंत उदास होकर चित्रावास देखने आई।

१३३. वह गजगति से कामोद्दीपक मुसकान के साथ चल रही थी, और उसने साथ में पाँच सखियों को भी ले लिया था। वह चित्रशाला देखने चली, जहाँ पर विविध प्रकार के चित्र लिखे (चित्रित) हुए थे।

१३४. चित्रकार लेखन (चित्रण) करता हुआ [प्रवेश-द्वार की ओर] पीठ दिए हुए था, उसी समय नुपूर की ध्वनि सुन कर उसने दृष्टि फेरी। वह छिताई का मुख देखता ही रह गया, [और यह सोचता कि] यह या तो रंभा या कोई [अन्य] अप्सरा है।

१३५. [उस समय] चित्रकार ही चित्र के जैसा लगा (प्रतीत हुआ), मानो ठगिनी ने ठगौरी डाल दी हो ऐसा हो गया । वह चारों ओर चित्र देखती फिर रही थी, और वीणा के जो बोल वह सुन रही थी, वे [उसके] कानों में निवसित हो (गूँज रहे) थे।

१३६. उसने कोक-कला की खांति (माला ?) देखी, जिसमें चौरासी आसनों के प्रकार बने हुए थे। आसनों के चित्र विविध प्रकार के थे। इनमें वह शुभ (सुखद) बिपरीत [रति] भी चित्रित थी जो प्रेम और आनंद का सार होती है।

१३७. आसनों को देखकर वह अत्यंत लज्जित होने लगी और मुँह के सामने अंचल करके मुस्कराने लगी। विपरीत रति के चित्र की ओर बाँह पसार कर उसकी सखियों ने पूछा, "बताओ यह कौन सा विचार (कौन सी कल्पना) है ?"

१३८. [किंतु] उस विपरीत रति के चित्र को देख बाला (छिताई) भ्रमित होकर भयभीत हो गई। उसने [चित्रित] नाट्यशाला में अभिनीत होते हुए नाटक देखे, जिस [नाट्यशाला] के चौरासी खंभों पर चित्र लिखे (अंकित) थे।

१३९. [उधर] चतुर चित्रकार ने [उसे] जैसी देखा, कागज पर वैसी ही उतार लिया। उसका देखना, चलना, मुड़ना और मुस्कराना चर्चित (व्यक्त) करके वर्णों (रंगों) में चित्रकार ने चित्रित कर लिया।

१४०. वह सुघड़ सुंदरी प्रवीणा धारण किए हुए इस प्रकार लगती थी मानो यौवन ही वीणा बजा रहा हो। वह जो नाद प्रस्तुत कर रही थी, वह पास आकर मन को हर लेता था। मनुष्य बेचारा [इस प्रबल आकर्षण के सामने] क्या करता ?

१४१. एक तो वह सुंदरी थी, और फिर उसका शरीर भी सुडौल था, वैसे ही जैसे एक तो मिश्री हो, और [वह भी] क्षीर में मिश्रित की गई हो; अथवा एक तो सोना हो, और वह भी सुगंधित हो; अथवा प्रयाग [रूपी वृक्ष] की डाल (भूमि) प्राप्त हो, और वह भी पड़े-पड़े [अनायास ही]।

१४२. चित्रिणी (छिताई) चित्रों को देखकर वापस हुई; उसकी गति गर्भिणी हस्तिनी जैसी आलस्ययुक्त थी।

१४३. कविजन नारायणदास कहता है, वह [एक दिन] पुनः उक्त आवास को गई। उसने [उस दिन] अपने शरीर पर कुसुंभी चीर धारण किया था। शरीर गौर वर्ण का और अत्यंत सुडौल था ही।

१४४. श्याम रंग की कंचुकी के नीचे उसके कुच इस प्रकार शोभा दे रहे थे मानो कामदेव ही कुंडली दिए हुए (मारे हुए) [वहाँ बैठा] हो। वह अपने साथ मृग-शावकों को लगाए हुए थी और [उनको] अर्पित करने के लिए हाथ में हरे जौ लिए हुए थी।

१४५. [वह] बाहें ऊँची करके उन्हें [हरे जौ] चरा रही थी, और उसके कुच कंचुकी को छेद [करके निकल] -से रहे थे। उसी समय चित्रकार ने [उसके] कुच मूलों (?) को देखा जो [श्याम कंचुकी के नीचे ऐसे प्रतीत हो रहे थे] मानों श्याम घटा में शशि की रेखाएँ हों।

१४६. उस [चित्रकार] ने अपना तन मन वहीं पर लगा रक्खा था, जिससे आजीवन वह स्मृति कभी न जावे। छिताई उस महल में निर्भय होकर फिर रही थी। किंतु उस [की इस मुद्रा] को देखकर चित्रकार को मूर्च्छा हो गई।

१४७. जब चित्रकार सँभल कर चेत में आया, उसने [छिताई के] उस स्वरूप को मन में विचार (स्मरण) कर चित्रित किया। तदनंतर [उस चित्र पर] जब-जब उसकी दृष्टि पड़ी, तब-तब उसकी बुद्धि (चेतना) हर उठी।

१४८. गृह [के निर्माण और प्रसाधन] का समग्र कार्य [संपन्न] हो गया, तो राजा रामदेव ने ब्राह्मण पुरोहित को बुलवाया, [और उससे कहा] "नारियल तथा पुंगीफल (सुपारी) लो और छिताई के लिए [उपयुक्त] वर खोज लो।

१४९. "देश-देशांतर में जाकर फिरो और योग्य [व्यक्ति] को वरण कर आकर कहो। स्त्री का कर्म यह है कि वह कुल की विद्या का ज्ञान प्राप्त करे, इससे दिन-दूना उसमें लालिमा चढ़ती है।"

१५०. "पुरुषत्व की गति (विशेषता) [वहाँ होती है] जहाँ सज्जनता होती है, और वहीं पर निश्चित रूप से कन्या देनी चाहिए। व्याह, वैर, और सच्ची मैत्री—ये तीन [बातें] अपने से समान से ही करनी चाहिएँ।"

१५१. ब्राह्मण (पुरोहित) आशीर्वाद देकर चले और द्वारसमुद्र गढ़ जा पहुँचे, [जहाँ पर] भगवन् नारायण राजा थे।

१५२. उनका पुत्र सुजान सौंरसी (समर सिंह) था, जो समुद्र के समान [गंभीर] मुद्रा का व्यक्ति था।

१५३. वह (सौंरसी) मुद्गर भाँजता और नाल फेरता था, जिससे उसका सुंदर शरीर सुदृढ़ बना था और [इस कारण] वह खंभ [जैसा] लगता

था। वह सकल गुणों का जानकार [भी] था और उसका सुयश पृथ्वीतल पर सारा संसार कहता था।

१५४. समस्त गुणों तथा राजनीति का वह प्रयोग करता था और पर-स्त्री पर दृष्टि नहीं डालता था। बसीठी (दूतत्व) करके [पुरोहितों ने विवाह की] बात चलाई, और [द्वारसमुद्र] जाकर कन्या छिताई को सौंरसी को दे दिया।

१५५. प्रामाणिक (शोधी हुई) लग्न लिखकर उन्होंने सौंरसी को तिलक कर दिया और [तदनंतर] पुरोहित देवगिरि [लौट] आए। उन्होंने जा कर राजा से यह बात बताई कि [द्वारसमुद्र] जाकर उन्होंने कन्या (छिताई) को सौंरसी को दे दिया है।

१५६. राजा [भगवन् नारायण] ने [सब से] परामर्श किया, और विवाह के लिए आज्ञा दी। उसने मंत्री को स्वतः बुलाया [और कहा] कि वे सोने के आभूषण गढ़ावें, और जिसको जैसा [जो कार्य] करना हो, यथा पाट-पटोरे और हाथी-घोड़े एकत्र करना, वह सब सँजो कर रक्खे, और पोस्ती (पोस्ते की ढोढी पीनेवाले—निकम्मे), और मोस्ती (मुटमर्द ?) [तक] को भी [दान] देने में रुकावट न हो।

१५७. सभी ने शक्ति लगाई (यथाशक्ति कार्य किया) और [जो कुछ जिसे सँजोना था वह उसे] सँजो कर आया। विवाह का समाचार सुनकर सभी आए। राणा-राय ही सात सौ इकट्ठे हो गए, और वे सौंरसी की बारात में चले।

१५८. रात-दिन चलकर वे [द्वारसमुद्र से] अंतर्धान हो गए, और विवाहने के लिए देवगिरि जा पहुँचे। [इधर राजा रामदेव ने] उनकी अगवानी की, और अभिचार (मंत्र-पाठ आदि) हुआ जैसे-कुछ इस कुल के कर्म और व्यवहार थे।

१५९. उसने समस्त मंडप निर्मित कराया। उस मंडप में बैठी हुई बारात शोभित हुई। परदा ठेठ नगर तक डाला गया, और चोज [चातुर्यपूर्ण उक्तियों] के साथ गालियाँ दी (गाई) गईं।

१६०. रतन रंग कहता है, जो कोकिल-बयनी नारियाँ थीं, वे सुधा के समान गालियाँ [गाकर] सुनाने लगीं। उनके वचन सुनते ही मन हर उठता था, और जीभ भोजन का स्वाद छोड़ बैठती थी।

१६१. षट्रस [व्यंजनों] के साथ जेवनार (भोजन) हुआ। [तदनंतर] विवाह तथा अन्य मंगल-कृत्य हुए। विवाह की रात्रि को कामिनियों ने जागरण किया। गामिनियाँ (ग्रामीणाएँ) घूँघट किए हुए घूम चलती थीं।

१६२. एक नारी अपने नेत्र घुमाती थी, एक गले से खखार कर बातें कहती थी, और एक अपनी लटें खोलकर उन्हें लटकाए फिरती थी, मानों वह यौवन-मद [पीकर उस] से छकी हुई गिरी पड़ती थी।

१६३. एक स्त्री खंभा पकड़ कर अँगड़ाई लेती थी, और जो युवतियाँ जागती थीं, वे खूब जँभाई लेती थीं। [कोई स्त्री] उन राजाओं को बुलाकर [चित्रशाला के] चित्र दिखाती थी, जो देश-देश से आए हुए थे।

१६४. [यह सब आयोजन] देखकर [आगत] राजागण रीझ रहे और अपने-अपने देश को बिदा हुए।

१६५. राजा रामदेव ने [बारातियों को] पाँच-पाँच फ़ीरोज़े और लाल दिए; सोना, रत्न तथा जाँची हुई चुन्नियाँ भी दीं। वे [सब] इतने बहुमूल्य थे कि गुणी ही उन्हें जान सकते थे।

१६६. [भगवन् नारायण को] उसने चार सौ सिंघली हाथी दिए। उधर राजा भगवन् नारायण ने भी इतना दान किया कि [याचकों और पावनियों को] कर्ण का स्मरण हो आया।

१६७. सानंद विवाह करके नरेन्द्र [भगवन् नारायण] वापस हुए और द्वारसमुद्र गढ़ पहुँच गए। जब पालकी [गढ़ के] अंदर गई, [छिताई के उससे] उतरते ही छींक हुई।

१६८. [द्वारसमुद्र की] रानियाँ एक-दूसरे का मुँह देखती रह गईं, कि यह मानवी है या अप्सरा। और जब कामिनियाँ [छिताई की] आरती करने लगीं, वे भामिनियाँ उसका रूप देखकर [सुधि-बुधि] भूल रहीं।

१६६. बाला के सिर पर कुटिल केश शोभा दे रहे थे, वे कोमल कच मानो मधुकर-माल थे। [उसकी]माँग में जो मोती पड़े थे, वे मदन के मार्ग [जैसे लगते] थे और उसके ललाट पर [लगा हुआ] तिलक [सिंहासन पर विराजमान] अच्छे राजा के समान [लगता] था।

१७०. शरद् के सोम (चंद्रमा) के समान उसके मुख की कांति थी, मदन के धनुष के समान उसकी भौंहें थीं, मृग शावक [के नेत्रों] के समान चंचल [उसके नेत्र] शोभित थे, और जिस प्रकार कंचन (खरा सोना) दीप्त होता है, वैसे उसके कपोल थे।

१७१. [कामिनियों ने कहा,] "तेरी ये आँखें धन्य हैं, जिनके हृदय में (?) तेरे जीव की साक्षी भरी हुई है। अमृत में सानकर जैसे सोने को बूका (पीसा ?) जावे (गया हो), [इस प्रकार उनकी दीप्ति है]। और जैसे कौवों और बकों [के श्याम तथा श्वेत वर्णों] को लेकर उनका वर्ण निर्मित किया गया हो।"

१७२. जो रत्नजटित तरिवन [उसके कानों में] दिखाई पड़ रहे थे, वे [ऐसे प्रतीत हो रहे थे] मानों कामदेव के रथ के पहिए हों। उसकी भौंहों की वक्रता ऐसी अनखुटी (अनोखी) और अनुपम थी कि मानों किसी भूपति (राजा) ने सिर पर छत्र धारण किया हो।

१७३. उसकी नाक में रत्नजटित नकफूली [ऐसी लगती थी] मानों कामदेव ने बनसी (मछली फँसाने की लग्गी) लगा रक्खी हो। उस [के सौंदर्य] को वही जान सकता था जो प्रवीण रसिक हो। उसको देखने पर चित्त मानों बिद्ध मीन हो जाता था।

१७४. विधाता ने [उसके] कपोल पर जो तिल [बना] दिया था, [वह ऐसा लगता था] मानो कामदेव [उसे] चिह्नित कर गया हो विधाता ने उसका अधर (नीचे का ओष्ठ) सुधा के समान बनाया था, और [उस] बाला का सधर (ऊपर का ओष्ठ) [ऐसा लगता था] मानो प्रवालों का हो।

१७५. उसके दाँतों में हीरे की ज्योति दिखाई पड़ती थी, और उन [दाँतों] का भाव (सौन्दर्य) कुछ-कुछ दाड़िम के बीजों का [-सा] था।

उस बाला की ठोड़ी पर जो लीला (तिल) था, वह इस प्रकार अत्यंत शोभा देता था मानों केशर के मध्य में तूतिया हो।

१७६. शंख [की रेखाओं] के समान उसकी ग्रीवा में तीन रेखाएँ थीं; [वे ऐसी लगती थीं मानो] उन्हें विधाता ने स्वयं रच रच करके बनाया हो। उसके कंठ में कंठ-श्री शोभा दे रही थी, [जिसकी] मोतियों की छटा विकीर्ण हो रही थी।

१७७. उसके कठोर कुच यौवन का बल पाकर [ऐसे] बढ़े (उन्नत) लगते थे मानो [यौवन] नृप से मिल कर वे [काम-] रण में चढ़ आए हों। वे [उसके] सुडौल और सुढार कंचन के खंभों [जैसे शरीर] पर स्वतः संभूत श्रीफलों के समान शोभा दे रहे थे।

१७८. वे कुच कंचुकी को उभाड़े हुए थे, और ऐसे लगते थे मानो कुंडली मारकर बैठे हुए [दो सर्पों ने] इस प्रकार का तनाव कर दिया हो। उसकी गहरी नाभि का वर्णन कौन करे ? वह तो ऐसी प्रतीत होती थी मानो कामदेव का सरोवर-भवन हो।

१७९. उसके युगल बाहु मानो कमल-नाल थे; और राजहंस के समान उसकी मधुर चाल थी। उस बाई (स्त्री) ने अपनी अँगुलियों में जो नख [बढ़ने के लिये] छोड़ रक्खे थे, वे इस प्रकार शोभा दे रहे थे मानों कुंद की कलियाँ हों।

१८०. उसकी कटि की क्षीणता बर (भिड़) [की कटि] के समान थी, और वह [कटि] कुचों के भार के कारण निदान और भी टूटी जा रही थी। [उसके पेट में पड़ी हुई] त्रिबली रेखा स्वच्छ भाव (सौन्दर्य) की थी। कुचों को उन्हों ने मानो और भी भाव (सौन्दर्य) दे रक्खा था।

१८१. [उसकी] कटि-मेखला अत्यंत सुठान (सुंदर) थी, [और उससे निकलती हुई ध्वनि ऐसी लगती थी] मानो कामदेव के निशानों (धौंसों) की ध्वनि हो*। उसके युगल जंघ उलटे [रक्खे हुए] केलों के तनों के समान थे, और उसकी पिंडलियाँ केशर के समान अति पीली थीं।

---

* तु० मानहु मदन दुंदुभी दीनी—तुलसी।

१८२. उस गज-गामिनि के नितंब गुरु (भारी) थे। अन्य कामनियाँ उसको देखकर मूर्छित हो जाती थीं। [उसके] चरणों की अँगुलियों में नखों की ज्योति [ऐसी थी] मानों कमल के दल हों और उनमें मोती रक्खे हों।

१८३. वह [बाला] मानो चित्रगुप्त के द्वारा मनोनियोग के साथ रची गई थी। वह सुंदरी मानों साँचे की सँची (ढली) थी।

१८४. अंग (शरीर) में उसने दक्षिणी चीर पहन रक्खा था, और उसका शरीर चंपक-दल से भी सुंदर वर्ण का था। उन कामिनियों ने अपने शरीर से एक-एक आवरण उतार कर छिताई पर वार दिए।

१८५. रात्रि को स्थान देने के लिये वासर गत हो चुका था। तब सौंरसी शैया पर लेटने के लिये गया। दस-बीस मन अबीर बिछाई गई थी और उसपर पलँग दृढ़तापूर्वक ढार (डाल) दी गई थी।

१८६. जहाँ पर राव (सौंरसी) का शयन-कक्ष था, बहुत से सुवासों की त्रास (प्रबलता) थी। कस्तूरी, केशर, कपूर, गौरा (गोरोचन), और अगर [आदि] सुवासों के मूल (सार) [वहाँ] थे।

१८७. उन सुगंधों का आदि (उद्गम) कौन जान पाता जो मेदे (एक सुगंधित वृक्ष) की शाखाओं और तल-पत्तियों (?) के बाँधने से निकल रही थी। मलयगिरि [चंदन के] के साथ केशर घिसी गई थी और उस महल में छिड़की गई थी जिसमें सौंरसी था।

१८८. मेद (मेदे की लकड़ी से निकाला हुआ तैल ?) मिलाकर (जो) चोखा (अच्छा) चोवा [वहाँ रक्खा गया था, उस] के सुवास-रस का रहस्य नहीं वर्णित हो सकता है। तेलिया के तैल की सुवास तो और भी अधिक थी। वहाँ छंछार (शयनशाला) को दीपक प्रकाशित कर रहा था।

१८९. अरगजा मिलाकर अनुपम रूप से [तैयार] किया गया दक्षिणी धूप महल में डाला हुआ था। खवास बीड़ा रख कर चले गए, तब छिताई प्रिय (पति) के पास गई।

१६०. वह खड़ी-खड़ी बहुत लज्जित हो रही थी, और मिलन की [उस] प्रथम रजनी में चित्त में शंकित हो रही थी। उसके आगे-पीछे दस सुंदरियाँ साथ हुईं।

१६१. तब वे (सुंदरियाँ) [छिताई का] हाथ पकड़कर शैया तक उसे ले गईं, और [इस प्रकार] उस [शयन-] मंदिर में उसे पहुँचा कर वे चली गईं।

१६२. मदन (काम) का बाण तनु (शरीर) में असह्य [सिद्ध] हुआ और सौंरसी ने उठकर [छिताई का] अंचल पकड़ा। हाथ से जब [वह उसकी] कंचुकी खोलने लगा, वह लज्जित हुई, और उसने दृष्टि को [मंद करने के लिये ?] फूँक मार कर दीपक बुझा दिया।

१६३. वह (छिताई) विशेष रूप से मौनमुखी हो गई, उसका शरीर काँपने लगा, और प्रथम स्थित (?) स्नेह के कारण प्रस्वेद प्रवाहित होने लगा। अधर [और उसी] प्रकार (?) अपने कुचों को वह ग्रहण करने नहीं दे रही थी, और न वह अपने अंग (शरीर) को छूने दे रही थी।

१६४. घूँघट में उसने अपना मुख नीचा कर लिया जब सौंरसी ने अपने दोनो हाथ उसके हृदय (वक्षस्थल) पर लगाए। उसकी [नीवी की] गाँठ कड़ी और पक्की थी; [मानो] वह विधाता की दी हुई थी, [ऐसा उसे जान पड़ा] जब सौंरसी उसे खोलने लगा।

१६५. जब नारी (छिताई) "नहीं, नहीं" उच्चारण करती, तब सौंरसी के चित्त में चौगुनी उमंग चढ़ती थी। वह शंका और संकोच के कारण [पान का] बीड़ा नहीं खा रही थी, और हाथ छुड़ा कर उसने सौंरसी की ओर पीठ फेर ली।

१६६. [संगीत की ?] गतियों में अति चतुर [छिताई] काम की गतियों का संकेत पाकर धीमे-धीमे मधुर बचन बोलती थी। दीपक की आयु मंद पड़ने (उसके बुझने) पर जब दिखाई नहीं पड़ने लगा, सखियाँ [वहाँ से] हट गईं और सब [वहाँ से] लौट आए।

१६७. तब छिताई ने ऐसी बात कही, मानो सुरति का परम सुख उसको प्राप्त हो गया हो। वह सुन्दर और भले प्रकार धारण करने योग्य शब्द

सुनाने लगी, [जिन्हें] सुनकर कुँअर [सौंरसी] के मन में परम आह्लाद हुआ।

१९८. जिस प्रकार चकोर और चकोरी (?) को रात्रि सुखदायक होती है, उसी प्रकार रात्रि उन दोनों का भी मन हरती थी। वे कंठ से कंठ [लगा कर] लिपटे रहे, और रात्रि क्षण भर व्यतीत हो गई।

१९९. [कोक-कला के] चौरासी आसनों की खांति (माला ?) के विषय में चतुर दूलह (सौंरसी) चतुर-मणि और ज्ञात (जानकार) था। [उसे ज्ञात था कि किस तिथि या वार को नारी का कौन-सा अंग स्पर्श करने से उसे कामेच्छा होती है, अतः] जिस वार और जिस तिथि को नारी के जिस अंग में अनंग का निवास होता, वह छिताई के उस अंग का स्पर्श करके उसे द्रवित करता।

२००. [छिताई भी कोक-कला के] आसनों, कमलबंध की विधियों विपरीत रति तथा चोज (चातुर्यपूर्ण उक्तियों) में अति संध (पटु ?) थी। वह कोकिल-वयनी कोक-कला में गुणी थी, और सखियों से भी [काम-व्यापार की] कुछ बातें सुन रक्खी थीं।

२०१. दोनों ही चतुर [स्त्री-पुरुष] सुरति-रस-रंग में अनेक उक्तियों (युक्तियों ?) का प्रयोग करते थे, जो उनके अंगों में सुख-उत्पादन करती थीं। [इस प्रकार वे दोनों] केलि करते और सुख-शैया का विश्राम [प्राप्त] करते। [तब तक] देवगिरि से [उनके लिये] राजा रामदेव का बुलावा आया।

२०२. राजा भगवन् नारायण ने सौंरसी और सेना के साथ [छिताई को] विदा किया। छिताई चकडोल (चंडोल) पर चढ़ी, और पिता के स्थान देवगिरि दुर्ग को गई।

२०३. राजा रामदेव ने [पूर्वोल्लिखित] नूतन महल खुलवा दिया, और सौंरसी उस महल में उतरा। वहाँ नित्य नवीन प्रकार का नृत्य-संगीत-(समारोह) होता, और नवीन नाटकों का भी शीघ्र ही अभिनय होने लगा।

२०४. सिंहल की सुंदरी नारियाँ थीं, जिन्हें नर्तकों ने नित्य [शिक्षा देकर] नृत्य में निपुण किया था। [उनका] शुद्ध अंगों का विविध देशी (नृत्य) प्रभूत और अनुपम सुख उत्पन्न करता था।

२०५. [उन सिंहल की नर्तकियों के] कंठ सुरंग (सुरीले) होते, उनकी वाणी कोकिल के समान होती, और उन्हीं के समान (अनुरूप) तंत्री, पखावज और ताल भी होते। नित्य ही देसी प्रकार के राग-रंग की दौज (धूम ?) रहती, और कपूर, अबीर [आदि] सुख-सामग्रियों का कूट (ढेर) लगा रहता।

२०६. दिन को सौंरसी आखेट में फिरता रहता, और मंत्रियों के मना करने पर भी उनका कहना न करता। बागुर (फँसाने के फंदे) लगवा कर और कुछ बोकर (खाइयाँ ?) खुदवा कर वह [साहियाँ] पकड़ अथवा मार कर लाता था।

२०७. एक [मात्र] भाग्यशाली बाराहों का बध वह न करता, और सभी मूल (जंगली ?) मृगों (जंतुओं) का संहार करता। कभी-कभी छिताई भी उसके साथ जाती और घनघंट बजा कर हिरन पकड़ती।

२०८. नरनाथ (राजा) रामदेव वर्जन करता [और कहता,] "हे कुँअर, तुम लोग मृगया के लिये न जाया करो; मृगया के कारण ही पांडु राजा की मृत्यु हुई और मृगया के कारण ही बलवान दशरथ को इस संसार से बिदा होना पड़ा।"

२०९. "मृगया के कारण राजाओं ने बहुतेरे दुःख उठाए हैं, मृगया के कारण ही दशरथ के तन दुःख रहा (पुत्र वियोग सहन करना—और उस वियोग में प्राण त्याग करना पड़ा)। सौंरसी को समझदार (अनुभवी) लोग नित्य यही समझाते कि मृगया ने बहुतेरे राजाओं को बिगाड़ा (बर्बाद किया) है।"

२१०. एक दिन आखेट में फिरते-फिरते सूर्यास्त [की बेला] में मृग से भेंट हुई। तुरंग (घोड़ा) [उसको] देखते ही उमंग में आकर भिड़ (पीछे लग) गया, और हिरन भी पवन (हवा) के समान चौकड़ी [भरता] भागा।

२११. [उसकी] खोज हुई, और सौंरसी ने उसका पीछा किया; रात-रात वह उसके साथ पुकार करते हुए लगा फिरा। मृग गहन गति से भागता गया, और रात्र (सौंरसी) उसके पीछे पड़ा हुआ उसको हाँकता (दौड़ाता) ही गया।

२१२. वन में जहाँ राव भर्तृहरि का निवास था, वहाँ पहुँच कर मृग खड़ा हुआ और उसासें लेने लगा। [उस समय भर्तृहरि] सिद्धि-समाधि में अपने चित्त को स्थिर किए हुए थे, और कुँअर सौंरसी [उस मृग को] हाँकता (दौड़ाता) चला जा रहा था।

२१३. योगीन्द्र [भर्तृहरि] सिद्धि-समाधि में स्थित थे, किंतु इस हाँका-हाँकी से वे नरेन्द्र [भर्तृहरि] जान पड़े। जाग कर उन योगी ने यह बात कही, "[मृग के] किस गुनाह (अपराध) के कारण तुम इस आश्रम में आए ?

२१४. "यदि बैरी भी दाँतों में तिनका ग्रहण कर ले, तो संतों का आदेश ऐसा कहता है कि [उसे] छोड़ दिया जावे। वहाँ, ये मृग तो तिनका ही चरते हैं और उद्यान में रहते हैं; तू अज्ञानी इन जीवों को निरपराध ही मारता है।"

२१५. योगी की यह बात सुनकर सौंरसी ने कहा, "तेरे मन में मरने की बुद्धि बस रही है [ऐसा ज्ञात हो रहा है], [अतः] या तो तू मुझे हिरन को जीता पकड़ कर दे, अन्यथा मृग के बदले मैं तुझे मारूँगा।"

२१६. भर्तृहरि ने मन में विचार कर कहा, "मैं मृग नहीं दूँगा, तू [भले ही] मेरा शिर सार (काट कर अलग कर) दे। इस प्रकार बेवस जीव भागा जा रहा है, और तू मारने को इसका पीछा कर रहा है।"

२१७. योगी [भर्तृहरि] ने कहा—"ऐ मूर्ख, सुन, तेरी बुद्धि विधाता ने हर ली है, तू पाप कर रहा है जो वनके जीवों को मार रहा है, और कर्त्तव्या-कर्त्तव्य नहीं जानता है। [इस बेबस] जीव के अंदेशे (कष्ट) की बात [अपने] चित्त में ला, और मुझसे यह ज्ञान [की बात] सुन—चौरासी लाख जो जीव-योनियाँ हैं, उन्हें तू अपने समान गिन।

२१८. "ये पशु अपने ही प्राणों के समान हैं—इस को, ऐ मूढ़, धर्म करके जान।"

२१९. सौंरसी ने [यह उपदेश] सुनकर भी [भर्तृहरि का] कहना न किया और तुरंग (घोड़े) से उतर कर मृग को पकड़ लिया।

२२०. तब भर्तृहरि ने उठ कर उसे [सौंरसी से] छुड़ा लिया और रोश में होकर उसे शाप दिया "मेरा वचन [यदि] अवश्य करके न मिटता हो, तो तेरी स्त्री अन्य के वश में पड़े।"

२२१. सिद्ध की भावना निष्फल नहीं होती—तब राव (सौंरसी) को [अपनी ही] शक्ति से (अपने-आप) यह चेत हुआ। [वहाँ] तो वह उस उजाड़ में [सुधि-बुधि] भूला हुआ और भ्रमित फिरता रहा, और यहाँ नारी छिताई [सौंरसी का] मार्ग देखती रही।

२२२. उसने शैया तथा भोजन का प्रबंध किया, किंतु उसका स्वामी आज की रात को बाहर ही रह गया (लौट कर आया नहीं)। [इसलिए] वह झरोखे से झाँक कर उसासें लेने लगी, और उसके लिये चंदन तथा उसकी सुगंध विष तुल्य होने लगे।

२२३. राव सौंरसी बन में रह गया, इसलिए [छिताई के] शरीर में चंद्रमा का देखने पर ताप होने लगा। [इस ताप को दूर करने के लिए] सखियाँ शीतल उपचार करने लगीं, किंतु वे सभी अग्नि तुल्य [सिद्ध] हुए।

२२४. दूसरे दिन दिशा के अस्त (सूर्यास्त) [की वेला] में दुचित्ता सौंरसी [उस नूतन महल को] गया। रात्रि में उसने दौड़कर (आतुरता-पूर्वक) [छिताई का] आलिंगन किया, किंतु [छिताई उससे भर्तृहरि के शाप की बात सुनकर] गाढ़ी विरक्ति [की संभावना] से पछताती रही।

२२५. अति स्नेह से वियोग होता है, अति भोग से रोग की वृद्धि होती है, अति परिहास से बिगाड़ होता है, जिस प्रकार कौरवों और पांडवों में हुआ था।

२२६. अति रूप से ही सीता का हरण हुआ, अति विषय से ही रावण का मरण हुआ, और अति दान से ही बलि [वामन द्वारा बाँधा जाकर] पाताल गया, अतः किसी भी मात्रा में अति संसार में अच्छी नहीं होती।

२२७. इसी प्रकार राव सौंरसी अति सुखी था [और उसका अनिष्ट जिस प्रकार हुआ, यह आगे की कथा से विदित होगा]। चित्रकार ने जो उपाय

किया, वह सुनिए। देवगिरि स्थान में राव रामदेव ने चित्रकार को विदा किया और उसे पसाव किए (उपहार दिए)।

२२८. चार वर्ष तक [वहाँ] चित्रकार रहा था, फिर वह लौटकर दिल्ली की ओर चला। भूपाल (राजा) रामदेव ने जो भेटें दी थीं—भीमसेनी सरस (सुस्वादु) कपूर,

२२९. बहुत-से अमूल्य रत्न, और जड़ाव के सामान—उन सब को ले जाकर [चित्रकार ने] हैवती (हयवती) के सामने रख दिया। [हयवती ने पूछा,] "देवगिरि की कैफ़ियत कहो; रामदेव .ख़ूब .ख़ैरियत से है न ?"

२३०. और, दिल्ली-नरेश (अलाउद्दीन) ने पूछा, "[रामदेव की] कन्या (छिताई) का विवाह किस प्रकार (कैसी धूम-धाम से) हुआ ?" फिर [चित्रकार का दुबला और कुम्हलाया हुआ] मुँह देखकर सुल्तान ने कहा, "[अवश्य ही] तुझे कुछ कष्ट हुआ है, जिसका ज्ञान (आभास) हो रहा है।"

२३१. "तेरा मुँह दुबला हो गया है, और कुम्हला गया है; क्या देव-गिरि नरेश ने [इसे] दुबला किया है ?" उस (चित्रकार) ने सिर झुका कर सलाम किया, और कहा, "अभी कहने की आवश्यकता नहीं है।

२३२. "मैंने [स्वतः] हाथ से अंगार काढ़ लिया, और [अपने] नयनों के स्नेह से ही मैं [इस प्रकार] जलकर क्षार (राख) हो गया।" जितनी भी सौंज (सामग्री) देवगिरि की थी, बादशाह ने जामदार को सौंप (सुपुर्द कर) दी।

२३३. भूप (बादशाह) अलाउद्दीन इस प्रकार कहने लगा, "यह देवगिरि का कपूर अनुपम है; उसका (इसका) स्पर्श [सुख] दश अंगुल [की दूरी] से ही [अनुभूत] होने लगता है, और उसको [इसको] देख कर अन्य पदार्थों का स्पर्श-सुख भूल गया है।"

२३४. देवगिरि की दो दासियाँ थीं; वे [यह सुनकर] ऊपर ऊँचे की ओर [जहाँ बादशाह अपने सिंहासन पर विराजमान हुआ यह कह रहा था]

देखकर हँस पड़ीं। किंतु उसकी इस हँसी पर सुल्तान की दृष्टि पड़ गई, [और उसने उनसे पूछा,] "तुम किस बात पर हँसी, ऐ धृष्ट दासियो तुम क्यों नहीं कहतीं ?"

२३५. दासियों ने कहा, "[हे सुल्तान,] इस भूमि (देश) के मूर्ख लोग अनजान हैं।

२३६. "तुम इस कपूर को देखकर [इस प्रकार] रीझ गए हो, किंतु यह तो [रामदेव की] रानियों के [भीमसेनी कपूर के बने] गहनों का चूरा है। जो कपूर रामदेव खाता है, उसकी महिमा बखानी नहीं जा सकती।"

२३७. सुल्तान ने [इस बात को सुनकर] चित्रकार की ओर देखा, तो उसने भी उस स्थान पर (इस विषय में) साखें भरीं। बादशाह का जी [इस बात को सुन कर] विचार (चिंता) में पड़ गया। [यह देख कर] समस्त सभा ने बादशाद को जुहार किया [और वह विसर्जित हुई]।

२३८. [अलाउद्दीन ने] अपने साथ चित्रकार को लिया, और तदनंतर उठ कर ग़ैर महल में गया। वह दुष्ट [चित्रकार] जैसा कुछ छिताई का व्यवहार (विवरण) था, उसका विस्तार [-पूर्वक वर्णन] करने लगा।

२३९. यह तो नीच के चित्त का स्वभाव होता है; कि [अपनी ओर से] रच-रच कर बुराई की बातें कहे, उसे इस प्रकार का चाव ही होता है। जैसा अधिक चतुर श्वान होता है, वैसा ही बुरे चार (सेवक) को भी जानिए।

२४०. [श्वान का यह स्वभाव होता है कि] वह यत्नों से पात्र को उतार लेता है, और उसमें रक्खी हुई सारी वस्तु को खा जाता है; वह अपना कार्य तो बड़ी सूझ-बूझ के साथ करता है, किंतु [फिर वह] पात्र [उससे] उस (पूर्ववर्ती) स्थान पर रक्खा नहीं जाता है।

२४१. [उसी प्रकार दुष्ट सेवक का यह स्वभाव होता है कि] वह बातें लाख नमक (?) लगा कर करता है। मेरी एक ही जीभ से उसका वर्णन किस प्रकार संभव है ? जैसा कुछ उस (छिताई) का चरित्र था, [उसने] हाथ से चित्र को निकाल कर प्रदर्शित किया।

२४२. चित्रों को देखते ही [बादशाह के हृदय में] कामदेव का बाण लग गया; चित्रों को देखकर ही [छिताई के प्रति] उसका अनुराग बढ़ने लगा और चित्रों को देखते ही वह मूर्छित हो गया। [उस अचेतावस्था में

उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि] मानो वह (छिताई) उठ कर उसके सामने से ही गई है ।

२४३. सुल्तान ने उस चित्र को अपने हृदय पर रख लिया; वह न पानी पीता था, और न खाना खाता था। कुरंग (मृग) श्रवणेन्द्रिय के शब्द-रस के कारण मारा जाता है, पतिंगा नयनानुराग के कारण जलता है;

२४४. हाथी सुरति रंग-रस के कारण क्षीण होता [और बाँधा जाता] है, मीन रसना-रस के कारण अपने को बंधन में डालता है, और भ्रमर परिमल [रस] के कारण अपने प्राणों का परित्याग करता है; [तब भला] नर (मानव) जो निजु (पूर्णतया) स्नेही होता है, क्या कर सकता है ?

२४५. जब कि एक-एक इंद्रिय के लिये (कारण) ही सचमुच [अन्य जीव] मृत्यु को प्राप्त होते हैं, तब नर (मानव) किस प्रकार जी सकता है, जिसे पाँच इंद्रियों के आकर्षण व्याप्त होते हैं । [अलाउद्दीन के] हर्म में जो हैवती (हयवती) थी, वह जाति की हिंदुनी थी । उसमें [अलाउद्दीन का] चित्त दिन-रात निवास करता था ।

२४६. तत्क्षण ही [अलाउद्दीन ने] उसे वे चित्र दिखाये, और हैवती (हयवती) भी इन चित्रों में अंकित स्वरूप को देखकर उसासें लेने लगी । हर्म की वह [बेगम] हैवती (हयवती) सच्ची भावना से कहने लगी, "छिताई को जीती [लाकर] मुझे दिखाओ ।"

२४७. "छल, बल, बुद्धि [अथवा] कपट करके [जिस प्रकार भी वह आ सके, उसे जीती लाकर मुझे दिखाओ ।" [जब] चित्रकार चित्र दिखा कर चला गया, अलाउद्दीन की विरह-व्यथा असह्य हो उठी ।

२४८. अलाउद्दीन ने बुला कर अमीरों से कहा, "मैं देवगिरि गढ़ को लेना चाहता हूँ; जितने भी धींग (हट्टे-कट्टे सैनिक) हों, सभी सेना सजा कर धावा कर पड़ें, और छिताई नारी को जीवित [पकड़] लावें ।"

२४९. [उसके] देश-देशांतर को फ़रमान भेजे, [जिस के परिणाम-स्वरूप] उमरा (अमीरगण) और खान [सेनाएँ] सजा कर आए । एक विशाल चतुरंगिनी सेना आ-आ कर इकट्ठी हुई; उस अगणित सेना का वर्णन नहीं हो सकता ।

२५०. सुल्तान ने रोष किया और सभी अमीरों तथा खानों को

बुलाकर वह चल पड़ा। उसने घोड़े-हाथी दिए और सिलह (शस्त्रास्त्र) बँटवाए। लाख हलकों (हलका ब गोशों=दासों) को बुलाकर उसने घाट और औघट (बुरे घाट) सँवारने (ठीक करने) को कहा। उसने कहा, "बन, बीहड़ और औघट (बुरे घाट)—सभी को खुदवा कर समतल करो, क्योंकि सुल्तान अलाउद्दीन छत्तीस धौंसे बजवा कर आक्रमण कर रहा है।"

२५१. धौंसे बजे और [सेना का] प्रयाण हुआ, अमीरगण और खान सजे। बहुत [बड़ी] सेना ने [घोड़ों की] पलाँदियाँ कसीं, उसका वर्णन नहीं हो सकता। [सेना की तुमुल ध्वनि के कारण] कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ रहा था।

२५२. खिलजी, कुरैशी, जो वेश में राक्षसों जैसे थे, लोदी, लंगाह, जुलवानी तथा खुमानी [जाति के] शूरों की सेना अथाह (अगाध) थी।

२५३. बलख, बोरी, बब्बर, गोरी, और रण में सुख प्राप्त करने वाले लोग, जिनके नाम राक्षसों जैसे थे, जो स्वामी के काम आनेवाले, तथा जो रण में जमकर जूझने वाले लोग थे—

२५४. किरानी, नौहानी, सिरजानी, कक्कर (गक्कर), तारंदार, खिलसी (?) सूरी [आदि] म्लेच्छ शूरों तथा लाहौरियों के भारी दल थे।

२५५. सभी कौमें थीं, कितनी ही जातियाँ थीं, बहुतेरे खुरमुली और बलोच [भी] थे। नेजों वाली (?) पैदल फ़ौजें साजी गईं, जो महा निर्दयी और पोच थीं।

२५६. जो महा म्लेच्छ, निर्दयी और पोच थे, वे बब्बर तथा बली बलोच चले।

२५७. अलूखान (उलुग खाँ) दिल्ली गढ़ में रह गया, और अलाउद्दीन स्वतः आगे निकल पड़ा।

२५८. लाल मुँह, मोटी गर्दनों, मुंडित शिरों, कषाए (घिसे ?) कानों, और दाढ़ी-मुच्छों में लाल बालों वाले मुगल जाति के [सैनिक] सेना में साठ हजार थे।

२५९. उनके हाथों में पाँच-पाँच मन की गुर्जें थीं; वे ढोवा (एकत्रित सैनिक शक्ति ?) को तहस-नहस करके [इन गुर्जों से] बुर्ज गिरा देते थे।

बादशाह की जितनी भी पलाँद (सवार सेना) थी, उसका बखान करने लगूँ तो कथा बढ़ जावे।

२६०. दिन भर में दस-दस कोस चलकर यह राजकीय सेना छठे मास देवगिरि गढ़ पहुँची। मार्ग में जितनी दूरी तक कुचा भाग [एक साथ] उड़ (भाग) कर जा सकता है, उतनी दूरी तक आस-पास के नगरों को सुल्तान ने खुदवा कर मिट्टी में मिलवा दिया।

२६१. सुल्तान के सेवकों की ख़ैलें (जमाअतें) तथा सेनाएँ देश भर में फैल गईं। तुर्क भीत से भीत बजा देते थे और देवालयों को ढहा कर उन्हें मसजिदें कर देते थे।

२६२. [सुल्तानी] सेना जाकर देश में फैल गई, तब राजा रामदेव ने [इसका] समाचार पाया। रामदेव ने परिगही (संग्रहाध्यक्ष) पीपा को बुलवाया, और उससे यह बात कही—

२६३. "हमारे देश को कौन तहस-नहस कर रहा है ? ऐसा किस नरेश ने कर रक्खा है ?" तब उसने हरकारों को यह देखने के लिए भेजा कि चारों ओर देश में जो धुआँ (अग्नि-कांड) [होता दिखाई पड़ रहा] है, वह क्या है ?

२६४. जब [उसके] चर पता लगाने के लिए गए, तब उन्होंने तुर्कों की सेना देखी। सचेत होकर और दृष्टि पसार कर उन्होंने देखा कि मानों श्वेत सर ने [क्यों कि शाही सेना लोहे के कवचादि से सुसज्जित थी] अपना बाँध तोड़ दिया हो।

२६५. [उन्होंने लौट कर] राजा से सब व्यवहार (विवरण) बताया, और कहा कि [सुल्तानी] सेना का वार-पार नहीं है। [इतने में सुल्तान देवगिरि के पास आ गया]। जब सुल्तान ने देवगिरि को देखा, उसने धौंसों पर गहरी चोट दिलवाई।

२६६. चौकियाँ बाँध कर (सुरक्षार्थ सैनिक टुकड़ियाँ नियुक्त कर) बादशाह ने चढाई कर दी, और [रण के] बाजे घावों के पड़ने से बजने लगे। [शाही सेना ने सुरक्षा के ध्यान से] एक-एक धाप (जितनी दूर तक आदमी एक साथ दौड़ता जा सकता है—लगभग एक मील) तक [चारों ओर]

पुरों (?) को बाँध लिया (घेरे के अंदर ले लिया) और शाही सैनिकों ने तरकस [से तीर] निकाल कर चाप (धनुष) चढ़ा लिए।

२६७. किन्हीं ने हाथ में तलवार खींच ली, और शिर पर सँवार कर टोप (लोहे की टोपी) रख ली, तथा किन्हीं ने हाथ में सेहथी (साँग) ले ली, और बीस-बीस दस-दस की टोलियों में वे पदरक (?) आगे बढ़े।

२६८. जो चटकलों की चोट करने में अग्र (प्रवीण) थे, उन्होंने शिर पर टाटर (लोहे का शिरस्त्राण) सुधार करके रख लिया। [इस प्रकार की सुसज्जित] तुर्क-सेना को जब [रामदेव-पक्ष के] हिंदू सवारों ने देखा, वे [दुर्ग के] मुख्य द्वार के किवाड़ों को ठेल कर [तुर्क-सेना में] धँस पड़े।

२६९. जैता, जाजा, गंगा, गोगा, सामंत, सांगा, भाखर, भोज, रूँदा, रूगा, रणमल और रैण तुर्कों की सेना देखकर [उसमें] धँस पड़े।

२७०. भोजा, भाना और बैरीसाल मल्लों से भिड़ने के लिए छेंक कर [आ] पड़े। कीका, करमा, चाहर, चंद, देल्हा और सौभा, जो सेना के द्वन्द्व (शत्रु के लिए कष्टदायक तत्व) थे,

२७१. खरहथ, खरगा, घाटम, घाघ, भाला, भगर, गाडरा, बाघ, दामा, देवरा जो युद्धप्रिय था, और पामा पाँच भाई भी, जो परमार थे, [युद्ध-क्षेत्र में आ गए]।

२७२. सोमा जी सोनगरा भी [तुर्क-सेना में] धँसा, उसने कवच पहन कर सिर पर [लोहे का] टोपा कस लिया था, और पामा जी चौहान चढ़ा, जिसे गाढ़े (संकट) में राजा [रामदेव] का गुरु (गहरा) ज्ञान था।

२७३. बाघा जी महाबली था, जमधर (चौड़े और सीधे फल की एक प्रकार की कटारी) लेकर संग्राम में वह भी जुट गया, युद्धप्रिय भामा जी देवरा भी जो कटक को क्षय करने वाला धीरा था, [तुर्क-सेना में] धँस पड़ा।

२७४. ये सब सुभट सौरसी के साथ थे। हिंदू सेना हाँक (नारे) लगा कर [तुर्क-सेना में) धँस पड़ी। नराजी (नाराच) तथा ओड़न (ढाल) हाथ में लिए एक लाख पदातिक सौरसी के साथ थे।

२७५. उन बाजों का वर्णन कौन करे, जो दक्षिणी प्रकार के बाजे बजे। जब इस प्रकार [हिंदू] सेना [तुर्क-सेना में] धँसी, तुर्क दौड़ पड़े, और खलबली के कारण [दोनों सेनाएँ] रण-क्षेत्र में एक (मिश्रित) हो गईं।

२७६. दोनों दलों में मारा-मारी होने लगी, और भादों के मेह के समान सार (लोहा) बरसने लगा। हिंदू [योद्धा] [युद्ध में जम गए थे, वे विचलित करने से भी विचलित नहीं हो रहे थे, और [हिंदू सेना के] पैदल सैनिक [तुर्क-सेना में] घुसकर उसके अग्रभाग को काट रहे थे।

२७७. [दोनों] सेनाएँ एक-दूसरे के आमने-सामने इकट्ठी हो गईं, और लक्ष-लक्ष लाखौरी तीर [आमने-सामने] पड़ने लगे। वे [तीर] अंगों में अटक कर रुकते नहीं थे, वे शर सन्नाहों में से होकर (पार) निकल जाते थे।

२७८. पैदासक (?) सवार-सेना को छोड़ कर जमे हुए थे, और ओड़न (ढाल) से स्वरक्षा करते हुए बने थे, जब कि पैदाटनक (?) [विरोधी सेना] को टेके (रोक रक्खे) हुए थे, गज-सेना [विरोधी पक्ष के] हटाने से हटती नहीं थी।

२७९. साँगा [विरोधी पक्ष की] साँगियाँ काट कर ले गया, [इसलिये] वह अमीरों और खानों को यम [जैसा प्रतीत] हुआ, और जहाँ सौरसी ललकार कर आया, उसने हाँक लगाकर और सँभल कर [विरोधी] वीरों को मार गिराया।

२८०. बाघा ने, जो बाघ [के समान] था, रण में [विरोधी पक्ष का] अवरोध किया (उसको आगे नहीं बढ़ने दिया) और पीपा विरोधी सेना में क्षुब्ध होकर पैठ गया; खरहथ और खरगा खाँडे लेकर लड़े, और जब भोजा भिड़ा तो बादशाह के मन में खलबली पड़ गई।

२८१. घाघा ने सामने ही घमासान का भोग किया (आनंद लिया), तब [उसके साथ युद्ध करते हुए] मुहब्बत खाँ मारा गया। हाथियों के चालकों ने मदमत्त [हाथियों] को आगे बढ़ाया, जिसके कारण [कवचादि से सुसज्जित हाथी आपस में] भिड़कर चौदंत हो रहे थे।

२८२. जब हिंदुओं का आक्रमण वे नहीं सह सके, अमीर लोग [युद्ध से] मुँह मोड़ कर भाग निकले। चंडोल का छत्र जब डगमगाता हुआ चला, तब मंगोल मानो उड़ान सी [उड़ कर] घूम पड़े।

२८३. क्रुद्ध होकर [उन्होंने] हाथों में कठोर कमानें (तोपें) उठाईं, और वे जलवृष्टि के समान [गोला-] वृष्टि करने लगे। उनकी एक-एक मुट्ठी से साठ-साठ मन लौह (लोहे के गोले) चले, तब [रामदेव-पक्ष के] पैदल की गाँठ फटी।

२८४. जब बादशाह के वजीर ने [रामदेव की सेना पर] रेला किया, तब [रामदेव-पक्ष की] पैदल सेना ने [बादशाही सेना को आगे बढ़ने के लिये] भूमि दी (स्थान दिया)। किंतु जब [इस प्रकार] हिंदू सेना को विचलित होते देखा, तब दक्षिणी पैदल सेना [पुनः बादशाही सेना में] पैठ गई।

२८५. मुगल [इस पर] अपनी सेना वहाँ से उठा (हटा) ले गए, और [रामदेव के] चार पदातिक वहाँ खेत रहे। [मुगलों की सेना को] जब हिंदू सवारों ने [उखड़ते] देखा, वे कुपित होकर तलवार निकाल कर [बादशाही सेना में] पैठ पड़े।

२८६. [इस पर] तुर्कों की सेना में इस प्रकार की खलबली मच गई मानो पर्वत से उस पर बिजली गिर पड़ी हो। [भागते हुए] घूमकर [पीछे] कोई न देखता था कि कौन [रह गया] है, मानो प्रभंजन ने बादलों को हटा (भगा) दिया हो।

२८७. [शाही सेना के] लाखों लोग खेत रहे, [जिसके कारण] सुल्तान को पुत्र [-मरण] के समान शोक हुआ। युद्ध करते हुए जैन दीन (जैनुद्दीन) और अज्जून मारे गए—गुर्ज के घाव से उनके सिर चूर्ण हो गए थे।

२८८. एक नाम के बारह बाजीद [और] कन्नौज के पीर शहीद हुए। जहाँ पर गोग सोनगरा ने युद्ध किया था, वहाँ मोल्हन के [जो अलाउद्दीन-पक्ष का था] लोग (सैनिक) मरे पड़े थे।

२८९. रामदेव का खवास (शिवदास सीसौदिया) भी मारा गया। वह

उस समय हवाई के द्वारा मारा गया जब वह कोट (पर कोटे) पर से झाँक रहा था। दृढ़ प्रहार के कारण उसके प्राण निकल गए।

२६०. विचलित हो कर [सैनिक] "चलो, चलो" कहते, किंतु मन में लाज करके वे लौट पड़ते और फिर-फिर युद्ध करते। जिनकी इतनी [ही] आयु नहीं होती [अधिक आयु होती], क्रान्ति (मृत्यु) आकर भी उनका नाम बचा जाती (उनको न ले जाती)।

२६१. तुर्कों की सेना इस प्रकार [युद्ध के लिए] लौट पड़ी, जैसे बाननी (नटी) कुसुंभी चीर पहिन कर [पुनः मंच पर] आई हो। तब घायल सवार भी इस प्रकार लौटे जिस प्रकार फाग खेलने वाले गेरू [से फाग] खेल कर लौटते हैं [लहू-लुहान होने के कारण वे ऐसे लग रहे थे]।

२६२. [ये वापस हुए सैनिक परस्पर कहने लगे,] "अमीरों के प्रसाद से (उनकी बदौलत) क्या-क्या हो चुका है, और अभी [न जाने] क्या-क्या होगा; जब तक कंठ में शब्द है, तब तक जो अनगंजे (मारे नहीं गए) हैं, वे भी मारे जाएँगे।"

२६३. [रणक्षेत्र में] पड़े हुए जूझे (खेत रहे) सुभट [इस प्रकार] बिकराल (भयानक) [प्रतीत हो रहे] थे मानों गँवार [मदिरा] पीकर छके (बेचेत) पड़े हों। घायल होने के अनंतर [कवचादि से] सुसजित हाथी दौड़-दौड़ कर [जिनको भी पाते थे] पटक और कुचल कर तोड़ डालते थे। [तब तुर्क सैनिक] कहते थे, "इसी मूल्य के लिए हमें खुदा ने किया (बनाया) था।

२६४. "कर्त्तार ने हमें सेवक क्यों किया (बनाया) जब दिल्लीश्वर के पक्ष में युद्ध करते हुए हमें जूझना पड़ा ? [हमसे हमारा] घर छुड़ा कर और [हमें] धरणी में लिटा कर भी एकमात्र उदर ऐसा है जो अंत तक समाप्त नहीं होता (इस उदर की आवश्यकताएँ अंत तक बनी ही रहती है)।"

२६५. [रणस्थल में घायल पड़े सैनिक ऐसे प्रतीत हो रहे थे] मानो लुटेरों ने अनाथों (असहायों) को मारा हो; वे मरते समय अपने मुँह में हाथ डालते थे [इस प्रकार वे तृषार्त थे], और जिनके शरीर ओछे

(छोटे) घावों से भर रहे थे, ऐसे कोई-कोई [तृषार्त होने पर] संकेतों से जल की याचना कर रहे थे ।

२९६. जिनको तड़प कर तलवार लगी थी, उनको वह कुम्हड़े की भाँति निपटा कर गई थी, और जो मुगलों द्वारा गुर्जों की चोट से आहत हुए थे, उनके शिर फूट के समान फूट गए थे ।

२९७. लाशों के ऊपर लाशें ऐसी पड़ी थीं मानों मल्ल लोट-पोट करते हुए भिड़े हों; और जो [घोड़े] सामने से हृदय में सेल (बर्छे) से आहत हुए थे, वे बाग तुड़ा कर धरती में (बेलगाम हो) लोट रहे थे ।

२९८. युद्ध में चार सै हाथी खेत रहे । [रणस्थल में पड़े हुए वे मृत हाथी ऐसे प्रतीत हो रहे थे] मानो सागर की करारें (कगारें) हों ।

२९९. ढालें और बर्छे जो रणस्थल में गिरे, वे वहाँ की रुधिर नदी में मानो बहते हुए तरुवर थे, और टोपा के साथ [उसमें बहते हुए] शिर [उस नदी के] जीवों के समान थे; सैनिकों के सन्नाह टूटकर सौ-सौ टुकड़े हो गए थे ।

३००. बीच-बीच में जिनके शिर धड़ से अलग हो चुके थे, ऐसे जो महावत थे, वे उस [रुधिर नदी की] धारा में बहते हुए पत्तों से विरहित तरुवर [जैसे] थे । इस प्रकार युद्ध का महार्णव हुआ कि [उससे भयभीत होकर] तुर्क-सेना विचलित हो गई ।

३०१. [अब तुर्क-सेना ने] गढ़ के नीचे तंबू तान दिए, और तुर्कों ने गढ़ के चारों ओर घेरा डाल दिया ।

३०२. [गढ़ को] चारों ओर से घेर कर [बादशाह ने] जो सेना डाल दी थी, वह [ऐसा प्रतीत होता था] मानो राहु ने शशधर (चंद्रमा) को निगल लिया हो । दिन भर महायुद्ध मचा रहता । [बादशाह] रात-दिन ढोवा (सैनिक एकत्रीकरण ?) करता और अपार रुधिर प्रवाहित होता । [किंतु यद्यपि इस प्रकार] घेरा डाले हुए छठा महीना हो गया, [देवगिरि] ग्राम की थाह नहीं मिल पाती थी (यह नहीं जान पड़ता था कि कब तक वह तुर्क-सेना के सामने ठहरा रह सकेगा) ।

३०३. [इधर अलाउद्दीन] देवगिरि ग्राम को छेंके हुए पड़ा था और

उसकी थाह नहीं मिल पाती थी, उधर राजा रामदेव ने एक विचार [निश्चित] किया और तब उसने सौंरसी को बुलाकर उससे यह बात समझा कर कही।

३०४. "हे राणे, तू मनमें विचार कर देख ले; [इस परिस्थिति में उत्तम यही होगा कि] तू छिताई नारी को साथ लेकर [किसी प्रकार] धँस ले (सेनाओं से होकर निकल जा) और कुशल-क्षेमपूर्वक घर चला जा; यह अपलोक की बात मेरे जिम्मे पड़ी है [इसलिए इसे अकेले मुझे झेलने दे]।"

३०५. तब सौंरसी ने शिर झुकाकर कहा, "मैं तो इसी कारण यहाँ रहा। हम राजपूत रजपूती के पालन में प्राण देते हैं। भाग निकलने पर हमारे गोत्र और वंश को लज्जित होना पड़ेगा।

३०६. "स्वामी को संकट में छोड़कर भागनेवाले गँवार घोर नर्क में पड़ते हैं। दशम दाँव (अवस्था) में मृत्यु [का संकट] उपस्थित होने पर यदि कोई छोड़ भागता है तो उससे बढ़कर दूसरा नीच प्राणी नहीं हो सकता है।"

३०७. राजा रामदेव ने कहा, "यह गढ़ अब दृढ़ता के साथ घेरा जा चुका है, [इस परिस्थिति में] तू धँस (निकल भाग) और मेरा कहना कर। तू तदनंतर द्वारसमुद्र की सेना ला और देवगिरि दुर्ग को [शाही घेरे से] मुक्त कर।"

३०८. [ऐसा कहते हुए] राजा रामदेव ने [सौंरसी को] बीड़ा दिया और सौंरसी शिर झुकाकर [वहाँ से] चला। वह घर में छिताई के पास गया, जहाँ [वह] सातवें खंड में आवास में थी।

३०९. छिताई से [उसने] यह बात कही, "मैं द्वारसमुद्र [जाकर वहाँ] की सेना ले आऊँ [इसलिए मैं तुमसे विदा लेने आया हूँ]। तू, ऐ श्रेष्ठ नारी, चिंता न कर और अपने हृदय में विचार [करके इस बात की आवश्यकता आप समझ] ले।"

३१०. इतना जब छिताई ने सुना, नेत्रों में आँसू भर कर उसने शिर पीट लिया। उसने नेत्रों से आँसू ढरका दिए, जिनको सौंरसी पोंछने लगा।

३११. [तदनंतर छिताई ने कहा,] "या तो मुझे भी अपने साथ भगा ले चलो, और या तो कोरा (खालिस) विष पीस कर मुझे खिला दो। आज शीघ्र ही मुझे लेकर भाग चलो, नहीं तो सभी कार्य बिगड़ जावेगा।"

३१२. सुंदरी परवश में पड़नेवाली थी, [इसलिए] उसकी बुद्धि विधाता ने हर ली। वह न तो कहना मानती थी, और न मना करने पर मानती थी। छिताई पुनः यह बात कहने लगी—

३१३. "हे नाथ, अपना कुछ चिह्न दीजिए, जिससे मेरे प्राण शरीर में बने रहें।" [यह सुनकर] उस कंठमाला को, जो उसके गले में पड़ी हुई थी, राणा [सौंरसी] ने [छिताई को] दिया, मानो उसने प्रीति की नींव दी हो।

३१४. [इसके अतिरिक्त अपने] बागे (लंबे अंगरखे) के साथ दक्षिणी जमधर (चौड़े और सीधे फल की एक प्रकार की कटारी) भी [उसने] दी—अपनी इतनी सौंज (सामग्री) [सौंरसी ने छिताई को] दी। नारी (छिताई) जो कुछ आभरण पहना करती थी, सौंरसी के चलते (प्रस्थान करते) ही उसने [उन सबों को] उतार कर रख दिया।

३१५. वह पति का बागा अपने अंग (शरीर) पर पहनने लगी और रात्रि में (उसकी दी हुई) जमधर (चौड़े और सीधे फल की कटारी) को अपने संग लेकर सोने लगी। उसने [सौंरसी की दी हुई] कंठमाला को जपमाला बना लिया और [वह निरंतर] "पिउ पिउ" जपती रहती।

३१६. बाला (छिताई) ने खाना-पीना छोड़ दिया; उसने कुश की साथरी (चटाई) [शयन के लिए] की, चीर भी वह मैला-कुचैला (?) धारण करने लगी, बिना तैल लगाए ही स्नान करने लगी और दिन को शिव की पूजा के लिए जाने लगी।

३१७. इस प्रकार छिताई नारी रहने लगी, और मन में [सब बातें] विचार कर सौंरसी धँसा और देवगिरि से गया। उधर बादशाह के मन में धोखा (संदेह) हुआ कि सौंरसी देवगिरि [दुर्ग] से उतर गया है।

३१८. ढोवा (सैनिक एकत्रीकरण ?) करते रहने पर भी प्रतिदिन हार ही मिलती, [इसलिए अलाउद्दीन ने] राघव चेतन को बुलवाया [और कहा,] "राजा [रामदेव] दूतत्व (दूतों के द्वारा रक्खे गए प्रस्ताव) नहीं मानता है : न तो वह अपनी कन्या (छिताई) को देता है, न स्थान (देव गिरि) छोड़ता है।

३१९. "न वह सेवा करता है और न खुतबा ही पढ़ता (हमको अपना

बादशाह स्वीकार करता) है; वह अहर्निशि युद्ध करने को ही चढ़ा (प्रस्तुत) रहता है। सौंरसी भी यहाँ से धँस (निकल) कर देशांतर (किसी अन्य देश) को चला गया है, मेरे मन में यह धोखा (संदेह) होता है।

३२०. "और छिताई या तो गढ़ में रह गई है, और या तो सौंरसी के साथ वह भी समुहाई (चली गई) है; [संभावना है कि] सौंरसी रण-थंभौर-देव [हम्मीर] के पास [सहायता के लिए] गया है, [इसलिए मुझे लगता है कि] मेरा एक भी काम यहाँ न बना।"

३२१. दिल्लीपति इस प्रकार कहता है, "मैंने चित्तौर की पद्मिनी [की बात] सुनी, और इसीलिए चित्तौर पर आक्रमण करके रत्नसेन को बंदी किया, किन्तु बादिल उसे छुड़ा कर ले गया।

३२२. "जो इस बार छिताई को भी नहीं पाता हूँ, तो मैं अपना शिर [काट कर] देवगिरि को अर्पित कर दूँगा।" पुनः बादशाह इस प्रकार कहता है, "देवगिरि दुर्ग को ढहा कर ही क्या कार्य बनेगा ?

३२३. "यदि छिताई निकल गई, तो हमारा राज्य विनष्ट हुआ (हमारे बादशाह होने से भी कोई लाभ नहीं), और तब हमें देवगिरि से ही क्या प्रयोजन रहा ? [इसलिए] हे चेतन, बुद्धि करके मंत्र चेतो, और गढ़ के ऊपर की सुधि (हाल) ले आओ।

३२४. "या तो छिताई [देवगिरि] गढ़ में है, और या तो सौंरसी उसे [साथ] ले गया है। यदि [छिताई] द्वारसमुद्र गई हो, तो मैं छलबल के साथ अपनी ठकुरई (सेना) सुसज्जित करूँ,

३२५. "और समुद्र को बाँध कर [उसी प्रकार] उसके पार उतर जाऊँ जिस प्रकार रामचन्द्र ने कपि-सैन्य सुसज्जित [करके उसे पार] किया था; और यदि छिताई इस [देवगिरि] गढ़ के भीतर ही हो, तो ढोवा (सैनिक एकत्रीकरण ?) करके [देवगिरि] गढ़ को ढहा लिया जाए।

३२६. "तुम शीघ्र ही अभी [इस संबंध में] मंत्र करो (युक्ति बताओ), नहीं तो कल प्रातः तुम्हारी खाल खिचवाता हूँ।" [राघव] चेतन पर [उसे] बहुत गुमान (गुस्सा ?) हुआ और रोब में भर कर सुल्तान यों कहने लगा—

३२७. "देवगिरि आकर मैंने क्या किया ? [यही न कि] अपने मलिकों और अमीरों को लड़ा मारा ? फिर, देश [भर] में मुझे यह गाली भी मिली कि मैं पर-नारी को ढूँढ़ता फिरा।

३२८. "[दिल्ली लौटने पर] हैवती (हयवती) ललकार करके यह तर्क करेगी 'तुम अच्छी दक्षिणी नारी लाए।' राघव [चेतन], मोल्हन, और जय शर्मा—ये सभी गढ़ का भेद जानते हैं,

३२९. "और ये राजा रामदेव का भी भेद पाते रहते हैं, किन्तु ये क्रूर (कुटिल) [वह भेद] मुझ से कभी नहीं कहते हैं।

३३०. "शीघ्र आकर युक्ति बताओ, नहीं तो [इसी] स्थान पर कल सवेरे ही तुम्हें मरवा डालूँगा।" ऐसी बात जो [जब] सुल्तान ने कही, वह राघव चेतन के मन में [चुभती] रह गई।

३३१. [उसने अपने मन में कहा] "बैरी से कभी [कोई] आशा न करनी चाहिए और [इसी प्रकार] ठाकुर (स्वामी) को मित्र न करना चाहिये, क्योंकि ये एक क्षण तप्त तो दूसरे क्षण शीतल, और एक क्षण बैरी तो दूसरे क्षण मित्र होते रहते हैं।

३३२. "ठाकुर (स्वामी) एक क्षण वैरी और दूसरे क्षण मित्र होता है। उसका चित्त स्थिर नहीं रहता; अपना मनमाना वह सभी कुछ करता है : किन्तु अन्य (सेवक या आश्रित) के दुःख की वेदना को चित्त में [कभी] नहीं लाता है।

३३३. "[जिस प्रकार] सिंह और सर्प अपने नहीं होते, [उसी प्रकार] स्वामी को भी कोई मित्र न कहे।

३३४. "जिस प्रकार पाणि (हाथ) में [लिया हुआ] कर्कोटक (सर्प) होता है, उसी प्रकार ठाकुर (स्वामी) को भी निदान (अंत में) समझना चाहिए। पलटते ही कर्कोटक (सर्प) डस लेता है, और यही मति-गति स्वामी के चित्त में भी निवास करती है।

३३५. "तुष्ट (प्रसन्न) होने पर वह दरिद्रता की हानि करता है, और रुष्ट होने पर वह [अपने] पाणि (हाथ) से मार कर डाल देता है।"

प्रकार सोचते हुए राघव चेतन [वहाँ से] उठकर अपने डेरे पर गया। दिन अस्त हुआ (बीता) और, सूर्य भी अस्त हुआ।

३३६. चेतन ने हृदय में विचारा, "कौन सी बुद्धि (युक्ति) करूँ ? किस प्रकार सुल्तान से सुर्खरु (प्रशंसा का पात्र) होऊँ, और किस प्रकार [देवगिरि] गढ़ का समाचार लाऊँ ?

३३७. "किस प्रकार गढ़ का समाचार सुल्तान से कहूँ, क्योंकर मेरा वचन सत्य हो, क्योंकर बादशाह जी में मेरी प्रतीति करे, और क्योंकर मेरा सुयश पृथ्वी पर विस्तार पावे (फैले) ?

३३८. "जभी बादशाह मुझ से [कोई] बात पूछता था, तभी [मेरे] शरीर में मेरी बुद्धि स्फुरित होती थी; [किंतु] अब मेरी बुद्धि विधाता ने हर ली है जब कि बादशाह ने अपने मन में मेरे प्रति अकृपा की है।"

३३९. [इस प्रकार] झंखते (सोच करते) हुए वह उसासें भर रहा था, "अब मेरे जीवन की आशा न रही; देश में भी मुझे लज्जा हुई (लज्जित होना पड़ा), और बादशाह भी अकारण ही मुझे मार रहा है।

३४०. "विधाता ने मुझे बुद्धि ही क्यों दी, [और बुद्धि भी दी तो] क्यों बादशाह से मेरी पहचान हुई ? मैं तो भिक्षा माँग कर कणवृत्ति से अपना पेट भरता; मुझे विधाता ने क्यों यह सीख दी है ?"

३४१. [इस प्रकार गहरे विषाद में पड़कर राघव चेतन ने] पद्मावती [अपनी इष्ट देवी] का जप किया, फिर अपने उन गुरु का स्मरण किया जिन तक उसकी गति थी। रात्रि में [राघव] चेतन जागता-जागता झंखता (सोच में ही पड़ा) रहा, [तब तक अकस्मात् उसके] नेत्रों में नींद [आ गई] और उसकी पलकें झप रहीं।

३४२. [इस झपकी की अवस्था में] पद्मावती (उसकी इष्ट देवी) ने हंस पर आरूढ़ [आकर] राघव चेतन से यह बात कही, "हे चेतन, तूने जो मेरा चिंतन किया है, तो मैंने तुझे [कार्य-] सिद्धि का दान दिया।

३४३. "तू गढ़ में दूतियाँ भेज; वे नारियाँ [गढ़ का और छिताई का] समाचार कहेंगी।" यह (इस युक्ति पर) विचार करते-करते सबेरा हो गया, तब तक [उसके लिए] बादशाह का बुलावा गया।

३४४. राघव [चेतन] हँसता हुआ रावल (राज भवन) को गया, और [वहाँ जाकर] बादशाह के सम्मुख खड़ा हो गया। बादशाह ने क्रोध-पूर्वक उससे पूछा, "हे तात, तुम शीघ्र ही मंत्र (युक्ति) प्रकाशित करो।"

३४५. राघव चेतन ने तब कहा, "मेरे जी में मंत्र (उपाय) स्फुरित हुआ है; कुछ भली दूतियाँ बुला लीजिए, और उनसे बात खोल कर कह दीजिए।"

३४६. बादशाह आलम ने स्वतः कहा, "खूब ! खूब ! तेरे जी में अच्छा मंत्र (उपाय) रहता है; जिन्होंने धूर्तता करके मुनियों और तपस्वियों को वश में किया हो, ऐसी दो दूतियाँ, हे चेतन, तुम देख कर लाओ।"

३४७. बादशाह की आज्ञा हुई, और चेतन दो दूतियाँ ले गया : एक तो जाति की नाइन थी, जिसका नाम धनश्री था, और दूसरी मनमोहिनी [दूती] मालिन थीं, जिसका नाम देवश्री था।

३४८. [वे दूतियाँ] देश-देश की भाषाएँ बोलती थीं, और उन्होंने अगणित लाख सतियों को बिगोया (पथभ्रष्ट किया) था। वे स्त्री-चरित्र की अच्छी जानकार थीं। सुल्तान ने उन्हें स्वयं बुला कर कहा।

३४९. अलाउद्दीन ने उनसे समझाकर कहा, "[देवगिरि गढ़ में] जाकर छलबल से छिताई को छलो। [इस कार्य के लिए] मैं तुम्हें कपड़ों और कनक (स्वर्ण) का पसाव (उपहार) दूँगा, और तुम पर कृपा करके [तुम्हें] अमीर (धनी) बना दूँगा।

३५०. "उसके बाद भी एक लाख घोड़े तुम्हें दूँगा, और जो कुछ [तुम लोग] कहोगी, वह भी करूँगा। मेरे चित्त में उस चित्र में अंकित [छिताई का] रूप बस गया है, इसीलिए [इतना] अधिक मेरा हठ हुआ है;

३५१. "और [इसी कारण] राजा रामदेव से भी [पूर्ववर्ती] स्नेह [-संबंध] टूटा है। यह मेरे लिए बड़े संदेह (खेद) की बात हुई है। दो में से एक भी बात कुछ भी न हुई है [न तो छिताई ही मिल सकी है, और न रामदेव से पूर्ववर्ती स्नेह का ही निर्वाह हो सका है], इसलिए यह निवेदन मैंने तुमसे किया है।"

३५२. तब नाइन (धनश्री) नाक पकड़ कर कहने लगी, "मुझसे (मेरे प्रयत्नों से) सतियों का सतीत्व सुरक्षित नहीं रहता है।

३५३. "छिताई की कौन सी बात, हम अप्सराओं और यक्षिणियों को ला दें। मृत्युलोक [के जीवों] की कौन सी बात है, छिताई को तो साथ ही लिवाए चली आवें।

३५४. "मदमत्त हाथी के द्वारा ही मदमत्त हाथी वश में आता है, मृगों के द्वारा ही सब कोई मृग को पकड़ते हैं, स्त्री का भेद स्त्री ही प्राप्त कर सकती है," [इस प्रकार वह] कुटिल हृदया अपने स्वामी (अलाउद्दीन) से कहने लगी।

३५५. मालिन [देवश्री] आगे आकर प्रतिज्ञापूर्वक कहने लगी, सती का जो सत (सतीत्व) होता है, वह मुझसे (मेरे प्रयत्नों से) जाता रहता है (नष्ट हो जाता है); मढ़ (मंदिर) में पत्थर की मूर्ति हो, तो उसे भी मैं बातों में हूक (हृदय की वेदना) दिला सकती हूँ।"

३५६. नाइन ने भगवा वाले विस्तार साज-बाज करके मसवासी (किसी तीर्थ में मास भर वास करने वाली) की सार (सज्जा) की; मालिन ने अपने तनु (शरीर) पर कोई और बात की (उसने कोई और वेश बनाया), और दोनों दूतियाँ एक साथ हुईं।

३५७. बादशाह ने दूतियों से कहा, "तुम जाकर [देवगिरि] गढ़ पर आधी रात को चढ़ो। तुम्हीं से हमारी बात रहेगी," दूतियों से बादशाह ने इस प्रकार कहा।

३५८. पुनः बादशाह ने उनसे कृपापूर्वक कहा, "तुम्हें मैंने साँभर का देश दे दिया। किंतु, दूतियों ने कहा, "हे बादशाह! सुनो, हम गढ़ के ऊपर कैसे जाएँ?

३५९. "यदि हम गढ़ के ऊपर इस वेश में चढ़ने पावें, तो हम सब सभी [कार्यों] को निपटा दें। कोट विषम है, और गढ़ का निवेश (प्रवेश) भी दुर्गम है; किस यत्न के द्वारा हम उसमें प्रवेश कर सकेंगी?

३६०. "लौह जटित वज्र के [जैसे] उसके कपाट हैं, और [उस पर भी] विषम योद्धा वहाँ बैठे रहते हैं।

३६१. "भारी ढेंकुरी तथा अवर्णनीय (?) [मगरबी] यंत्र के कारण गढ़ पर पक्षी तक तो जा नहीं पाते। [हाँ,] यदि [किसी प्रकार] हम गढ़ के ऊपर जाने पावें, तो [अपने] सभी वचन प्रमाणित करें।"

३६२. बादशाह के जी में यह विस्मय (विषाद) हुआ कि चेतन ने भी एक क्रूर मंत्र (कठिन उपाय) बताया; दुर्ग को घेरे हुए सात मास हो गए हैं, [अब तो] एक-एक दिन एक-एक वर्ष के समान जा रहा है।

३६३. "अब दूतियाँ गढ़ के ऊपर कैसे जावें, इसकी बुद्धि (युक्ति) बताओ," [चेतन से] बादशाह इस प्रकार कहने लगा। तब चेतन उठकर आशीर्वाद देने [और कहने] लगा, "हे दिल्लीपति सुनो, क्रोध न करो।

३६४. "गढ़ में बसीठ (राजदूत) भेजो; उसी के साथ ये नारियाँ (दूतियाँ) भी चढ़ जावें।" [यह सुनकर बादशाह को एक बात और सूझी इसलिए] बादशाह राघव चेतन की बाँह पकड़ कर उसको महल के भीतरी कक्ष में ले गया।

३६५. [और बादशाह ने कहा] "ऐ चेतन, यदि तू स्वभाव से चेतन है, तो देवगिरि दुर्ग मुझे भी दिखला।" चेतन कहने लगा, "ऐ बादशाह, सुनो। तुम दिल्लीपति हो और स्वामी हो।

३६६. "तुम्हारे पकड़े जाते ही सारा [दिल्ली का] राज्य डूबता है, [इसलिए] तुम्हारे पकड़े जाने से सब अकार्य ही होगा। तुम्हारे पकड़े जाते ही कटक में हल्ला मच जावेगा, और तुम्हारे पकड़े जाते ही [हम लोगों के लिए] कोई ठौर [ठिकाना] न रह जाएगा (हमलोग कहीं के न रहेंगे)।

३६७. "तुमको राजा रामदेव पहिचानता भी है, और तुम्हारे पकड़े जाने पर सब [किया-कराया] व्यर्थ जाएगा।" सुल्तान ने [इसके निराकरण की युक्ति बताते हुए] कहा, तू कपट का रूप (छद्म वेष) बना कर बसीठ (राजदूत) बन और मैं धृष्ट प्यादा बन कर तेरे आगे-आगे होऊँ।

३६८. "तू चलकर राजा [रामदेव] के पास जा, और मैं देवगिरि को चारों ओर से देखूँ।" चेतन ने कहा, "हठबल से सिंह को कैसे पकड़ा जा सकता है, और हठपूर्वक मदमत्त हाथी को दौड़कर कोई कैसे पकड़ सकता है?"

३६९. विप्र (चेतन) ने इस प्रकार कहा, "ऐ बादशाह, हठ छोड़ो तुम्हारे पकड़े जाते ही किसी प्रकार का बंधन शेष न रहेगा (सारा राज्य विशृंखलित हो जाएगा)।" बादशाह ने कहा, "मैंने भी अपने पेट की बात तुझसे कह दी; मेरा कथन यदि तू मेट सके, तो मेट दे।

३७०. "मैं तुझ से एक मंत्र (उपाय) समझ कर ही यह निवेदन कर रहा हूँ, कि तू देवगिरि दुर्ग को मुझे दिखा। मेरी बुद्धि में अब ऐसी बात हुई (आई) है कि संपूर्ण देवगिरि को बिना कोताही (कोर-कसर) के देखूँ।

३७१. "ऐ चेतन! [यह मेरा हुक्म है,] मेरा हुक्म तू न मेट। [अब भी] ऐसा मैं नहीं समझता हूँ [कि तू मेरा हुक्म मेट देगा]।" चेतन ने कहा, "तुमने यह उपाय दुर्गति की बुद्धि से किया है, [इसका परिणाम] मेरे लिए अपलोक होगा, और इससे मेरा नाम अपलोकित (बदनाम) होगा।

३७२. "[इससे] तुम्हारा मरण होगा और मुझे बहुतेरी गालियाँ मिलेंगी। ऐ बादशाह, इसलिए तुम मन में विचार करके देख (समझ) लो। ऐ बादशाह, तुमने यह क्रूर मंत्र (विचार) किया है, मुझसे इसकी सहमति क्यों कर दी जा सकती है?

३७३. "यदि मैं तुम्हें मना करता हूँ, तो तुम मुझे [जान से] मारते हो, इसलिए ऐ बादशाह, जो तुम्हें अच्छा लगे, तुम करो।" चेतन से बादशाह ने तब कहा, "[बिना और कुछ सोचे-समझे] तू शीघ्र वही कर जो मेरे मन में [हो] रहा है।

३७४. "मैं तुझसे बार बार यह निवेदन करता हूँ कि तू देवगिरि दुर्ग मुझे दिखा। मैं तेरा परम स्वामी हूँ, तू विचार कर देखे, और तू मेरा अनुरोध मिटा (अस्वीकार कर) रहा है!

३७५. "यदि और कोई हो, तो [ऐसे अपराध पर] मैं उसके प्राण ले लूँ, किंतु [तेरी पूर्ववर्ती सेवाओं के कारण] मैंने तुझे जीवन-दान दिया।" तब राघव [चेतन] ने जी में जान लिया कि बादशाह मुझ से क्रुद्ध हो गया है।

३७६. [बादशाह से तब राघव चेतन ने कहा,] "[अब] तुम शीघ्र चलो, देरी न लगाओ, जिससे हम लोग दुपहरी की वेला में [दुर्ग पर] जा कर चढ़ जावें।" [यह सुनकर बादशाह ने] [पैर] खाली करके जूती पहनी; और कोई [यह] भेद नहीं जानता था।

३७७. [और] उसने काला बागा (बड़ा अँगरखा) पहना। [फिर तो] बादशाह का रंग-रूप ही कुछ और हो गया। [उसके] मत्थे पर (सिर पर) काली खोल (ओढ़नी) शोभा देने लगी, और हाथों में लाल गुलेल।

३७८. फेंटे में उसने बहुत - सी गोलियाँ ले लीं [जिससे कि उनका उपयोग वह गुलेल के साथ चिड़ियों को मारने में कर सके] और बादशाह ऐसा बन गया मानों वह तरैया (डोली या सुखासन के साथ रहने वाला अनुचर) हो। चेतन ने सुखासन सजा [कर उस पर स्थान ग्रहण कर] लिया और [अपने] आगे [चलने के लिए] बादशाह को प्यादा किया।

३७९. [दोनों] दूतियों को उन्होंने साथ लगा लिया, और वे देवगिरि दुर्ग पर जा चढ़े। राघव [चेतन]! तेरा सुवंश धन्य है; और वह जननी धन्य है जिसने तुझे जन्म दिया।

३८०. पूर्व का दिया हुआ वह दान भी धन्य था, जिसने आगे [अब] बादशाह को उसका प्यादा बनाया। हे सभासदो, अब जैसे उपाय होने लगे, वह मन में भाव (रुचि) धारण कर सुनो।

३८१. अब बादशाह देवगिरि दुर्ग पर चढ़ गया, और चतुर चेतन ने मन में मंत्र (उपाय) स्थिर कर लिया। उसने दूतियों को महल के भीतर भेजा [और कहा,] "तुम जाकर छिताई नारी का पता लगाओ।"

३८२. राघव [चेतन] [सुखासन यान] हाँक कर रावल (राजभवन) को गया, और बादशाह स्वतः नगर को हुआ। [बादशाह ने] राजा का आवास देखा, और उसके परम विलास के रंग-स्थल देखे।

३८३. [उसने] मंदिर और नाना स्तंभ देखे, [और वह स्थान देखे] जहाँ अखाड़ा (नृत्यगीतादि का मंडप) और नाट्यारंभ (नाट्यशाला) थे। उसने [मंदिरों के] कलश देखे, वे कंचन के थे, और तोरण देखे जो अति [सुंदर] बने हुए थे।

३८४. [उसने] सोने का एक पीपल [का वृक्ष] देखा, जिसकी शाखाएँ आकाश में [फैली] थीं, और जिससे बारहो महीने मेघ (जल) की वर्षा हुआ करती थी। स्फटिक शिला से [उस सभाभवन का] बहुत [सुंदर] निर्माण हुआ था जहाँ राव [रामदेव] सभा सजा कर बैठा करता था।

३८५. [अपने] चित्रकार के बनाए हुए चित्रों को उसने देखा; [उसे ऐसा लगा कि रामदेव का भवन] मानो इन्द्र के निवास का इन्द्र-भवन बना था, अथवा ब्रह्मा के निवास का ब्रह्म-लोक था, अथवा महेश का [निवास] कैलाश था।

३८६. [उसने] अनुपम माणिक्य चौक देखा, जिसे देखते हुए राजा-गण की भूख जाती रहती थी। [उसने] मदमत्त मतंगुरों (हाथियों) को देखा और सिंहली हाथियों को भी, जिनके दाँत शोभा दे रहे थे।

३८७. [उसने] ताजी और तुषार तुरंगों (घोड़ों) को देखा, जो पृथ्वी की फेरी (परिक्रमा) मुहूर्त भर के समय में करते थे। उसने आप चल कर वीर सुभटों को देखा, जो रण में धीरों का साहस नष्ट कर देते थे।

३८८. [उसने] नरेश के हाट-बाजार देखे, और बादशाह ने यह सब एक गरीब के वेश में देखे। [इस प्रकार] फिरता-फिरता बादशाह वहाँ गया जहाँ पर रामसरोवर सागर था।

३८९. [उसने इस] गहरे और गंभीर सागर को देखा, जिसकी ऊँची [उठने वाली] लहरें जल को झकोरती रहती थीं। रावट (कसौटी के पत्थर) का बना हुआ वहाँ रंग-भवन था, जिस पर मुमानी (मोम जैसा चिकनापन) किया हुआ था, और उसमें स्फटिक का पेटा (मध्यभाग) जड़ा हुआ था।

३९०. स्फटिक-शिला की बैठक अति [सुंदर] बनी हुई थी, और मंदिर की मौजें (लहरदार उठानें) [अलग ही] शोभा दे रही थीं। [उस सागर के] चारों घाट [उसके किनारों के] पाट (विस्तार) को ढकते थे और [उन घाटों पर] सुंदरियों के समूह पानी भरते थे।

३६१. बाला, अबला और प्रौढ़ा [सभी अवस्थाओं की] नारियाँ [उस सागर का] निर्मल नीर भरती थीं। उनके रूप का वर्णन करके [कथा] कौन कहे ? [उनका रूप] कथन करने से कथा का कुछ अंत ही न मिलेगा।

३६२. दृष्टिवान् [उसको देखकर] चकराता (आश्चर्य में पड़ा) हुआ वहाँ शोभा देता था, और गंभीर [की दशा] का वर्णन नहीं हो सकता है। कमल और कुमुदिनी के पर्ण (पत्ते) [उसके जल के ऊपर] शोभा दे रहे थे, और भँवरे [उनके] सुवास रस के कारण (ज्ञान सुधि-बुधि) भूल रहे थे।

३६३. [उसमें] हँस हँसिनियों के साथ निवास करते थे और कुरंग (बुरे रंग के—क्योंकि उनका शरीर मटमैला, सिर लाल और गर्दन लंबी होती है) कुलंग भी आनंद से भरे हुए [उसमें रहते थे]। [वहाँ] चकवी-चकवे और चकोर क्रीड़ा करते थे और बन के जीव-जन्तु तथा मोर गुंजार करते थे।

३६४. ढेक पक्षी, बहुतेरे मटामरे, जलकुक्कुटी, अगणित आरि, सारस और बक, जो हंसों की उनहारि के थे, [आदि] पक्षी उस सरोवर के पाल (बाँध) पर निवास करते थे।

३६५. पुरइनों (कमल के पत्तों) में कमल जल पर छा रहे थे, और बहुतेरी पुष्पावलियाँ महक रही थीं। एक क्षण [बादशाह] उस सरोवर के तीर पर बैठा, और वहाँ पर बैठ कर बादशाह ने जल पिया।

३६६. विरह-ताप तथा मदन-शर से आहत बादशाह अब चलकर फुलवाड़ी में गया। [उसमें] मलत (मालती), केतकी, कल्हार, रायचंपा, और केवड़े अत्यधिक थे।

३६७. [उसमें] मलयागिरि चंदन, और अशेष (समस्त) मुचकुंद भी थे। [इन फूलों के] परिमल-रस पर नरेश (बादशाह) भूला रहा। [उसके] श्रवणों में पक्षियों के जो बहुतेरे सुशब्द पड़ रहे थे, [वे उसे ऐसे लगते थे] मानों कामदेव के मारे हुए बाण हों।

३६८. [फूलों की] उस शोभा को जो [बादशाह ने] देखा तो उसके नयन रस-सिक्त हो गए, उनकी वासना (सुगंध) से उसकी घ्राणेन्द्रिय तृप्त हो गई। उन फूलों के नाम और उनकी जाति का वर्णन कर रहा हूँ।

[इसमें मेरी अपनी विशेषता नहीं है.] मैं रत्नरंग 'गुणीजन' (नारायणदास) के गुण [मात्र] गिन रहा हूँ।

३६६. कुसुमों में कुंद, मुचकुंद, मरुवा, केवड़ा, केतकी, कल्हार, गुल्लाला, सेवती, मोगरा, सुंदर जाती, महँदी, पद्माक्ष, केवड़ा, अतिवष, चंपक प्राप्त हो रहे थे; जाती, कूजा, तथा अगणित जुही वहाँ महक रही थी। सघन दाड़िम, द्राक्षा, कमरख, नारंगी, नीबू, अनार, बादाम, आम और खारिक (खट्टे) जंभीर के [वृक्ष] उस सरोवर के पाल (बाँध) पर सघन थे।

४००. उस फुलवाड़ी में [लगे हुए] कुंद, खिरनी, जाती आदि वृक्षों की गिनती करते हुए कौन उनका आदि (विवरण) जान सकता है ? लवंग और इलायची की अनुपम बेलियाँ भी [उस फुलवाड़ी में] थीं, और बादशाह ने उस भूमि में चंदन के बन भी देखे।

४०१. [उसने वहाँ] केशर देखी, और [यह देखा कि] केला और केली के मूलों में भीमसेनी कपूर उत्पन्न हो रहा था [उसने देखा कि] वहाँ विष्णु और शिव का प्रासाद (मंदिर) भी था, जिसकी ध्वजा उत्तुंग (ऊँची) थी और जिसका कलश अति [सुंदर] बना हुआ था।

४०२. [इन सब को] देखकर मन में बादशाह ने इस प्रकार देखा (समझा) कि धरित्री पर यही वास्तव में आशिस (ईश्वर की कृपा) का स्थान था। उसने [उक्त] राम सरोवर को देखने पर वैसा ही पाया जैसे पृथ्वी पर मानसरोवर हो।

४०३. उसी प्रसंगमें [जब बादशाह इस प्रकार राम सरोवर की शोभा का अवलोकन कर रहा था] छिताई नारी सरोवर के पाल (बाँध) पर बनसी [के द्वारा मछलियाँ फँसाने का खेल] खेल रही थी। उस बनसी की साँट (पतली कमची) [बाँस के स्थान पर] सोने की थी और उसकी डोर पाट (रेशम) की थी। उसने पति के [विरह के] कष्ट में बनसी उठा ली थी।

४०४. वह अपने पति (सौंरसी) का बागा (अँगरखा) अंग (शरीर) पर धारण किए हुए थी, और दस-बीस सखियाँ उस बाला के साथ थीं। [उसके] गले में [सौंरसी की दी हुई] कंठमाला थी और उसके दृढ़ शरीर पर

[सौंरसी की दी हुई] जमधर (चौड़े और सीधे फल की कटारी) थी। उसके तरिवनों (ताटंकों) में हीरे थे और माँग में मणियाँ थीं।

४०५. सुंदर कुसुंभी रंग की [उसकी] लाल ओढ़नी थी। [इस प्रकार] वह वनिता काम को भी मुग्ध करनेवाली बनी हुई थी। कमल दल के समान उसके अति चंगे (सुंदर) नेत्र थे, और [उसकी] सुंदर दंतपंक्ति भी शोभा दे रही थी।

४०६. उसके [मस्तक पर का] तिलक मधुमणि (मधुरता की मणि) था और उसकी नाक गज-कुंभ के समान थी। उसका वदन (मुख, [पूर्णिमा को] उदित पूर्ण मृगांक (चंद्र) के समान था। [जब] उस बाला का चंद्रवदन [वहाँ] उदित हुआ, [दिन को ही रात्रि समझकर] चकवे का चकवी से संग बिछुड़ गया।

४०७. अरुण कमलों के संपुट बँध गए, भ्रमर कुमुदिनियों के पास चले गए [क्योंकि रात्रि समझ कर कुमुदिनियाँ विकसित हो गई थीं], और चकवी का चकवे से प्रेम-विछोह हो गया: उनके सरल और सच्चे कुलेलों (कल्लोलों) में अंतर पड़ गया।

४०८. [छिताई के मन में] प्रेम के संयोग से काम प्रज्वलित था, अब उसे काम की पीड़ा अधिक व्याप्त हुई, [कारण यह था कि] एक ओर कोयल, चकवी और मोर थे, और दूसरी ओर वसंत और सलिल के झकोर थे।

४०९. कीर, चकोर और हंस उस सरोवर में सुखी हो रहे थे, [इस कारण] विरहिणी का शरीर और भी तप्त हो रहा था। सारस 'पीव' शब्द सुनाते थे, जिसके कारण सुंदरी का वदन (मुख) और जी भी विकल हो जाता था।

४१०. मत्त पारावत की गहरी घुटक (गुटर गूँ की बोली) से उसे काम-पीड़ा और अधिक व्याप्त हो रही थी। वह सरोवर के तीर पर भवभय से चकराई खड़ी थी, और काम-व्यथा उसके शरीरमें विष की लहर के समान [व्याप्त हो रही] थी।

४११. [उसने कहा,] "सभी लोग कहते हैं जल शीतल होता है, किंतु मुझ विषयिनी के शरीर को [यही जल] विष [होकर] जलाता है। मुझे राजभवन और शैया नहीं सुहाती थी [इसलिए मैंने कहा] 'चलो, सरोवर [के तट] पर [हम सब चलकर] खेलें।'

४१२. "[किंतु] सरोवर [के तट] पर [आकर] जो कुछ मैंने देखा,

उससे बहुत दुःख हुआ, [क्योंकि मेरे चंद्रमुख के उदित होने से दिन का अंत समझ कर] चकवा चकवी से के संग से वियुक्त हो गया। मुझ पापिनी का जन्म ही क्यों हुआ, कि मुझ को छोड़ कर पति विदेश गया ?

४१३. "मेरे मुख को देखकर चकवी [चकवे से] वियुक्त हो गई, और उस पक्षी को क्रोध हुआ ? ऐ सखी मैनसुख, जरा मेरी बात सुन, मुझे दल-बल के साथ काम-कटक व्याप्त हो रहा है।

४१४. "मुझे मदन की यह चोरी अत्यधिक व्याप्त हो रही है, जिस प्रकार जल में कमल की पंखुरियों में शीत व्याप्त होता है। मेरे कांत ही, जो अपार (अगणित) दिनकर के समान हैं, इस [काम] शीत के विष को बुझा सकते हैं।

४१५. "हे मदन, जब तुम पतिदेव के पाले पड़ोगे (उनकी उपस्थिति में दिखलाई पड़ोगे), तब तुम्हारी सेना [का बल] देखूँगी।" किंतु इस दुःख (कामपीड़ा) को छोड़कर (भुलाकर) पुनः सुंदरी सरोवर के तीर पर उसके नीर में बनसी खेलने लगी (बनसी डालकर मछलियाँ फँसाने और उसके द्वारा मनोविनोद करने लगी)।

४१६. विरह के ताप में मदन का विष अत्यधिक था; किंतु पक्षियों के शब्दों का स्मरणकर उसे आप ही सुख हुआ। पक्षीगण सरोवर के संग (उसके आश्रय में) निवास करते थे, और वह [उनके साथ] आप अनेक प्रकार से रंग (खेल) करने लगी।

४१७. हंसोंका शब्द सरोवर में हो रहा था, और बट के उपकंठ में (निकट) मनोहर नारी छिताई [सखियों से बातें कर रही] थी। चारों ओर अति घनी फुलवाड़ी थी, और सिर पर घड़े रक्खे कामिनियाँ [सरोवर से] जल भर रहीं थीं।

४१८. उनके वदन (मुख) कोमल और नेत्र सुढार (सुडौल) थे। वे [भी] सरोवर के पाल (बाँध) पर से [पक्षियों का] यह चरित्र देख रही थीं। यह सब देख कर बादशाह को बहुत सुख हुआ और उसने हाथ में गुलेल लेकर गोलियाँ ले लीं।

४१९. धीर बादशाह गोलियाँ [गुलेल से] फेंकने लगा, जिसके कारण पक्षी उड़-उड़ कर सरोवर के किनारे [आकर] बैठने लगे। [बादशाह एक गोली फेंक चुकने के बाद दूसरी गोली के लिए] हाथ घुमा कर कंधे

पर ले जाता था [क्योंकि उसे इसी प्रकार अपने खवास से गोलियाँ लेने का अभ्यास था], किंतु फिर ध्यान आने पर [कि यहाँ कोई खवास साथ नहीं है, और गोलियाँ उसी के फेंटे में हैं] वह फेंटे से गोलियाँ निकालता था।

४२०. जब [इस प्रकार करते हुए] दो-चार गोलियाँ उसने [गुलेलसे] फेंकी, छिताई नारी ने तभी भाँप लिया। तब सुंदरी ने मन में जान लिया कि छद्मवेश में यह कोई साहिब (संभ्रांत व्यक्ति) है।

४२१. उसने मैनरेखा को समझा कर वहाँ भेजा, और स्वतः राजमंदिर जा पहुँची। [मैनरेखा] दृष्टि बचाते हुए उस [बादशाह] के पास तक गई, और जाकर उसके पीछे की ओर खड़ी हो गई।

४२२. बादशाह [उसी प्रकार] गोलियाँ सरोवर में फेंकता था, और अपना हाथ पीछे की ओर [ले जाकर गोलियाँ] पुनः पुनः माँग रहा था [क्योंकि वह] यह समझ रहा था कि 'मुझको खवास [गोलियाँ] दे रहा है।' [यह देख कर मैनरेखा ने] जी में विश्वास कर लिया कि यह बादशाह ही है।

४२३. [इसके बाद बादशाह] जब-जब अपना हाथ कंधे पर [गोलियों के लिए] देता (ले जाता), तब-तब वह दासी बिना कुछ बोले हुए उसे [गोलियाँ] देती। इस प्रकार [गुलेल] खेलते बादशाह को दो घड़ियाँ हो गईं, और बादशाह ने उस सरोवर में बहुत से पक्षी [गोलियों से] मारे।

४२४. गोलियाँ जब उस सरोवर में पड़तीं, पक्षी उड़-उड़ कर सरोवर के पाल (बाँध) पर जा बैठते। [धीरे-धीरे जब] सभी पक्षी उड़ गए और आखेट हो गई, तब दासी ने [बादशाह का] फेंटा पकड़ा।

४२५. जब फेंकते-फेंकते गोली एक भी न रही, तब बादशाह से दासी ने कहा, "यहाँ तुम्हारा खवास कहाँ है? और गोली तुम किसके पास से माँग रहे हो?"

४२६. [यहाँ] आकर बादशाह जी में चकरा गया, और [मन ही मन उसने कहा,] "हे खुदा, तूने मेरी बुद्धि क्यों हर ली?" [उधर] दासी का चित्त बहुत प्रसन्न हो रहा था, [और वह अपने मनमें कह रही थी,] "मैंने अब शाह-ए-आलम को पकड़ लिया है।

४२७. "जिसके डर से सारा संसार डरता है, जिसने राजा रामदेव को संकोच (घेरे) में डाल रक्खा है, जिसने समस्त भूपतियों और बादशाहों को जीत लिया है, जिसने दुर्गम गढ़ों को भी ढाह कर ले लिया है,

४२८. "और जिसके पास नौ लाख घोड़े हैं, उसको मैं ने अच्छी तरह पकड़ा है; जिसके प्रताप ने समस्त संसार को जीत लिया है, इसी (ऐसे शाह-ए-आलम) को किसी ने (मैंने) तृण मात्र भी नहीं गिना है।

४२९. "अब राजा रामदेव का कार्य सिद्ध हो गया, इसको पकड़ते ही राजा रामदेव सुखी हो जावेंगे।" [फिर बादशाह से उसने कहा,] "तू शाह-ए-आलम और दिल्लीपति है, शीघ्र अपना नाम प्रकाशित कर।

४३०. "तूने [देवगिरि घेर कर] गढ़ में हमको अपाय (निश्चेष्ट) कर दिया है, [इसलिए] तुझे लिए हुए अब मैं राजा [रामदेव] के पास चलती हूँ। तेरे ही डर से कुमारी (छिताई) को भी दुःख पहुँचा है, और तू ने हमारा अयोग्य (अनुचित) भेद लिया है।

४३१. "सौंरसी साधन-सामग्री तथा द्वारसमुद्र की अथाह (अपार) सेना लेने के लिए गया हुआ है। इतना दुःख तेरे आने (आक्रमण करने) से हुआ है। जो कुछ दैव सहावै सो सहना पड़ता है।

४३२. "[किंतु] अब वही सब हमारे लिए अच्छा कार्य हो गया है। अब राजा रामदेव सुख की नींद सोवेगा। बिगाड़ने और बनाने वाला जो [परम] पुरुष है, उसको ऐ बादशाह, जोर (अनुचित बल-प्रयोग) अच्छा नहीं लगता है, [इसी लिए तुम्हें उसने अब इस दशा को पहुँचा दिया है]।

४३३. "[राजा रामदेव के] सेवा करते हुए (करने से) तुमने मन में दर्प किया, तुम्हारा [वही] पाप अब उदित हुआ है। जिसका देवगिरि दुर्ग गढ़ हो, वह राजा किसकी सेवा करे ?

४३४. "[किंतु राजा रामदेव के] मंत्रियों ने यही युक्ति स्थिर की, और ऐ बादशाह, राजा निसुरत खां से जा कर मिला [और उसके साथ दिल्ली जा कर]" दासी ने कहा, "तीन वर्षों तक राजा तुम्हारी सेवा करता रहा।

४३५. "[किंतु राजा की] वह प्रीति भी तुमने [अपने] चित्त में न रक्खी : स्वामी अंत में मित्र नहीं होता। वह सेवा की प्रीति को मन में कुछ नहीं समझता, और जब-तब (कभी न कभी) [सेवक के साथ] बुराई करते देखा जाता है।"

४३६. बादशाह ने कहा, "ऐ बेखबर, मैं बादशाह नहीं हूँ। तू अपने मन में स्वतः विचार कर देख ले। ऐसे रूप (वेश) में बादशाह क्यों होगा—जिसको दुनिया में सब कोई शाह-ए-आलम कहता है ?"

४३७. तब दासी ने हँस कर बादशाह से कहा, "अब तो अवश्य ही राजा तुझे बंधन में डालेगा।" यह बात सुनते ही [बादशाह का] मुख छिप गया (छोटा हो गया), उसे शरीर में प्रस्वेद और बहुत दुःख हुआ।

४३८. बादशाह जी में बहुत पछताने लगा, उसका सिर नीचा हो गया और मुख कुम्हला गया। उसका मलिन मुख कयाह (कालापन लिए पीला) दिखाई पड़ रहा था; [ऐसा लग रहा था] मानो गगन में चंद्रमा को राहु ने दबोच लिया हो।

४३९. [वह अपने मन में कहने लगा,] "मैंने राघव [चेतन] का कहना नहीं किया, [इसलिए छिताई के] सौन्दर्य-दीपक पर पड़कर मैं पतिंगा जल बुझा।

४४०. "अब दिल्ली का राज्य डूब गया, और बेकार ही इस दुर्गम गढ़ में मरना हुआ।" इससे बादशाह का चित दृढ़ नहीं रहा। वह महा दुःखित था, क्योंकि उसे दासी ने पकड़ लिया था।

४४१. तब बादशाह ने मन में सोचा, "क्योंकर इस दासी से मैं उबरूँ ? मेरा हाथ अकथ्य रूप से शिला के नीचे दब गया है, अब किस गुण (युक्ति) से [उस] हाथ को निकालूँ ?"

४४२. पर दुर्ग में और पर घर में यदि कोई झगड़ा माँडता (करता) है, तो हे मित्रो (सभासदो) पराई पालि (सीमा) में वह दुर्लभी (दुलहिन) भी खंखरि (गले के कफ ?) के समान [निकाल बाहर करने योग्य] हो जाती है।

४४३. जो समय (परिस्थितियों) के विचार से चलते (कार्य करते) हैं और अपने मन में सद्भावना रखते हैं, उनका ही कार्य सिद्धि को प्राप्त होता है, जैसे हनुमान को सिद्धि प्राप्त हुई।

४४४. बादशाह ने कहा, "ऐ दूती ! मैं सिरा (सर्वोच्च) शाह-ए-आलम हूँ। मैंने दुर्ग को देखने के लिए इसमें प्रवेश किया। मैनरेखा, मैं तुझसे विनती करता हूँ कि तू मुझे अदग (बेदाग) दाग दे (अर्थात् बेदाग छोड़ दे, यही मेरे लिए सबसे बड़ा दाग होगा)।"

४४५. [यह कहते हुए] उस छोकड़ी (मैनरेखा) के पैरों में [बादशाह ने] अपना सिर रख दिया, और बहुत दीन होकर उसने बिनती की, "मैनरेखा, मैं तुमसे बिनती करता हूँ। हे सुंदरी, तू मुझे [अपनी] शरण में रख ले।

४४६. "मैंने बहुत से शाहों और राजाओं को जीता, बहुत से दलपतियों के देश लिए; [किंतु] अब मैं, हे सुंदरी, तेरे पाले पड़ा हूँ, तू जो कुछ करना चाहे करे।"

४४७. अपने-अपने देश में सभी कोई झगड़ा माँड (कर) सकता है, किंतु हे मित्र [सभासदो], पराई पालि (सीमा) में [झगड़ा करने से] दुलँभी (दुलहिन) भी खंखरि (गले के कफ ?) के समान [निकाल बाहर करने योग्य] हो जाती है।

४४८. [बादशाह ने कहा,] "अब मैं जो पराए के पाले पड़ गया हूँ, मुझ से बल [-प्रयोग] अब किस प्रकार किया जा सकता है ? ऐ मैनरेखा, मैं तेरा गढ़ छोड़ देता हूँ और यदि तू मुझे छोड़ दे, तो मैं तुझे वचन दूँ।"

४४९. तब सुंदरी (मैनरेखा) विचार करने लगी, "[अब] मैं संसार में अपना नाम करूँ, दिल्लीपति को मैं दंडित भी करूँ [और ऐसा कुछ भी करूँ कि] मेरे करने से समस्त देश भी [बादशाह के पंजों से] मुक्त हो जाए।

४५०. यदि मैं इसे पकड़े हुए राजा रामदेव के पास जाती हूँ, तो कलियुग में मेरा नाम नहीं चलता है। मैं दासी [मात्र] हूँ, और यह शाहंशाह है, मैं इसे छोड़कर [इसका] मुख लेश (थोड़ा सा) करूँ— अर्थात् इसे लज्जित करूँ [मेरे लिए यही सबसे अच्छा होगा]।"

४५१. [बादशाह ने कहा,] "ऐ मैनरेखा, तू नौ कोटि के [अंक] गिनती है, उसके [स्थान पर] तू बहत्तर कोटि [के अंक] गिन। मैंने इसके लिए खुदा को बीच में देकर (उसकी सौगंध लेकर) तुझे [प्रतिज्ञा-] पत्र लिख दिया; कल सबेरे ही तुझे द्रव्य पहुँचा दूँगा।"

४५२. [पत्र में] उसने ऊपर दासी का नाम दिया और नीचे की ओर [हस्ताक्षर के स्थान पर] 'दिल्लीपति' माँडा (लिख दिया)। मैनरेखा ने कहा, "ऐ बादशाह, सुन; अपने वचनों की पुष्टि के प्रमाण मुझे देकर जा।

४५३. "[यदि तू] झूठा बोलकर मुझे [राजा के पास] जाने देता है, तो पीछे [तेरा कुछ ठिकाना नहीं, उस समय] जो तुझे भाएगा,

तू करेगा। तू [देवगिरि] दुर्ग तथा [उस] समूचे देश को छोड़ दे, जितना राजा रामदेव का तेरे पास है।

४५४. "ऐसा वचन यदि तू स्वयं मुझे दे, और [इसके अतिरिक्त सौगंध के लिए] मुसाफ (धर्मग्रंथ) छुए, तब मैं तुझे छोड़ूँ।" बादशाह ने कहा, "मुझे तेरे देश से कोई प्रयोजन नहीं, और मुझे राजा रामदेव भी प्रिय है।

४५५. "[केवल] मेरे हृदय में छिताई थी, [जिसको] चित्र में अंकित करके [मेरे] चित्रकार ने मुझे बताया था। [उसी के लिए मैंने तेरे देश पर आक्रमण किया, और राजा रामदेव से भी विरोध किया]। ऐ मैनरेखा, सुन; मैं तुझसे विनती करता हूँ; जो कुछ भी तू कहे, वह मुझे करना है।

४५६. "मैं कल ही सवेरा होते यहाँ से कूच (प्रस्थान) कर दूँगा, यदि [कल देवगिरि में] खाना खाऊँ, तो हराम सुअर खाऊँ।" [इतनी बातें हो जाने के अनंतर] मैनरेखा रावल (राजभवन) को चली गई— उसने बादशाह का फेंटा छोड़ दिया था।

४५७. बादशाह [गढ़ की] तलेठी की हाट में जा बैठा, और वहाँ राघव [चेतन] की बाट देखने लगा। [उधर] तब तक राघव [चेतन] रावल (राजभवन) को गया। [राघव चेतन को आया देखकर] राजा उठा और उसने उसे अंकों में भर लिया।

४५८. [राजा रामदेव ने] आधा सिंहासन [उसके बैठने के लिए] हटा (खाली कर) दिया, और उसकी बहुत-सी मनुहार की। [राघव चेतन ने तब] जो रसाल (उपहार ?) बादशाह ने दिए (भेजे) भेजे थे, राजा रामदेव के आगे रख दिए।

४५९. [उससे] राजा ने बादशाह का कुशल पूछा। फिर कहा, "राघव, [बादशाह के] कटक के विषय में बताओ। पहिले युद्ध के लिए रण में कौन पड़ा, और किस कारण तुमने (तुम्हारे स्वामी ने) यह गढ़ घेरा ?

४६०. "क्यों तुम रसाल (उपहार ?) लेकर आए, और क्यों तुमको बादशाह ने भेजा ?" राघव [चेतन] बादशाह के वचन (उसके शब्द) कहने लगा, और सभा के [विभिन्न] वर्ग बैठे हुए उन्हें सुनने लगे।

४६१. [उसने कहा,] "जो अमीर युद्ध में सम्मिलित हुए हैं, [वे सब

अपनी-अपनी] सेनाओं के साथ रण में आ जुटे हैं। मैं (अलाउद्दीन) ने तो तेरी प्रीति की बात का निर्वाह किया, और तूने मुझ (अलाउद्दीन) को केवल दो दासियाँ दो [और अपने कर्त्तव्य की इति-श्री समझ ली]।

४६२. "उसी से क्रुद्ध होकर मैं [अलाउद्दीन] ने [देवगिरि] गढ़ में तुझे घेरा है। बादशाह के [क्रोधपूर्ण] शब्दों को क्योंकर तुम से कहा जावे ?" [ऐसा कहते हुए उसने (चेतन ने) बादशाह के ही शब्दों में कहना पुनः प्रारंभ किया,] "तू [ऐ राजा,] सुंदर मणियाँ और सुंदर घोड़े दे, तू मत्त गज दे, जिससे प्रीति [बनी] रहे।

४६३. "तू [देवगिरि] गढ़ छोड़ दे तो तेरी जान बचे, और [साथ ही इसके] तू [अपनी] कन्या छिताई को मुझ (अलाउद्दीन) को दे।" राजा ने ज्यों ही [राघव] चेतन की यह बात सुनी, उसका गात्र (शरीर) अत्यधिक रिस और क्रोध के कारण प्रस्वेद से पूरित हो गया।

४६४. [प्रस्वेद इस प्रकार प्रवाहित हुआ] मानो आकाश से मेघ बरस रहा हो। [उसने] क्रुद्ध होकर हाथ में (कृपाण) खींच ली [और कहने लगा,] "अरे दुष्ट मैं तुझे मारता हूँ, तू मुझको ऐसी बात क्यों कहता है ?

४६५. "अब यदि मैं तुझे जान से मार डालूँ, तो सुल्तान मेरा क्या करेगा (बिगाड़ सकेगा) ? मैं [देवगिरि] गढ़ में [सुरक्षित] अश्वपति (जिसकी अश्व सेना का बल विशेष हो), तथा दलपति (जिसकी पदातिक सेना का बल विशेष हो) राजा हूँ, जब कि तू [विप्र नहीं] बनजारी का पुत्र है जो [इस प्रकार संधि का] सौदा करता है।

४६६. "यदि एक सौ वर्ष भी [देवगिरि] गढ़ घेरे में [पड़ा] रहे, तो भी राजा का कुछ नहीं हो (बिगड़) सकता है," [राजा ने] कहा। राघव चेतन ने मन में विचार किया, " [असफल लौटने पर] बादशाह मुझे मरवा डालेगा, और इधर तू (राजा) रुष्ट हो [कर मारने के लिए कह] रहा है! [मैं] योगी या दरवेश न हुआ [कि ऐसे झंझटों से दूर रहता]।"

४६७. जैता और जाज ने बीच-बचाव किया और कहा, "दूत की मृत्यु, हे राजा, न कीजिए।"

४६८. बैरीसाल ने उठ कर [राजा के] हाथ पकड़ लिए, [और कहा,] "हे भूपाल, दूत मारा नहीं जाता है (अवध्य होता है), यह मैंने पुराणों की पीठों पर (जहाँ पुराणों का उपदेश होता है) सुना है, [भले ही] बसीठ (दूत) कडुए बोल बोलें।

४६९. "तुम बसीठ (दूत) को [सम्मानोचित वस्त्राभूषणादि] पहना कर शीघ्र [वापस] भेजो, [जिससे] तुम्हारी कीर्ति पृथ्वी भर में (फैल) जावे"। तब राजा ने [मारने से विरत होते हुए भी] दो बार क्रोधपूर्वक उससे कहा, "तू शीघ्र [गढ़ से] नीचे उतर जा, और [इसमें] विलंब न कर।"

४७०. राघव [चेतन] बादशाह समेत [गढ़ से] नीचे उतरा; [अब] गढ़ में केवल राहु और केतु (दोनों दूतियाँ) रह गए। राघव [चेतन] और बादशाह इकट्ठे हुए और उस दुर्गम गढ़ से उतर कर [अपने] डेरे पर गए।

४७१. बादशाह [राघव चेतन से] छिताई का हाल पूछने लगा, राघव [चेतन] ने राजा [से जो बातें हुई थीं उन] का व्यवहार (विवरण) कहा। बादशाह ने [इसी प्रकार राघव चेतन से] वह [सारी] बातें बताईं जो दासी [मैनरेखा] और उसके बीच में घटित हुई थीं, [जिन्हें सुन कर] राघव [चेतन] दाँतों में (तले) जीभ देकर रह गया।

४७२. [राघव चेतन ने कहा,] "मेरे शब्द तुम [ऐ बादशाह,] चित्त में धारण नहीं करते हो, दीपक [छिताई] पर पतंग बन कर फिर (चक्कर लगा रहे हो, और यदि मैं मना करता हूँ तो तुम मुझे डाँटते हो, इसलिए मैं तुम्हारी बात नहीं मेटता हूँ।

४७३. "[यदि दासी ने तुमको मुक्त न किया होता तो] तुम्हें तो कोई बुरा न कहता, मुझे ही भारी अपयश होता; सभी लोग ऐसी बात कहते कि राघव तुम्हें अपने साथ लिवाता गया जब वह गढ़ पर चढ़ा।

४७४. "और उसी ने दूताई कर (भेद बताकर) बादशाह को पकड़ा दिया—ऐसा सभी लोग अपने मन में कहते। यह अत्यंत बुरा हुआ था [कि तुम मेरे साथ देवगिरि गढ़ के भीतर गए]। इस प्रकार [शत्रु के दुर्ग में] और (फिर) जाना।

४७५. "[यदि दासी ने तुमको मुक्त न किया होता तो] मुझे तो भारी अपयश होता ही, फिर तुम्हारा राज्य भी डूब जाता । अब खैर करो (मनाओ) कि [तुम्हारा] नया जन्म हुआ है ।" बादशाह ने स्वतः भी बधावा कराया ।

४७६. गंभीर [स्वरों में अलाउद्दीन के] धौंसे घुमड़ने लगे, और [उसके] पंच शब्द के वाद्य भी बज उठे । [उधर] जब बसीठ [राघव चेतन] गढ़ से उतर गया, तब राजा रामदेव को अति सुख हुआ ।

४७७. राजा अपने गढ़ के छज्जे पर छत्र दे (धारण) कर जा बैठा । [उसने देखा कि शाही] कटक में आज गहरी हलचल है । तब तक पीपा उसका प्रधान [अमात्य] बोला, "हमें जान पड़ता है कि [शाही सेना का] कूच प्रस्थान होगा ।

४७८. "लोग अपना विदाई (प्रस्थान) का सामान कस रहे हैं, इसलिए कटक में हलचल है ।" इसी बीच दासी [मैनरेखा] जा पहुँची और जाकर राजा के पास खड़ी हो रही ।

४७९. [उसने] हाथ जोड़कर [राजा को] जुहार किया, और बादशाह [के साथ घटित घटना] का व्यवहार (विवरण) कहने लगी । [उसने कहा,] "आज बादशाह गढ़ पर चढ़ा था । [उस समय जो घटना घटी] वह [हे राजा,] तुम सुनो ।" दासी ने इस प्रकार पढ़ा (कहना प्रारंभ किया मानो वह कोई लिखित वृत्तांत पढ़ रही हो) ।

४८०. "मैंने गढ़ में शाहंशाह को पकड़ लिया; उसके वस्त्र मलिन थे और वह निर्धन-वेश में था । हाथ में गुलेल और गोलियाँ लिए हुए उसने [राम-] सरोवर के बहुत से पक्षियों को मारा था ।

४८१. "वह [बार-बार] अपनी बाँह पीछे [की ओर] करके गोलियाँ माँगता था, इसलिए मैंने यह चरच (भाँप) लिया कि यह बादशाह है । मैंने उसके कर की पहुँची तोड़ दी [उसको ऐसा कस कर पकड़ा] और बादशाह पर बहत्तर करोड़ का दंड लगाया ।

४८२. "उसने [तब] खुदा को बीच में साक्षी देकर [इस विषय का] पत्र लिख दिया, [और कहा,] 'कल सवेरे ही तुझे द्रव्य पहुँचा दूँगा' । बादशाह वहाँ (उस समय) इस प्रकार मुझ से वचनबद्ध हुआ, और उसने [इस विषय का] पत्र लिख कर मुझे दे दिया ।"

४८३. [दासी ने] पत्र राजा के हाथ में अर्पित किया, [जिसे] उसी समय बाँच (पढ़) कर राजा ने देखा। [दासी ने तदनंतर पुनः कहा,] "मैंने उस (बादशाह) का अत्यधिक मान-मर्दन किया। मैं राजा की आन (सौगंध) लेकर कह रही हूँ कि मैं झूठ नहीं कह रही हूँ।"

४८४. [यह सब सुनते ही] सब किसी ने कहा, "[दासी को] मारो ! मारो ! कहीं किसी छैले (सुंदर युवक) ने इस सुंदरी को धोखे में डाल दिया। वह (अलाउद्दीन) तो सिरा (सर्वोच्च) शाहंशाह है, वह [भला] गरीबी का वेश क्यों करने लगा ?"

४८५. "यदि ऐ दासी, तूने बादशाह को पकड़ा है, और [बादशाह] तेरे वचन अपने जी में धारण करता है, तो" राजा ने कहा, "तू बादशाह कूच करवा; गढ़-ग्रह का जो ग्रहण लगा हुआ है, उससे वह किसी प्रकार मुक्त तो हो।

४८६. "[यदि] तू शीघ्र ही [शाही] कटक को उठवा (हटवा) दे, तो मैं तुझे आधा गढ़ और [आधा] राज्य दे दूँ।" [यह सुनते ही] मैनसुख (मैनरेखा) नारी छज्जे पर जा चढ़ी और तभी (तत्काल ही) बादशाह से उसको पुकार कर उसने कहा,

४८७. "मैं दासी हूँ, और तू शाहंशाह है; तू दुर्ग को छोड़ दे (उससे अपना घेरा उठा ले) और अपना मुख थोड़ा कर ले। तू, दुर्ग, देश, और नारी (छिताई) को छोड़ दे, और अपने कहे हुए बचन का पालन कर।

४८८. "ऐ बादशाह तू काला बागा (लंबा अँगरखा) शरीर पर धारण कर करीले (काले) घोड़े पर सवार हो, काला छत्र सिर पर [धारण] कर और गढ़ के [अपने] बोल (बचन) को अभी चित्त में धारण कर।"

४८९. तब वह जो बादशाह था (अलाउद्दीन) विचार करने लगा— "कहे हुए बचनों का प्रतिपालन करना चाहिए। हरिश्चंद्र बचनबद्ध हुए और वे नीच के घर पानी भरने के लिए [उसके सेवक होकर] रहे।

४९०. "वचनों [के प्रतिपालन] के लिए ही बलि पाताल में गया।" [ऐसा विचार कर] बादशाह ने कहा, "हमने कूच कर दी है।" बादशाह ने कूच का वचन [इस प्रकार] अर्पित किया [मानो] वचन की धरती को फणीन्द्र (शेष) ने सिर पर धारण किया हो।

४६१. सवेरा होते ही [शाही] दल में धौंसे होने (बजने) लगे और बादशाह ने अपना वचन प्रमाणित किया। उसने नौकरों-चाकरों को बिदा किया, और ऊँट, बैल तथा खच्चर-खच्चरी लदवाए।

४६२. सुंदरी (मैनरेखा) ने जो जो बातें कहीं थीं, वे सभी बातें बादशाह ने कीं। अंबारी (झूल), ढाल, और संदूक (बैठने के हौदे) आदि [हाथियों की सज्जा] सजी। कटक ने अगले खाली स्थान (मंजिल) के लिए प्रस्थान कर दिया।

४६३. [बादशाह ने] अपने बदिरा (बंदे) दुर्ग पर चढ़ा दिए और [मैनरेखा के पास से] अपना लेख वापस मँगा लिया। गढ़ भर में दासी 'भली' 'भली' हो रही थी, और बादशाह अपनी पूँजी-सी खो कर लौट पड़ा था।

४६४. तब तक पीपा परिगही (संग्रहाध्यक्ष) बोला, "मैंने तो राजा से तभी (पहले ही) कहा था [कि बादशाह स्वतः कूच कर रहा है]। हे दासी, यदि तू [सचमुच ऐसी] चतुर और सुजान है [कि बादशाह का घेरा हटवा सकती है] तो सुल्तान को वापस करा कर ठहराव करा दे (कूच रुकवा दे) [तब तेरी चतुरता और सुजानता प्रमाणित हो]।"

४६५. [यह सुनते ही] मैनसुख (मैनरेखा) छज्जे पर बैठ कर कहने लगी, और बादशाह आप ही [अपने घोड़े की] बाग रोक कर सुनने लगा, "मुझ में और तुम में यदि वचन को प्रमाणित करने की बात थी, तो हे सुल्तान, तू [देवगिरि] गढ़ को गर्द करदे (गर्द में मिला दे)।"

४६६. बादशाह ने सब कटक वापस बुला ली और दुर्ग पर [पुनः] चारों ओर से घेरा डाल दिया। रोष में आकर बादशाह सैनिक एकत्रीकरण करने लगा, और सतर्क होकर गढ़ की तलहटी में फिरने लगा।

४६७. क्रोध का [प्रति] रूप होने के कारण उसकी रिस (अनिष्ट करने इच्छा) और उसका साहस और भी वक्र (विकट) हो उठे। [देवगिरि दुर्ग के भीतर प्रविष्ट होने के लिए] चारों ओर बहुतेरी सुरंगे लगा दी गईं। ठाठरियाँ (सुरक्षा की दीवालें) इस प्रकार ठाटी गईं कि वे दुर्ग [की दीवालों] के समान लगती थीं और उनके ऊपर नलिकाएँ और कमानें (तोपें) बनाई (सजाकर रक्खी) गईं।

४६८. अमीर लोग [देवगिरि दुर्ग के] एक-एक बुर्ज को ताक-ताक करके मारते [नलिकाएँ और कमानें चलाते] थे । [उससे जो ध्वनि होती थी वह ऐसी लगती थी] मानों अकाल के मेघ गंभीर गर्जन कर रहे हों । [परिणाम-स्वरूप देवगिरि दुर्ग की] दीवालें खरभराती हुई समुद्र [की लहरों] के समान गिरने लगीं । किंतु उन दीवालों को रामदेव के चतुर [सूत्रधार और श्रमिक] क्षण मात्र में चुन [कर ठीक कर] लेते थे ।

४६६. इधर और उधर—दोनों दलों में मारकाट हो रही थी, और दोनों [पक्षों के] स्वामी मूर्तिमान क्रोध हो रहे थे। मुगल [दुर्ग पर] चढ़ जाते थे, मानो बंदर लंका [के दुर्ग] पर चढ़ रहे हों, और मन में मरने की शंका नहीं करते थे ।

५००. गढ़ दुर्गम और जर (जटिल) था, और उसमें दंतियों (हाथियों) की आड़ (रक्षापंक्ति) थी, किंतु गढ़ की दीवालें [नलिकाओं और कमानों की चोटें खाकर] खरभराती हुई जब गिरतीं, वे उन [हाथियों] में से बहुतों को मार गिरातीं । दुर्ग में भट अधिकता के साथ थे और वे निरंतर चलते रहते थे, [जिसके कारण] बादशाह के सवार टिक नहीं पाते थे ।

५०१. [त्रिपक्षी जिस प्रकार] निकंद (चुपचाप) तप्त तैल छिड़कते थे, उसी प्रकार बादशाह भी [अधिकाधिक] क्रुद्ध होता था । किंतु दुर्ग पर [शाही दल का] हाथ नहीं उठ पाता था, [क्योंकि देवगिरि के सैनिक] तीरों से उन्हें विद्ध कर व्यर्थ कर देते थे ।

५०२. पीपा परिगही (संग्रहाध्यक्ष) ने जब [इस प्रकार का भीषण] युद्ध देखा, उसने उसी समय मन में लज्जा की । [फलतः] वह सम्मुख जाकर बादशाह से लड़ा, और बहुतेरों को मार कर रण में जूझ पड़ा (खेत रहा) ।

५०३. उसके [मरने] का राजा रामदेव ने अत्यंत दुःख (शोक) किया, और कहा, "[हमने] स्वतः अपने लिए काल को बुलाया; हमने अपने हाथों से ही हाथों में अंगार लिया; इसलिए [उसके परिणाम को] संसार में कौन मिटा सकता है ?"

५०४. रत्नरंग ने कविजन (नारायण दास) से बुद्धि (कल्पना) प्राप्त की और अब वह समय (प्रसंग) का विचार करते हुए कथा का वर्णन कर रहा है। गुणी जन (नारायण दास) ने [इस कथा की] गुणना (कल्पना) की थी, फिर उसमें रत्नरंग ने प्रकाश (विस्तार) किया।

५०५. दूतियाँ भी उसी प्रकार [अपना कार्य साधने के लिए] रावल (राजभवन) में गईं। वे जाकर सिंहद्वार पर खड़ी हो गईं। [वहाँ जाकर] उन्होंने छिताई का [कुशल-] समाचार पूछा, और प्रतिहार ने जाकर छिताई से सब ब्योरा बताया।

५०६. [तदनंतर] दूतियाँ भीतरी महल में गईं; कुमारी (छिताई) ने उन्हें अपने पास बुला लिया था। हाथों में पहुँची पहने हुए और कमंडलु हाथ में लिए हुए दोनों दूतियाँ एक साथ थीं।

५०७. आगे आगे मसवासिनी (कल्पवासिनी) [बनी हुई] बाला गई और भीतर जाकर उसने छिताई का [कुशल-] समाचार पूछा। [छिताई ने] जब सुना कि वह मसवासिनी (कल्पवासिनी) है, उसने बुलवा लिया और उसे आसन देकर समीप बैठाया।

५०८. ललाट में भागवती (वैष्णव) तिलक लगाए हुए, हाथ में सुमिरनी लिए हुए, गले में जपमाल डाले हुए, और सिरपर रामनामी टोपी रखे हुए, हाथ में तुलसी [दल] लेकर [उसने छिताई को] आशीर्वाद दिया।

५०९. छिताई ने कहा, हे "तपोवन (तपस्विनी), अपनी बात कहो। [किस अभिप्राय से तुम यहाँ आई हो ?] किस-किस तीर्थ की यात्रा के लिए तुम निकली हो, ?" दूती ने उत्तर दिया, "मैंने मकर में प्रयाग में [रहकर] व्रत किया (कल्पवास किया), और गया जाकर विधिपूर्वक पिंडदान किया।

५१०. "बदरीनाथ, वाराणसी, नैमिषारण्य, और फिर केल्हण और केदारनाथ का स्पर्श किया। छः महीने तक मैंने द्वारकावास किया। [इस प्रकार मैंने अपने] हृदय में राम की दृढ़ भक्ति ग्रहण की।

५११. "मैं तो भाँवरें घूमते ही विधवा हो गई थी; [तदनंतर] मुझे संत

गुरु ने दीक्षा दी थी। जगन्नाथ और गोदावरी में मैंने स्नान किया है। इस वार्ता को बहुत बढ़ाकर कौन कहे ?

५१२. "मैं [इस प्रकार] पवित्र हूँ और मेरा नाम परमानंदी है। मैं सेतुबंध रामेश्वर जा रही हूँ। हमने तेरे भाव (भक्ति) की वार्ता कानों से सुनी, इसलिए हम इस स्थान पर आईं।"

५१३. यह सुनकर छिताई ने उत्तर दिया, "आज यहाँ पधार कर आप-ने यह स्थान पवित्र किया है।" दूती ने कहा, "तू मुझसे अपना व्यवहार (विवरण) कह। तेरे जैसी इस संसार में दूसरी नारी नहीं है।

५१४. "[किंतु] तू अति दुर्बल हो रही है, और तेरा शरीर भी चिंताग्रस्त है। तुझे किस बात की पीड़ा व्याप्त हो रही है ? न तू [पान के] बीड़े खाती है और न मस्तक (शिर) पर स्नान करती है। कह, तेरे जी में क्या दुःख आ (हो) गया है ?"

५१५. छिताई ने कहा, "मुझे अपने प्रिय (पति) का दुःख है, और पिता की लज्जा है, [क्योंकि] यह गढ़ मेरे ही कारण घेरा गया है, और मेरे ही लिए मेरा नाथ (पति) विदेश गया है। मेरे मन में यही संताप हो गया है।"

५१६. दूती ने कहा, "ऐ मृगनयनी, तू विचार करके देख; यौवन का सुख [इस प्रकार] जुए में (पति के विदेश से सुरक्षित लौटकर मिलने की अनिश्चित आशा में) न गँवा। यौवन-रत्न पाहुना (अतिथि) है; इसके चले जाने पर मूर्ख पछताते हैं।

५१७. "कटा हुआ तरुवर पुनः पलुह (प्रफुल्लित हो) जाता है, सोर-वर सूखा भी पुनः जल से भर जाता है और बिछुरा हुआ [प्राणी] पुनः भी मिल जाता है, ऐसी बात (उक्ति) सयाने (अनुभवी) लोगों ने रचकर कही है।

५१८. "[किंतु] सयाने (अनुभवी) लोग कहते हैं कि गया हुआ यौवन पुनः नहीं होता। संपत्ति और विपत्ति होती हैं और पुनः चली भी जाती हैं, ये सभी [हे छिताई,] सुनो, कर्म के भाव से (अनुसार) [होती हैं और जाती हैं]।

५१६. "[किंतु] जो इस संसार में यौवन-सुधा को पाकर उसका सुख उठाने में चूक जाते हैं (उसका भोग नहीं करते हैं), वे महा गँवार (मूर्ख) होते हैं।" [जब इस प्रकारकी बातें दूती के मुख से सुनीं,] छिताई ने दाँतों के नीचे जीभ दबा ली, और कहा, "शांत हो, तुम इस प्रकार की बातें क्यों कर रही हो?"

५२०. "सौंरसी के बिना (अतिरिक्त) जो अन्य पुरुष हैं, वे मेरे लिए पिता, पुत्र और बंधु के समान हैं।" दूती ने जब यह सुना, वह दुचित्ती हो गई (असमंजस में पड़ गयी), और उसने सोचा, "मेरी प्रतिज्ञा अब व्यर्थ गई।

५२१ "अब हम कटक में न जाएँगी, [क्योंकि वहाँ जाने पर] सुल्तान हमारे नाक-कान काट लेगा।" [सबेरा होने पर] जब शशि लुप्त हो गया और सूर्य आकाश में उदित हुआ, पच्चास सखियाँ छिताई के साथ हुईं।

५२२. वे सब, रत्नरंग कहता है, [शिव-] लिंग की यात्रा के लिए चलीं, और साथ में वे दोनों दूतियाँ भी हो रहीं। उन्होंने (दूतियों ने) बहुत सी बातें बना-बना कर कहीं, जिससे छिताई पुनः उनकी प्रतीति करे।

५२३. उन्होंने कहा, "हमने तो तेरा सत (सतीत्व) देखा, [और हम इस परिणाम पर पहुँचे कि] तूने ज्ञान का तत्व ग्रहण किया है। तेरे समान एकचित्त (एकनिष्ठ) नारी [अन्य] नहीं है, हमने तभी यह बात समझ ली।"

५२४. [उक्त शिवलिंग की यात्रा के लिए] सूत्रधार (राजगीर) ने अनुपम सुरंग बनाई थी। [उस सुरंग के मार्ग से] आते-जाते देरी नहीं लगती थी। [उस मार्ग से छिताई के साथ जाकर] दूतियों ने शिव का स्थान देखा, और उन्हें मन में सुख हुआ कि अब उनका दाँव कब (बैठ) गया।

५२५. दोनों नारियाँ (दूतियाँ) समस्त भेद लेने के अनंतर लौटकर [शाही] कटक में आ पहुँची और अति सुचित्त (प्रसन्नचित्त) होकर मन में बड़े उल्लास के साथ वे बादशाह के पास पहुँचीं।

५२६. दूतियाँ [बादशाह से] कहने लगीं, "हमने तुमसे जो बचन कहे थे उनके अनुसार [छिताई को] हमने बिगाड़ा (बहकाया) है। हम तुम्हें उसकी सुधि दे रही हैं, उसे समझ लो, और सेना सजाकर चलो।

५२७. "गढ़ से दक्षिण की दिशा में यदि तुम इसी क्षण (बिना बीच में समय गँवाए) सात कोस दूर एक उजाड़ स्थान तक चले जाओ, तो वहाँ तुम आदि देव (शिव) की सेवा करते हुए नारी (छिताई) को पकड़ लो।

५२८. "गढ़ से दक्षिण दिशा में एक उजाड़ स्थान है, वहाँ छिताई नारी जाया करती है। वह सुंदरी शिव-पूजा के लिए [वहाँ] प्रतिदिन जाती है। प्रभात में जाकर, ऐ बादशाह, [तुम उसे] पकड़ लो।"

५२९. [तदनंतर] आगे-आगे दोनों दूतियाँ हो रहीं, और वे सुल्तान को उसी स्थान पर ले गईं। जब [छिताई ने] जाना कि सबेरा हो गया, आकर उसने शिव-कुंड में स्नान किया।

५३०. जभी वह स्नान करके [शिव के] मंडप में गई, तुर्कों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। सुंदरी [छिताई] "शिव शिव शिव" उच्चारण कर रही थी। कोई स्त्री वहाँ [तुर्क-सेना को आया हुआ देख अपने सतीत्व की रक्षा के लिए] अपना सिर [खड्ग से] उतार कर भूमि में गिर पड़ी।

५३१. किसी ने अपने कंठ को कटारी से आहत कर डाला, और किसी के प्राण डर के मारे ही निकल गए। [भाग्य के] जो-कुछ लेख सिर (मस्तक) में लिखे होते हैं, वे मिटते नहीं। [नारियों ने तुर्क-सेना से युद्ध किया, किंतु वे मारी गईं और] चालीस नारियाँ वहाँ खेत रहीं।

५३२. [छिताई की दशा यह थी कि] वह नाथ (पति) के वियोग में पुरुषवेश धारण किए हुए थी। [यद्यपि] वह दुःख में पड़ी हुई थी, फिर भी सुदेश (सुंदर) दीख पड़ती थी। जब दूतियों ने पहचान करा कर उसको बताया, वह जीवित ही दस दासियों के साथ पकड़ ली गई।

५३३. सुल्तान ने जब छिताई बाला को देखा, वह भूपाल मन में

हर्षित हुआ। उसने छिताई को [घोड़े पर] अपने पीछे चढ़ा लिया, और उसके शरीर को अति सुख प्राप्त हुआ।

५३४. जब [छिताई का] हृदय (वक्ष) [सुल्तान की] पीठ से लगा, [सुल्तान की] चाबुक [उसके हाथ से] छूट गई, और [घोड़े की] बाग भी छूटकर अलग जा पड़ी। जब छिताई को बात (वास्तविकता) ज्ञात हुई, उसने कहा, "हे अलाउद्दीन, मेरे तात! सुनो।

५३५. "हे बादशाह, तुम अपने मन में पापदृष्टि न करो, क्योंकि मैं तुम्हारी बेटी हूँ।" [उसके] ऐसे वचन जब सुल्तान ने सुने, उसने सिर नीचा करके कान मूँद लिए।

५३६. [उसने अपने मन में कहा,] "जिस बात (छिताई की प्राप्ति) के लिए मैंने ठकुरई (सेना) [लाकर चढ़ाई] की, वह बात भी मेरी सिद्ध न हुई। साँप जैसे छछुंदरी को निगलता हो, वही उपखाना (उपाख्यान) मेरे संबंध में भी [लागू] हुआ।"

५३७. सुल्तान को अत्यधिक दुःख हुआ, मानो हाथ से रत्न चला गया हो। बादशाह जी में उदास हो गया, उसकी आशा पूरी नहीं हुई और वह निराश हो गया।

५३८. [उसने सोचा,] "यदि मैं छिताई नारी को [पाकर भी] छोड़ देता हूँ, तो मेरी निंदा होगी, और पृथ्वी में गाली मिलेगी।" [इसलिए] वह छिताई को अपने हर्मों में ले गया। वहाँ उसे देखने के लिए सुंदरियाँ आईं।

५३९. [छिताई] नाथ (पति) के वियोग में अत्यधिक दुःखित थी। तब भी वह वियोगिनी [बाला] सुंदर लगती थी। उसका रूप देख कर तुरकिनियाँ अपने हृदयों में मदन-बाण से अति आहत हुईं।

५४०. [उन] सबों के चित्त में [उस समय] यह व्यवहार (भाव) था कि उन्हें कर्त्तार ने पुरुष क्यों नहीं बनाया [कि वे छिताई के सौंदर्य का उपभोग करने के योग्य हो सकतीं] ? [उधर सुधि-बुधि] भूली हुई कुमारी (छिताई) जब [भूमि पर] पैरों से रेखाएँ बनाने लगती, उसके पैरों पर उसके आँसू गिर पड़ते।

५४१. वह उस महान् वियोग में परवश में पड़कर पछताती थी; न वह भोजन करती थी, और न कुछ उसे अच्छा लगता था। [अतः] जिन [के बतलाने] से यह सब यत्न किया गया था, निसुरत खाँ [देवगिरि की] उन दो दासियों को [बादशाह के पास] ले गया।

५४२. कविजन नारायणदास कहता है, बादशाह ने [उन्हें] छिताई के पास भेजा। [वे] विनती करके उसे (छिताई को) समझातीं, और बोली वे दक्षिणी भाषा की बोलतीं।

५४३. "हे कुमारी," वे कहतीं, "तू हमारी स्वामिनी है: हम तो राजा रामदेव की ही दासियाँ हैं। यह बात तो [पूर्वार्जित] कर्मों के वश (कारण) पड़ी (हो गई) है, [इसलिए] हे छिताई नारी, अब दुःख [करना] छोड़ दे।

५४४. "हे नारी (छिताई), तैंने इतनों से [उनके] शरीर के गुण हर लिए थे, इसलिए विधाता ने तुझे वियोग देकर न्याय ही किया है। तैंने सिर में वेणियों की जो माला गूँथी है, उससे लज्जित होकर भुजंग पाताल में चले गए।

५४५. "वदन की ज्योति तैंने शशधर (चंद्रमा) से हर ली, तो भला, ऐ सुंदरी, तू किस प्रकार सुख पा सकती है? तैंने, हे नारी हिरनों के नेत्र हर लिए, [जिसके कारण] वे मृग आज भी उजाड़ स्थानों का सेवन करते हैं।

५४६. "जिन गज-कुंभों के तेरे कुच हुए, वे गज देश-देशांतर को [भटकते हुए] चले गए। तू ने केशरी (सिंह) का मध्यस्थल (कटिप्रदेश) हर लिया, इसी कारण सिंहों ने अपने लिए गृह (रहने का स्थान) कंदराओं में निकाला (बनाया)।

५४७. "तेरी दशन-ज्योति के लिए दाड़िम हुए (दाड़िमों से उनका सौंदर्य लेकर निर्मित हुई), इस कारण उन दाड़िमों के उदर फूट (फट) गए। तैंने कमलों से अपने अंग (शरीर) के लिए सुगंध हर ली, इस लिए वे सजल [-नेत्र होकर] जल में छिप रहे।

५४८. "जो तूने हंसों [से उन] की चाल हर ली, वे मराल मलिन

[-मन] होकर मानसरोवर को चले गए। तू शांत हो, और हे मानिनी तू मान जा। तू अपना देश (देवगिरि) छोड़ [और सुल्तान के साथ रह], अन्यथा अपने प्राण छोड़ (छोड़ने के लिए प्रस्तुत हो)।

५४६. छिताई क्रोध करके रुष्ट हुई, और उसने कहा। "सखियो, तुम इस प्रकार ला ला कर दोष हमारे मत्थे मढ़ रही हो।

५५०. "[मुझे यहाँ लाने का] यह सारा उपाय तुम्हीं ने किया और तुम्हीं मुझे दूसरों के वित्त (धन, गुण) हरने का दोष लगा रही हो।" दासियों को [छिताई ने] इस प्रकार समझा दिया। यह वार्ता इतनी बड़ी है कि इसको बढ़ाकर (विस्तारपूर्वक) कौन कहे ?

५५१. [जिस प्रकार] दक्षिण में अपनी आन फेर कर दिल्लीपति घर (दिल्ली) पहुँचा था और जिस प्रकार बादशाह ने छिताई का अपहरण किया था, वह [सारी बात] देश-देशांतर में प्रकट (प्रसिद्ध) हो गई।

५५२. सुल्तान ने [उसके विषय में] पाप-दृष्टि छोड़ दी; और उसको राघव चेतन के हाथ सौंप दिया। [इतना ही नहीं,] प्रतिदिन के लिए बारह सहस टके का न्यौंध (बंधान) स्वतः सुल्तान ने बाँध दिया।

५५३. और दक्षिण के गुणों को देखने की आशा से [बादशाह ने छिताई को] पचास पातुरें (नर्तकियां) भी सौंप दीं। उन्हें वह संगीत की साधना कराती और कर्म का दिया हुआ पति-वियोग का दुःख सहन करती रहती।

५५४. जो पन्नी, या भाँट, या दरवेश (साधु) [उसे ऐसे मिलते] जिन्होंने घूम-फिर कर देश-विदेश देखा हो, उन्हें वह प्रतिदिन प्रवाह (भोजनादि आवश्यक सामग्री) देती, जिससे कि उसका पति सौंरसी उसका पता पा जावे।

५५५. इस प्रकार छिताई बाला रहती थी। [उधर] भूपाल सौंरसी ने [उसकी] सुधि पाई। [उसे ज्ञात हुआ कि] अलाउद्दीन उसे जीवित ले गया है। [यह] सुनते ही सौंरसी योगी हो गया।

५५६. चंद्रगिरि में चंद्रनाथ [योगी] निवास करता था, उससे [सौंरसी

ने] योग का अभ्यास किया। उस [योगी की सहायता] से सौंरसी ने [आत्म-] दर्शन किया। उसके सिर पर सिद्ध (चंद्रनाथ) ने अपना हाथ रक्खा।

५५७. योगीन्द्र [चंद्रनाथ] ने कहा, "तुम सिद्ध हो जाओ, और हे नरेन्द्र, तुम्हारा बचन सुफल स्फुरित हो। यदि गुरु का बचन मुझे स्फुरित हो, तो तुम्हारे मन की इच्छा विधि पूरी करे।"

५५८. ऐसा वचन (वर) जब सिद्ध [चंद्रनाथ] ने दिया, तब [सौंरसी] राज्य छोड़कर योगी हो गया। उसने गले में स्निग्ध, श्याम, और शुभ सिंगी डाल ली, जिसे वह सुंदर और सुघर [सौंरसी] बहुत बजाया करता था।

५५९. उसके बहुत सुढार (सुंदर) कानों में मुद्रा थी, जो चंद्रकान्त मणि के आकार में (समान) चमकती थी। [उसने] सिर पर जटा [जूट] बाँध कर जब [हाथ में] खप्पर धारण किया, तो [ऐसा प्रतीत हुआ] मानो गोपीचंद अवतरित हुआ हो।

५६०. [उसने] वज्र (हीरे) की कठिन कौपीन पहनी, और उसके कंधे पर दक्षिणी वीणा शोभा देने लगी। [उसके] उज्ज्वल और कोमल अंग (शरीर) में विभूति [शोभित हुई] और [उसने] सूत करके (सूत्र की भाँति खींच करके) शिर पर जटाजूट बाँध लिया।

५६१. [उसने पैरों में] सागर की सीप से जटित पाँवरी [डाल ली]। अरुण आदित्य के समान उसकी [युवावस्था की] खरी सघन मौजें (उमंगें) झलक रहीं थीं। नारी के वियोग में उसे नगर नहीं सुहाता (अच्छा लगता) था, [इसलिए] वह बागों-बावलियों में जाकर बैठता था।

५६२. वह [सुधि-बुधि] भूला-सा [जैसे] निष्प्रयोजन [इधर-उधर] देखता था, और आकुल-व्याकुल होने के कारण वह अंग (शरीर) की लज्जा गँवा बैठा था। वह अंग (शरीर) पर धोए वस्त्र नहीं पहिनता था, और मलिन मनुष्यों की संगति में बैठता था।

५६३. भोजन का स्वाद उसकी जिह्वा नहीं पाती थी, इस प्रकार [वह]

परम वियोगी रहा करता था। शृङ्गार (प्रेम) की चर्चा कानों से सुनना उसको नहीं भाता था [और] यह [उस] विरही का नित्य ही नवीन रहने वाला व्यवहार (जीवन-व्यापार) था।

५६४. चातक की बोली [उसके] कानों को अच्छी नहीं लगती थी, [उसे वह ऐसी लगती थी मानो] अंग शरीर में विषाक्त बाण लग रहे हों। सहकार (आम) के वृक्ष में कोकिल के [मधुर] बोल जब व्याप्त होते थे, [तब प्रेयसी के मधुर बोलों का स्मरण हो आने के कारण] उसका सतत ध्यान उसे होने लगता था।

५६५. योगी [सौंरसी] देश-देशान्तर में बहने (भटकने) लगा, उसका उचटा हुआ मन कहीं भी नहीं रहता (लगता) था। उस वियोगाधिक्य के कारण [उसका] जी बहुत उदास रहता था, और विषयों की वासना उसे विष के समान लगती थी।

५६६. उसने घूमते-फिरते वनस्थली की प्रदक्षिणा दे डाली किंतु छिताई की सुधि उसे कहीं नहीं मिल रही थी। [किंतु जब] वह जटाशंकर की यात्रा को गया, तो वहाँ पर [उसने] एक योगी से वार्ता सुनी।

५६७. [उस योगी ने] सुंदरी [छिताई] का सारा भेद बताया। उस वार्ता को सुनते ही [सौंरसी] तत्क्षण समुहाया (निकल पड़ा)। उस योगी से उसने वाट-घाट सब पूछ लिया। [छिताई से मिलने के लिए] उसका मन उड़ने के लिए करने लगा, किंतु पंखे (डैने) थे नहीं।

५६८. वह दीर्घ (लंबी) मंजिलें तै करता जाकर [आगरे के निकट] चंदवारि नगर पहुँचा। [उस नगर से] लगी हुई कालिंदी (यमुना) नदी बहती थी, [उसके तट पर] एक क्षण (कुछ देर तक) सौंरसी विरमा रहा।

५६९. जहाँ पर पानी [लेने के लिए] पनघट था और नगर [भर] का प्रवेश (आगमन) होता था, वहाँ पर वियोगी [सौंरसी] ने उतारा किया। [जब] योगीन्द्र [सौंरसी] ने चारों ओर दृष्टि डाली, [तो ऐसा प्रतीत हुआ उसने] काम का फंदा डाल दिया हो।

५७०. वहाँ पर जितने पुरुष और नारी थे, उन सब को योगी [सौंरसी] काम-बाण मार चला। वह सिर पर जल का कुंभ और [हाथ में]

खप्पर धारण किए हुए था और अपने रूप-रंग से समस्त गुणों का विस्तार कर रहा था।

५७१. वह प्रवीण रसिक [इस प्रकार] चला जा रहा था, मानो [कामिनी-गण रूपी] मीनों [को फँसाने] के लिए बनसी का त्रिविध (तीन बटाव का) का फंदा हो। कोई [स्त्री] शिर पर कलश रक्खे हुए थीं, और कोई दोनों हाथ अपने हृदय पर रख रही थी।

५७२. कोई अपने हाथों से अपने उर (वक्ष) को [मानो] माप रही थी, और बरबस उसका चित्त योगी [सौंरसी] की ओर चला जाता था। कोई जम्हाती और अंग तोड़ती (अंगड़ाई लेती) थी, [इस प्रकार] उसके शरीर में अगम्य अनंग व्याप्त हो रहा था।

५७३. कोई कामिनी जैसे कर (हाथ) तोड़ (मरोड़) रही थी, क्योंकि काम ने कुपित होकर [उसके] हृदय में [बाण] मारा था। [सौंरसी] एक तो नववयस्क था, नागर था, और निष्कलंक था, [अतः वह ऐसा लगता था] मानो महा मनोहर मृगाङ्क (चंद्रमा) उदित हुआ हो।

५७४. [दूसरे,] उसके राजोचित अंगों में राजचिह्न थे, [इसलिए वह ऐसा लगता था] मानो अनंग (कामदेव) ने अवतार लिया हो। [स्त्रियाँ सोचने लगतीं] 'किस प्रकार इसे वियोग हुआ, और [इस] भरे यौवन में ही इसने क्यों योग साधा ?'

५७५. उस पुर में जो पतिव्रता नारियाँ थी, वे अपने जी में विचार करके यह कहतीं, "यदि विधाता यह कृपा करे, तो ऐसा पुत्र हमारे घर में भी उत्पन्न हो।"

५७६. व्यभिचारिणियाँ चित्त लगा कर [उसे इस भावना से] देखतीं, "ऐसे छैल (सुंदर युवक) से विधि हमारा मिलन करा दे!" वे सभी मन में यह विचार करती हुई उसकी ओर देखतीं कि यह [व्यक्ति] मनुष्य की उनहार (अनुकृति) का नहीं है।

५७७. [वे अनुमान करतीं,] "पूर्वार्जित कर्मों के संयोग से [मदन का

रति से] वियोग हो गया, उसी दुःख के कारण मदन (कामदेव) ने योगी का शरीर धारण किया है। यह [छैल] अत्यंत गुणी, चतुर और प्रौढ़ बुद्धि का है; [ऐसा छैल अच्छा होता है] ; जो [छैल] चिकनिया [पर] मूर्ख होता है, वह अच्छा नहीं लगता है।

५७८. "यदि ऐसे [छैल] से संयोग हो जावे, तो जन्म भर जीने का सुखभोग [एक साथ प्राप्त] हो जावे। जो छैल अति क्षीण (इकहरे) शरीर के होते हैं, चतुर [स्त्रियाँ] उन्हीं से स्नेह करती हैं।"

५७९. वे स्त्रियाँ नेत्रों को घुमाती हुई कान खुजलाती हैं, उसास लेती हुई बहुत जँभाती हैं, और [सौंरसी को] देख कर नखों से अपने बालों को ब्योरती (सुलझाती) हैं जिन्हें [सौंरसी के दर्शन से] काम की ज्वाला व्याप्त होती है।

५८०. वे अपनी क्षुद्रघंटिका (करधन) खोल कर देखती हैं, अपने हाथों की उँगलियाँ फोड़ती हुई अपने शरीर ऐंठतीं (अँगड़ाई लेती) हैं, बहुत लज्जित होकर अपने घूँघट काढ़ लेती हैं, और [अपने] नूपुरों का शब्द सुनाती हुई चलती हैं।

५८१. वे मुड़कर मुस्कराती हुई जब चलती हैं, तो [दर्शकों का] मन हर लेती हैं, वे [अपने] नेत्रों के पाश [का प्रयोग] विषयीजनों पर करती हैं, किंतु सुंदरी [छिताई] के अधर-सधर (नीचे और ऊपर के ओष्ठों) का पान किए हुए होने के कारण, और वनिताएँ [सौंरसी] के हृदय को अच्छी नहीं लगती हैं।

५८२. वह नारी (छिताई) का स्मरण करके बहुत उदास हुआ। उस दिन उसने उस पुर में उपवास किया। वियोग के बाण उसके हृदय में अत्यंत व्याप्त हुए, यद्यपि सुजान सौंरसी बहुत शूर था।

५८३. दिल्ली नगर के पास ही विंध्यवन [नामक एक उद्यान] था, वहीं सौंरसी ने गमन किया। यदि उस वन का वर्णन करूँ तो कथा बढ़ जावे। उसके सावज (पशु) पक्षी कहे (बताए) नहीं जा सकते।

५८४. वह [वन] सघन था, और अशेष सुंदर फलों से सुशोभित था। वहाँ (उसी वन में) वियोगी [सौंरसी] ने प्रवेश किया। वन में योगीन्द्र (सौंरसी) ने विश्राम किया और रात्रि में पूर्ण चंद्रमा उदित हुआ।

५८५. चंद्रमा की किरणों में उसकी काया प्रज्वलित होने लगी, इस लिए उसने सुंदरी (छिताई) का स्मरण करके वीणा उठाई। एक तो [सौंरसी] विषय (विषय-सेवी) था ही, फिर, वह चतुर तथा सुजान भी था, इस लिए भुवन में उसके समान और कोई नहीं था।

५८६. योगीन्द्र (सौंरसी) ने इस प्रकार [वीणा का] नाद किया, कि चंद्रमा का चित्त मोहित हो गया और वह चल न सका। उसकी वंशी (बीणा ?) के शब्दों का स्वर सुधा के समान [इस प्रकार मधुर] था कि उसको सुन कर मृगों ने कान खड़े कर लिए।

५८७. फणीन्द्र (सर्प) [अपना] विष छोड़ कर विषय-लिप्त हो गए और वे सौंरसी के साथ खेलने-फिरने लगे। और जब वियोगी [सौंरसी] ने [उस वीणा से] उत्कट विरह [का राग] बजाया तो, उसको सुनते ही भुजंगों ने अपना वेष (केंचुल) छोड़ दिया।

५८८. मृग-शावक सिंहनियों का दुग्ध-पान करने लगे, उनके शरीर नाद-लुब्ध हो कर [ऐसे] विकल हो रहे थे, और सिंह-शावक मृगियों का दुग्ध-पान करने लगे। इस प्रकार [सारे] वन में विपरीत वेष (व्यवहार) दिखाई पड़ रहा था।

५८९. जननी अपने पुत्र को नहीं पहचान पाती थी, और न बालक जननी को जान पाता था। समस्त पशु-परिवार को उसने वश में कर लिया था और इस प्रकार नाद ने चतुरों का भी चित्त हर लिया था।

५९०. नाद-शब्द के सुख की आशा से विद्ध वे अमित होकर [अन्य समस्त] आशा-पिपासा भूल गए। योगी ने एक बात [और] अपूर्व की—उसने रीझ (प्रसन्न हो) कर पशुओं को त्याग (उपहार) दिए।

५९१. मृगों के कंठों में [उसने] तत्क्षण उपयुक्त और अमूल्य हार प्रदान किए; हीरा और लाल जटित स्वर्ण—मालाएँ उसने रोझों (नील-गायों) के गले में पहनाईं।

५६२. [पशुओं के] कंठों में कंठ श्री की संकरी, [बाहों में] अमूल्य जड़ाऊ नवग्रही, [कानों में] कुंडल, [वक्ष पर] चौकी, और [उनकी] कटि में मेखला पहनाए, जिससे उनकी कला पूर्ण हो गई।

५६३. पशुओं को अशेष उपहार प्रदान करके उसने दिल्ली नगर में प्रवेश किया। जभी बादशाह ने सुंदरी (छिताई) को हरा था, तभी छिताई ने प्रतिज्ञा की थी—

५६४. "यदि [कोई] मेरी बीणा बजा देगा, तो मैं उसकी गृहीता हो जाऊँगी।" [सौंरसी] हाथ में खप्पर लेकर एकशब्दी हुआ (उसने एक मात्र 'छिताई' की रट लगाना प्रारंभ किया) और [छिताई को] खोजता वह [गोपाल] नायक के घर गया।

५६५. वहाँ पर योगी [सौंरसी] ने [छिताई के] कुछ चिह्न प्राप्त किए, इसलिए [छिताई के मिलने की कुछ संभावना] विचार कर वह वहाँ दो घड़ी रहा। उस निपुण नायक का नाम गोपाल था। समस्त भुवनों में वह [नाट्यशास्त्र के सुप्रसिद्ध प्राचीन आचार्य] भूपाल भरत [के समान] था।

५६६. [दैवयोग से उस नायक से सौंरसी के] परिचय का उपाय हो गया। उस ने [छिताई की] वीणा मँगा भेजी थी, वह अनेक उपाय करके हार गया था, किंतु उससे छिताई की वीणा ठटी तक नहीं थी।

५६७. [इसलिए] चित्त में हैरान होकर [वीणा के] तूँबे को तोड़ कर, छिताई [की वीणा] को खोल-खालकर और उतार कर उसने रख दिया था। [तब तक] घूमता-फिरता योगी सौंरसी भी वहाँ [पहुँच] गया था, जो पूर्ण चंद्रमा के समान रूपवान था।

५६८. योगी [सौंरसी] का वेष और उसकी भाषा दक्षिणी थे, इसलिए निपुण नायक ने जाना (अनुमान किया) कि यह गुणी होगा। सब नर्तक मिलकर उस (सौंरसी) से पूछने लगे "इस दिशा में तुम्हारा आगमन क्यों हुआ ?

५६९. "हे योगी, नाद-शब्द, वाद्य-व्यवहार, तथा उनका विचार क्या कुछ जानते हो ?" तब [सौंरसी] मुस्करा करके आदेश (नमस्कार)

करता हुआ बोला, 'मैं घाघरी (खोखला गला) बजाना [मात्र] जानता हूँ।"

६००. [तदनंतर वहाँ] जो छिताई की वीणा थी, उसको दक्षिणी योगी (सौंरसी) ने लेकर देखा; उसको छूते ही [सौंरसी के] शरीर को संतोष हुआ, [उसे ऐसा प्रतीत हुआ] मानो ग्रीष्म को तृषा [की अवस्था] में जल मिल गया हो।

६०१. सौंरसी को हृदय में इस प्रकार सुख हुआ जैसे स्त्री के आलिंगन देने पर होता। मुद्रिका पाने पर सीता को जैसा सुख हुआ था, उसी प्रकार सौंरसी को भी जी में सुख हुआ।

६०२. योगी (सौंरसी) ने [उस वीणा को] इस प्रकार ठाट दिया, मानो वह [पहले से ही] निबंध (बँधी या ठटी) रही हो, उसको सौंरसी ने सार सँवार करके और भी सुबंध (सुव्यवस्थित) कर दिया। [उसके अनंतर जब उसने उसको बाएँ कंधे पर रक्खा, [उसे ऐसा प्रतीत हुआ] मानो उसे [उसकी] स्त्री छिताई मिल गई हो।

६०३. [अब] उसने इस प्रकार का सुधर (धारण करने योग्य) और सरस स्वर लिया कि नायक मूर्छित होकर धरती पर पड़ गया।

६०४. [छिताई की] जो दासी प्रतिदिन [गोपाल नायक के घर यह देखने] जाती थी कि उसने कदाचित् वीणा ठाटी हो, और दिनों के धोखे से [उस दिन भी] गई (यह समझ कर गई कि और दिनों की भाँति उस दिन भी बिना ठाटी पड़ी होगी) किंतु [वहाँ पहुँचते ही] वीणा की तान के गुणों से वह हृदय में आहत हुई।

६०५. [उसने] योगी सौंरसी की मूर्ति (आकृति) देखी, और [उसके] वर्ण का विचार कर के वह वहाँ पहुँची जहाँ नारी छिताई थी। [उसने] योगी की सब बातें बताईं, जिन्हें सुनकर छिताई के गात्र (शरीर) में आनंद हुआ।

६०६. [उस योगी के] तन-मन को चित्र-विचित्र विचार कर [उसने] [योगी की] मुख-मुद्रा और उनहार (आकृति) बताई। [फिर] जिस प्रकार उस ज्ञानी (योगी) ने बीणा बजाई थी, वह सब सहिदान (चिह्न) दासी ने बताए।

६०७. [छिताई] नेत्रों में आँसू भर कर उसासें लेने लगी। उसके मन में आनंद [हुआ] और आशा उत्पन्न हुई। जिस प्रकार श्रावण और भाद्रपद में बादल बरसता है, उसी प्रकार बाला (छिताई) अश्रुपात करने लगी।

६०८. सुंदरी [छिताई] के नेत्र [अश्रुपात करते रहने के कारण] सेंदुर के समान लाल हो गए थे, विदीर्ण हृदय [होने के कारण] वह वचन नहीं बोल [पा] रही थी। अंचल लेकर सखी उसका मुख पोंछ रही थी [और कह रही थी] "शांत हो, [नहीं तो] तेरे नेत्र दूखने लगेंगे।

६०९. "ऐ मुग्धे ! उठ। जल से [तेरा] मुख धो दूँ। तेरे शरीर को कितना दुःख हुआ है ? सीता और राम को भी वियोग हुआ था, [किंतु] दुःख सहने के अनंतर पुनः उनका संयोग हुआ था।

६१०. "नल और दमयंती को भी तो वियोग हुआ था। तू मनमें कितना (क्यों इतना) शोक कर रही है ? [वियोग की] पिछली कथाएँ इतनी हैं कि वे गिनी नहीं जा सकती हैं। यक्ष और यक्षिणी को भी [कालिदास के 'मेघदूत' की कथा में] शाप [-वश वियोग] हुआ था।

६११. "अब तू अपने मन में विचार कर, और हे छिताई नारी, शोक छोड़।" [किंतु] छिताई उसासें लेती हुई कहने लगी, "मुझे जीवन की आशा नहीं है।

६१२. "मैंने, हे सखी, उसी [जीवन] के लिए रुदन किया है; नेत्रों [के जल] से सींच-सींच कर मैंने [तप्त] हृदय को बुझाया है। निश्चय हो चित की चिंता और प्रियतम के ध्यान के कारण विरहाग्नि आकाश तक बढ़ी।

६१३. "मेरे अंगों में अनंग (काम) की दावा भी लगी, केवल हृदय के बल ने मुझे [उसे दावाग्नि से] उबारा। मैंने उसी (इसी) लिए नेत्रों से आँसू गिराए कि [हृदय में स्थित] सौंरसी का शरीर [उस विरहाग्नि से] जल न जाए।

६१४. "ऐ चोर कामदेव ! तू तब कहाँ गया हुआ था, जब नाथ (पतिदेव) से [मेरा] संयोग हुआ था ? तब मैं तेरा आधिक्य (अधिक बल)

जानती, किंतु तू तो अब दिखाई दे रहा है [जब मैं उनसे वियुक्त होकर असहाय हो रही हूँ] ।

६१५. "नलिनी का पति (सूर्य) [हिमऋतु] में जब निर्बल होता है, तब उस पर अवश्य ही तुषार के रूप में आपदा पड़ती है । किंतु तब अति सुंदर ऋतु हो जाती है, और शीत को कोई नहीं गिनता, जब सूर्य अपनी [उष्णता का] विष [शीत पर] प्रकट करता है ।

६१६. "यदि सुदिन हो, तो भले ही कोई निपट अनाथ हो, उस पर कौन हाथ उठा सकता है ?" [इस प्रकार] कलपने के अनंतर उसे कुछ आशा हुई, [इसलिए] तब उसने दासी को [उस योगी को] देखने के लिए भेजा ।

६१७. आशा-लुब्ध होकर [छिताई की दासी ने गोपाल नायक के यहाँ जाकर] दीनभाव से कहा, "जिस योगी ने यह वीणा ठाटी है, वह भला कौन है और कहाँ का [निवासी] है ? अब घर-घर [जा] करके उसका शोध करूँगी ।"

६१८. वीणा ठाट कर के और नायक को उसे सुनाकर तब [तक] योगी (सौंरसी) [राघव] चेतन के यहाँ चला गया था । उस समय [राघव] चेतन भी रावल (राजभवन) के लिए प्रस्थान कर रहा था कि ड्योढ़ी से निकलते ही उसे सौंरसी मिला ।

६१९. "योगी के वेश में यह भिक्षुक कौन है ?" [राघव] चेतन [इस प्रकार सोचता हुआ] उसके मुख की ओर देखता ही रह गया । और जब योगी ने वचन-विस्तार किया (बोलना प्रारंभ किया), उसके वचनों को सुनते ही [राघव] चेतन का चित्त हर गया ।

६२०. योगीन्द्र [सौंरसी] ने [यह] मधुर वचन कहा, "मुझे शाहंशाह (अलाउद्दीन) से मिलाओ ।" तब [राघव] चेतन उसे साथ लेकर चला; [मार्ग में] [उससे उसके जीवन की] पिछली बातें वह प्रकट रूप में पूछता जा रहा था ।

६२१. उसको बाहर रखकर वह दरबार में गया । सुल्तान से (को)

उसने सार (खबर) जनाई, [और कहा,] "एक अपूर्व योगी [आया] है, [आप की] आज्ञा पाऊँ तो उसे ले आऊँ।"

६२२. [राघव] चेतन ने कहा, "हे सुल्तान सुनो। वह सिद्ध योगी बहुत गुणी है, [वह] गले में अच्छा है, सुंदर और सुजान है। वह राज-पौरी पर, हे बादशाह, बैठा [हुआ है], जो बातें बोलता है वे अमृत के रस के समान [मधुर] होती हैं, और चितवन डाल करके वह चित्त को हर लेता है। यदि आप फरमाएँ, तो वह आकर आपके दर्शन करे।

६२३. बादशाह ने तत्क्षण आदेश दिया, और सौंरसी योगी वेश में [उसके सामने] गया (उपस्थित हुआ)।

६२४. सुल्तान की [राज] सभी जुटी हुई थी। सभी [सभासद्] योगी की प्रभा से मुग्ध हो गए। [उसको] देखकर चित्त में सुल्तान ने कहा, इसके समान कोई मानव या राजा नहीं है।"

६२५. दिल्लीपति ने [नमस्कार करते हुए] पूछा, "आदेश। [हे योगी] तुम्हारा देश कौन-सा है ?"

६२६. [योगी सौंरसी ने कहा,] "[जिस देश में] जल में मोती, स्थल में माणिक्य, अरण्यों और वनों में हाथी होते हैं और घर-घर पद्मिनी नारी होती है, हे तात, मेरा देश वह सिंहल है।"

६२७. योगी ने कहा, "पृथ्वीपति, सुनो, मेरा जन्म सिंहलद्वीप में हुआ है।

६२८. "मुझे जब जी (हृदय) में वियोग [का दुःख] हुआ, मैंने काया को कष्टित करके [इस] शरीर से योग धारण किया।" [यह कहते हुए] उसने शिर से खप्पर उतार लिया, और उसे पकड़ कर सभा में रख दिया।

६२९. तत्क्षण उसके जटाजूट भी खुल गए, [और उसने कहा,] "[इस] नगर के निकट मुझे लूट लिया गया है। इसी पुर में मेरा सर्वस्व चला गया है।" [उसकी] यह [बात] सुनकर समस्त सभा को आश्चर्य हुआ।

६३०. तत्क्षण ही नरेश (बादशाह) ने उससे पूछा, "बता, तू योगी

के वेश में कौन है ? तू कपट वेश में मुझसे फरीयाद कर रहा है, तू सच-सच अपनी बुनियाद (वास्तविकता) बता ।"

६३१. योगी ने कहा, "हे नरनाथ, सुनो। जिसने [मुझे] लूटा है, वह वन में रहता है। हे सुल्तान, यदि आप साथ चलें, तो चोर का ज्ञान प्राप्त करें ।"

६३२. तब [यह बात] सुनकर बादशाह [घोड़े पर] सवार हुआ और योगी (सौंरसी) का व्यवहार (चरित्र) देखने के लिए वह सौंरसी के साथ [वहां पर] गया जहाँ पांच कोस पर उद्यान था ।

६३३. योगी ने [वहां] सरस नाद-ध्वनि की, [परिणाम यह हुआ कि] उसने सब की सुधि-बुधि हर ली, और नाद के रंग में भीन (भीग) कर कुरंग अपना समस्त भक्ष्य छोड़ कर उसके साथ फिरने लगे ।

६३४. रोझ (नील गाय) रीछ [आदि] सभी पशु अनुपम प्रतीत होने लगे और उन सभी को देख कर भूपति (बादशाह) मोहित होने लगा। मोर, चकोर, कोकिला और कीर [सभी] के शरीर नाद-शब्द के [द्वारा] विकल हो गए ।

६३५. उस कौतुक को [देखने के] लिए भानु (सूर्य) ने अपना रथ खींच (रोक) लिया, और बंशी (वीणा) को सुनते ही सुल्तान [भी] वश में हो गया। बादशाह ने योगी की [वादन की] युक्ति देखी, [तो उसने समझ लिया कि] भिक्षुक के वेश में यह कोई गुणी है ।

६३६. बादशाह जी (मन) में उल्लसित होकर कहने लगा, "[मेरी इच्छा है कि] तुम्हारा यह चरित्र (कौतुक) मेरा रनिवास [भी] देखे। [यदि तुमने] राग-रंग के रसाधिक्य से [उसको] विद्ध कर दिया, तो तुम जो माँगोगे वह त्याग (उपहार) मैं दूँगा ।"

६३७. [बादशाह] धर्म की साक्षी देकर यह बात कहने लगा, "तुम्हारा यह गुण मेरा हर्म्य भी देखे तो" बार-बार सुल्तान ने कहा, "तुम जो माँगोगे, मैं वह दान दूँगा ।"

६३८. सौंरसी ने कहा, [जब] मैंने देश, सुख, संपत्ति और गृह छोड़ दिया है, तो मुझे त्याग (उपहार) से क्या प्रेम ? [किंतु यदि] तुम अटल वाचा (प्रतिज्ञा) करते हो, तो [पहले] इन पशुओं को शीघ्र [दिल्ली] नगर में प्रविष्ट करो ।

६३९. "ऐ बादशाह, तुम बातें विचार करके करो, तो आप (मैं) दिल्ली में जाऊँ । [वहाँ] घर-घर यह बजावा पढ़ दिया जाए (डौंड़ी पीट दी जाए) कि कोई अधिक आहट न करे ।"

६४०. बादशाह ने कहा, "यादव जाति के राजा रामदेव [हैं] । मैं ने जाकर उसका [देवगिरि] गढ़ घेर लिया और छल करके मैंने उसकी कन्या पकड़ ली । [उसी यादव-कन्या ने मुझसे यह] वचन माँगा है, जिसे मैं उसे दे चुका हूँ ।

६४१. "अब तो मैं उसके छल से छला जा चुका हूँ । [यदि उसके वचन को पूरा नहीं करता, तो वह प्राण त्याग कर देती है और मैं] वनिता-वध के पाप में पड़ता हूँ । यह गुण, हे भाई, उसको दिखाओ, जिससे कि किसी भी प्रकार से [उसके] शरीर का दुःख जावे ।"

६४२. इस बात को सुनकर सौंरसी को दुःख हुआ, [क्योंकि] सुंदरी (छिताई) का शील और उसकी साध (श्रद्धा) उसके जी (मन) में बसी हुई थी । बात [पुनः] कह कर और उसका बंधान (प्रतिबंध) दृढ़ कराकर सुल्तान को लिए हुए वह नगर में गया ।

६४३. [दरबार में पहुँचने पर] बादशाह ने योगी के गुण बताए; उन्हें सुन कर समस्त सभा को आनंद हुआ । जब संध्या हुई और गजर (प्रहर-सूचक घंटा) बजा, रावों ने कार्य और [राजकीय] कागज-पत्र त्याग (बंद कर) दिए ।

६४४. न बाजे बज रहे थे, न ढोल ढमक रहे थे, [कोई] बोल नहीं सकते थे, [सब] अचल (जड़) तुल्य हो गए थे; नगर ने नृपति की आज्ञा इस प्रकार मानी कि हाथी-घोड़े [भी] शब्द नहीं बोल (कर) रहे थे ।

६४५. [बादशाह] वर्णन करते हुए योगी [सौंरसी] की ख्याति कहने लगा। [उसने कहा,] "वन में बस कर [इस योगी ने] रात्रि में [ऐसी] वीणा बजाई कि सभी [प्रकार के] पशु-परिवार को [इसने] वश में कर लिया, इस प्रकार इस चतुर ने [वीणा के] नाद से [उनका] चित्त हर लिया।

६४६. [तदनंतर] श्रेष्ठ विमान पर [बादशाह] उसको लिवा ले चला, और वह चतुर योगी [सौंरसी] वंशी (वीणा) को लेकर [उसे] बजाता हुआ चला। [बादशाह का] अंग (शरीर) अपना अक्खड़पन (?) छोड़कर तल्लीन हो गया और बादशाह भी सौंरसी के साथ चला।

६४७. जभी [सौंरसी] बाजार में जा निकला, नगर के लोग कौतुक-दर्शक हुए, और जब नगर में [हुआ] उसका व्यवहार (चरित्र) सुना तो संसार [उसके] कौतुक को [देखने के लिए] उमड़ पड़ा।

६४८. उठकर वहाँ अनुपम भामिनियाँ चल पड़ीं। उनके रूप का बखान कौन करे ? यदि कवि वर्णन करता हुआ उनके रूप का कथन करे, तो कथा कहते हुए समाप्ति पर बिलकुल न आवे।

६४९. कोई चकित [-सी] किसी अन्य को बाँह टेकाए हुए हैं, वे स्थूल स्तनी चलते-चलते थकी हुई हैं; कोई केवल एक ही नेत्र में अंजन लगाए हुए हैं, और कोई सीधे वाक्य नहीं कह [पा] रही हैं।

६५०. जिनके केश [तैलादि लगकर] चिकने [हो चुके] हैं, और जो [उन्हें सँवारने के लिए] हाथ में कंघी लिए हुए हैं, कौतुक देखने के लिईं वे सब भी गईं। कोई-कोई हाथ में चंदन का आरसी (आईना) लिए हुए चित्रशाला में [सौंरसी का कौतुक] देखने के लिए धँस पड़ी हैं।

६५१. कोई [स्नान के लिए जाते हुए] बिना स्नान किए हुए ही उठ चलीं हैं, [वे] हाथ में सांकली (गले की जंजीर) उतार करके लिए हुए हैं, कोई कान में एक ही तरिवन (ताटंक) पहने हुए हैं। [सौंरसी का] कौतुक देखने [की आतुरता] में वे अबोध स्त्रियाँ [इस प्रकार] भूली हुई हैं।

६५२. [जितनी ही अधिक] तरुणियाँ [अपनी] सुधि-बुधि भूली हुई उस तमाशे में खड़ी हैं, [उन्हें देखकर] उतना ही और भी सौंरसी को घुटन होती है। छत्रों (छातों) को लगाए हुए लोग [सौंरसी के कौतुक को] देख रहे हैं; उनमें जो सज्ञान हैं, उन्हें [वीणा-वादन सुनकर] वियोग [व्याप्त] हो रहा है।

६५३. [राज-] बनिताएँ भली-भाँति सुसज्जित हुईं, और बादशाह ने [अपने] हर्म्य को बुला कर सभा की। [बादशाह] सिर पर छत्र तान कर बैठा, और [उसने] छिताई को लाकर [वहाँ] खड़ा किया।

६५४. [राज-] बनिताएँ चित्र-विचित्र और अनुपम थीं। यदि उनके रूप का वर्णन करूँ तो कथा बढ़ जावे। कोई कामिनियाँ कटाक्ष कर रही थीं, वह ऐसा लगता था जैसे मदन-गवाक्ष में भ्रमर फिर रहे हों।

६५५. एक तो वे कामिनियाँ थीं, फिर वे यौवन से भरी, सुनिर्मित [शरीर की], सुजान और अति सुंदरी थीं। [वे जब बोलतीं] उनके मधुर वचन मानो पंकजों को खिला देते थे; देखते हुए वे देवताओं का भी मन हर लेती थीं।

६५६. एक के हाथ में शृंग शोभित हो रहा था—वह युवती यौवन के रंग-रस से भरी हुई थीं, एक दुतारा (दोतारों का) रवाब लिए हुए थी—जिसे वह सुंदरी बहुत सुघड़ [ढंग से] बजा रही थी।

६५७. ढोलक और चंद्र-मंडलों का सार (शब्द) तार (ताल) अधिकता और अपूर्वता के साथ पूज (पूरा कर) रहा था। [वे कामिनियाँ] विविध और विचक्षण वचन बोल रही थीं, और उनके नेत्र [मदिरा-पान के कारण ?] कुसुंभ और केशर वर्ण के हो रहे थे।

६५८. किसी किसी कामिनी के कंधों पर रक्खे हुए [वाद्य-] यंत्र इस प्रकार प्रतीत हो रहे थे मानो वशीकरण के मंत्र हों। जितनी [कामि-नियाँ] को छिताई ने [संगीत में] प्रवीण किया था, वे सभी संगीत के रंग (उल्लास) और रस (आनंद) में लीन हो रही थीं।

६५९. सर मंडल और सर वीणा सँवारकर उन कामनियों ने मुरज,

और मृदंग उठाए और प्रेम-कपाट पखावज और वीणा को लेकर वे तरुणियाँ बैठ गईं और उस कौतुक में लीन (सम्मिलित) हो गईं।

६६०. कविजन नारायणदास कहता है कि इस प्रकार रनिवास [संगीत-पटु कामिनियों के साथ] सुसज्जित होकर बैठ गया। तब सुजान सौंरसी [उस स्थान पर] आया जहाँ हर्म्य के बीच सुल्तान था।

६६१. रोझ (नील गाय), शश (खरहे), साबर, मृग यूथ, और कुरंगिनियाँ (मृगियाँ) मधुर चाल से [उसके पीछे-पीछे] चल रही थीं; मोर, चकोर, और कोकिल भी रंग (उल्लास) में भर कर सौंरसी के साथ लगे फिर रहे थे।

६६२. जो मनहरनी और मृगलोचनी तुर्किनियाँ थीं, वे भी इसी प्रकार बनी हुई थीं। सारा हर्म्य उस (सौंरसी) को देखकर भ्रमित और भूला हुआ था, क्योंकि वह अति रूपवान विशिष्ट मदन (कामदेव) था।

६६३. मृगों के साथ मृगनैनियाँ (मृगियाँ) भी दीख पड़ीं, जो सौंरसी के साथ-साथ सूँघती चल रही थीं। ऐसा कौतुक देखकर उन स्त्रियों को उल्लास हो उठा, और सभी के मन में सौंरसी बस गया।

६६४. वे कामिनियाँ [सौंरसी की] तानों पर अत्यंत आई हुई (लुब्ध) थीं; उनमें मुग्धा, [मध्या] और प्रौढ़ा सभी सुखदाएँ (रमणियाँ) थीं। और वियोगी [सौंरसी] ने जब विरह भरी वीणा बजाई, [उन रमणियों के नेत्रों से] गज-मुक्ताओं के समान आँसू गिरने लगे।

६६५. [जब सौंरसी ने] राग-तरंग का उत्साह (उत्सव) किया, [उन कामिनियों के] नेत्रों से नीर प्रवाहित होने लगा। ये समस्त सुंदरियाँ अमूल्य (अनुपम) थीं, किंतु इनमें से किसी को भी देखकर उसका चित्त विचलित नहीं हुआ।

६६६. किंतु जभी (जैसे ही) उसकी दृष्टि में छिताई पड़ी, वंशी (वीणा) का नाद [वहीं का वहीं] रह गया, उसकी ध्वनि हर उठी। [सौंरसी के] नेत्र [छिताई के] नेत्रों से जा मिले; वह (सौंरसी) अपने नेत्रों को वहाँ से हटाता रह गया, किंतु वे हटे नहीं।

६६७. उधर सुंदरी (छिताई) के नेत्रों से आँसू गिर रहे थे, और वे सुल्तान के कंधों पर पड़ रहे थे। [स्नेह युक्त] क्षोभ के कारण छिताई नारी [इस प्रकार] रो रही थी, मानो वियोग-सरोवर ने अपना बाँध छोड़ (तोड़) दिया हो।

६६८. सुल्तान के कंधों पर वे [क्षोभ-] तप्त अश्रु गिर रहे थे, इसलिए नरेन्द्र (सुल्तान) ने घूम कर देखा। नरनाथ (अलाउद्दीन) को [छिताई का] मुख इस प्रकार दिखाई पड़ा मानो उदित होते हुए चंद्रमा को राहु ने दबोच लिया हो।

६६९. पद्मिनी [छिताई] मलिन वेष में और परवश थी, फिर भी वह वियोगिनी बनिता बनी हुई (सुंदर) थी। दृष्टि पड़ते ही [उसने अपनी सुंदरता से बादशाह का] चित्त हर लिया, किंतु [बादशाह को अपनी ओर देखते देखकर] उसने अपना मुख नीचा कर लिया।

६७०. तब सुल्तान ने बुला कर पूछा, "छिताई नारी ! तुम क्यों रो रही हो ? हे सुंदरी, यह अपूर्व बात देखो, नाद-लुब्ध होकर पशु भी तपस्वी [सौंरसी] के साथ हो रहे हैं।

६७१. "[इस योगी को] मैं तेरे लिए ही लिवा लाया, कि किसी प्रकार भी तेरा दुःख समाप्त हो।" किंतु [यह सब कुछ] जानकर भी छिताई अपने मन में कहने लगी, "मेरे पापी प्राण, तुम आज (अब) भी इस घर (शरीर) में बने हो !

६७२. "हे [मेरे] हंस (प्राण), अब तुम पक्षी की भाँति उड़कर निकल जाओ, [क्योंकि] तुमने आँखों से सौंरसी को दुखी देखा है। विधि ने मुझे मानव जन्म ही क्यों दिया ? और, दिया भी तो मैं स्त्री क्यों हुई ?

६७३. "और स्त्री भी हुई, तो वियोग क्यों हुआ ? [अतः] हे हंस (प्राण), तुम निकल भागो, जिससे निकलते हुए तुम्हें लोग देखें। मेरे ही लिए मेरे स्वामी वियोगी हुए, और ऐसा दुःख विधाता ने [उन्हें] दिया।"

६७४. [योगी सौंरसी का] राग [-वादन] देख कर सुल्तान रीझ गया, [और उसने कहा,] "ऐ योगी, तू माँग, और मैं मुझे दान (उप-

हार) दूँ।" वह [फिर] कहने लगा, "मैंने तुझे वचन दिया है; यदि मैं [उसे] रख लेता हूँ (नहीं देता हूँ), तो मुझे पातक होगा।

६७५. "वचन देकर भी जो वचन भंग करता है, उसका मुख क्यों पंच (समाज) देखने लगा ?" दिल्लीपति इस प्रकार कहने लगा, "मैं तो अपनी कीर्ति की रक्षा करता हूँ।"

६७६. सौरसी ने कहा, "हे महीपति (बादशाह), सुन। समस्त जंबू द्वीप पर तेरा राज्य है, तैंने दशों दिशाओं के राजाओं को जीता है, तेरे तेज का वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है ?

६७७. "हस्ती यदि अंकुश न माने तो, हे बादशाह, उसका तेज किस प्रकार रह सकता है ? सिंह [अपने पराक्रम को छोड़कर] ऐसा [छोटा] नहीं हो सकता कि वह अँकवारों में भरा जा सके। अतः हे नृपति (बादशाह), तू [अपने] वचन का [अवश्य] प्रतिपालन (निर्वाह) कर।"

६७८. [इतना कहने के अनंतर] मन में विचार कर सौरसी ने कहा, "हे बादशाह, तू [मुझे] छिताई नारी को सौंप (दे)।" [फिर] गोपाल नायक भी कहने लगा, "बड़ों को बचन सँभाल कर कहना चाहिए, [क्योंकि वचन देने के अनंतर उन्हें उसका निर्वाह भी करना होता है]।"

६७९. बादशाह ने तब मन में विचार कर छिताई नारी को बुला लिया और कहा, "हे सुन्दरी ! मुझे एक वचन दे। यह योगी तुझे माँग रहा है।

६८०. "यह [योगी] शीलवान है, और इसके गुण राजोचित हैं, [इसलिए] हे सुन्दरी, तू मेरा मान रख। यही वचन मैंने उस योगी को माँगने पर दिया है, और अब उसको प्रमाण करना चाहता हूँ।

६८१. "मैं योगी से वचन हार चुका हूँ; हे सुन्दरी, तू हमारा तौल (मान) रख। इस [योगी] में गुण इतने अधिक हैं कि वे गिने नहीं जा सकते हैं, और उन्हें तू [स्वतः] अपने कानों सुन चुकी है।

६८२. "सुघर गले से सभी कोई गाता है, किंतु पशु-परिवार किसके वश में होता है ? [फिर,] मैंने तेरे पास जो दासियाँ भेजी थीं, उनसे भी तूने यह उत्तर दिया था—

६८३. "जो मेरी वीणा ठाट देगा, मैं उसकी स्त्री हो जाऊँगी।" छिताई कहने लगी, "हे बादशाह, सुनो। यह राजकुमार है, वेश [मात्र] में यह योगी है।

६८४. "द्वार समुद्र में जो नारायण भगवान [नाम के राजा] हैं, यह उन्हीं का पुत्र सुजान सौंरसी है। मेरे ही लिये यह योगी के वेश में फिरा है, और अशेष उद्यानों का इसने बहुत सेवन किया है।

६८५. सुंदरी (छिताई) ने बातें जब इस प्रकार समझाकर (व्योरे से) कहीं, तब (इन बातों को सुनकर) [बादशाह ने] सौंरसी को बुला लिया।

६८६. बादशाह ने [वस्त्राभूषणादि] पहिनाए, और कहा, "हे योगी, तुम अपनी काया पर की योग-युक्ति (योग से संबंधित वेषभूषा) [उतार] फेंको। जो वचन के दृढ़ भूपाल होते हैं, वे हे योगी, सँभाल कर [वचन] बोलते हैं [क्योंकि जो भी वचन वे कहते हैं, वे उसका पालन करते हैं।]

६८७. "तुम कपड़े पहनो, और योग [की वेषभूषा] उतार दो......।" सौंरसी ने योग [की वेष-भूषा] उतार कर उसे दूर किया। [बादशाह ने उसे] तत्क्षण एक नूतन महल [ठहरने के लिए] दिया।

६८८. [बादशाह ने इसी प्रकार] छिताई के हाथों में बहुत सा परिमल, अशेष सुगंधित पदार्थ, गजमुक्ता के हार, और विविध प्रकार के जड़ाऊ आभरण [धारण करने के लिए] दिए।

६८९. [तदनंतर] अलाउद्दीन ने [सौंरसी से] इस प्रकार कहा, "इस (छिताई) को मैंने बेटी के समान गिन (माना) है।" [यह कहते हुए] जब बादशाह ने [सौंरसी को] छिताई नारी दी, तब [दायज के रूप में उसने सौंरसी को] बहुत से हाथी अलंकृत करके दिए।

६९०. सौंरसी उठ कर आवास (महल) में गया, और छिताई भी अपने पति के पास गई। जब दोनों ने गाढ़ालिंगन किया, पति-पत्नी ने आँसू गिराए।

६९१. तदनंतर सौंरसी ने [छिताई के] नेत्र (आँसू) पोंछे, और

अत्यंत प्रेमपूर्वक उससे वचन कहे। [छिताई] आलिंगन देकर [सौंरसी के] पैरों लगी, तो सौंरसी ने उठाकर उसे गले से लगा लिया।

६६२. दोनों ही [पति-पत्नी] पलंग पर जा बैठे, और अपने-अपने विरह के दुःख विरहा कर (विरहानुभूति पूर्वक) कहने लगे। उनको मिलनों (?) का जो सुख हुआ, उसको कहाँ तक कहा जाए ? [वह समाप्त नहीं होगा] भले ही कवि कितना भी काव्य बना कर उसे कहे।

६६३. जो सुख राम और सीता को मिलने पर हुआ था, वही सुख उस समय हुआ जब सौंरसी ने छिताई को गले लगाया।

६६४. जिस प्रकार [का सुख] कामदेव को रति के साथ, और महादेव को अर्धांगिनी (पार्वती) के साथ होता है, और जैसा सुख श्रेष्ठ पुत्र के आने (होने) पर होता है, उसी प्रकार का बहुतेरा सुख सौंरसी को भी हुआ।

६६५. जैसे राजा को युद्ध में विजय प्राप्त करने पर, कमलों को दिन में सूर्य के उदित होने पर, अथवा कुमुदिनी को आकाश में चंद्रमा के [उदित] होने पर सुख होता है, वैसे ही सौंरसी को भी उस आवास (महल) में सुख हुआ।

६६६. मानों रंक को कोटि धन प्राप्त हुआ हो, अथवा [वर को] विवाह की रात्रि में अत्यंत गौरवर्ण की वधू प्राप्त हुई हो, अथवा जैसे राम को लंका पर विजय प्राप्त हुई हो, अब सौंरसी को इस प्रकार सुख हुआ।

६६७. जिस प्रकार सूर्य ग्रहण से मुक्त [होकर सुखी] हुआ हो, उसी प्रकार [सौंरसी भी] प्राण और जीवन से सुखी हुआ। दिल्ली में यह बात प्रसिद्ध हो गई कि [सुल्तान ने] छिताई नारी को योगी को दे दिया।

६६८. गैर महल में रहते हुए [सौंरसी को] पचास दिन हो गये; [उसकी प्रसिद्धि इस प्रकार हुई कि] मानो आकाश में सूर्य उदित हुआ हो। सौंरसी को उसके गुणों की प्रसिद्धि जिस प्रकार प्राप्त हुई, गुणी [नारायण दास] उसे वर्णन करके कहता है।

६६६. [सौंरसी और छिताई के] मिलन का सुख हिंदुओं को भी हुआ; वह इतना अधिक था कि मुझसे कहते नहीं बनता। दोनों के मिलन के सुख और चैन का जिन नेत्रों ने दर्शन किया, उन नेत्रों [के सुख] को मैं नहीं कह सकता।

७००. सभा को आयोजित करके सुल्तान बैठा, तब उसने सुजान सौंरसी को बुलाया। [सौंरसी आया, और वह] सलाम करके वहाँ [उस सभा में] जाकर बैठ गया। [सुल्तान ने पूछा,] "हे राजा (सौंरसी), इतने दिन तुमने किस प्रकार बिलसे (सुखपूर्वक व्यतीत किए) ?"

७०१. [फिर] भूपति (बादशाह) अलाउद्दीन इस प्रकार कहने लगा, "मेरे यहाँ अनुपम अवसर (नृत्य-गीतोत्सव) होता है।" [उसकी यह बात सुनकर] सौंरसी जब नेत्रों से [उसकी ओर] देखने लगा, बादशाह उससे अमृत-रस [जैसे] यह वचन कहने लगा।

७०२. [उसने कहा] "यदि मैं तुम्हें [अपने गुणियों के] गुण दिखाऊँ, तो मुझे हृदय में सुख हो।" तब अवसर (नृत्य-गीतोत्सव) के लिये आदेश हुआ। क्षण भर के लिए चित्रित परदे का ओट दिया (किया) गया।

७०३. नाना भाँति के चँदोवे बने हुए थे, [जिनमें लगे हुए मणि-माणिक्य ऐसे लगते थे] मानो तारों की पंक्तियाँ शोभा दे रही हों। उन का वर्णन कैसे हो सकता है? यदि कथा बढ़ती है, तो [उसकी] समाप्ति न मिलेगी।

७०४. [अनेक उत्तम पदार्थों को] मिलाकर अनुपम अरगजा तैयार किया गया था—उसमें अगर कस्तूरी और खूँप (?) मिश्रित थे। [सौंरसी को] इन सुगंधों से और ही सुख हुआ। कवीश्वर ने बहुत से कवित्त सुनाए।

७०५. तब उस सुरंग (रंगीन) मंडप में उत्सव में [सुंदर] वर्णों अलियाँ-सखियाँ (नारियाँ) सभी आईं। गुणीजन राग गाने लगे, और अवसर (नृत्य-गीतोत्सव) अत्यंत गुण युक्त [संपन्न] हुआ।

७०६. तब राजा सौंरसी ने कहा, "[इस नृत्य-गीतोत्सव को] देखने पर [मेरे] शरीर को (में) अनेक भाव हुए।" [यह कहने के अनंतर] उसने छिताई नारी को भी बुलाया, और आदरपूर्वक उसे पास बिठाया।

७०७. उसने [सब] सुध बिसारकर [?] सभी कुछ देखा, और उस अवसर (नृत्य-गीतोत्सव) को देखकर वह अत्यंत सुखी हुई। जो विशेषताएँ इंद्र के अखाड़े (नृत्य-गीतोत्सव) में होती हैं, वे सब विशेषताएँ बादशाह ने उस अवसर (नृत्य-गीतोत्सव) में दिखलाईं।

७०८. [उन्हें देखकर] सुजान सौंरसी रीझ रहा, और उसने कहा, "अलाउद्दीन सुल्तान धन्य है, धन्य है, जिसके यहाँ नित्य ही [इस प्रकार का] अवसर (नृत्य-गीतोत्सव) होता है, और जिसके गुणियों में कोई भी बुरा नहीं है।

७०९. "[जिसके अवसर को देखकर] किन्नर, देवता और गंधर्व मुग्ध हो गए, और यह सारी राज सभा मुग्ध हो गई।" अवसर (नृत्य-गीतोत्सव) को उठा (समाप्त) कर [सुल्तान ने] पान बँटवाए, तब सौंरसी [अपने] डेरे पर गया।

७१०. छिताई बाला भी वहाँ आ गई, जिसकी गति मदमत्त गज की थी, और चाल मधुर थी, [जिसके] कर कोमल, और बोल हलके (धीमे) थे। वह प्राण-प्रियतम से सुख-योग [प्राप्त करने लगी]।

७११. बादशाह [एक दिन] उठकर (?) हरमों में गया। [साथ में छिताई को वह लेता गया था]। वहाँ पर उसकी हरम हैवती [हयवती] थी, और सुल्तान की [अन्य] सुंदरियाँ [भी] थीं। वे छिताई को देखकर मन में हँसी (प्रसन्न हुईं)।

७१२. बादशाह ने [छिताई के] सभी गुण हैवती से कहे, [जिन्हें सुनकर] हैवती ने [छिताई को] हृदय में पुत्री से भी अधिक माना। [इसी प्रकार] सौंरसी जब भी [बादशाह की सेवा में] आता, और कुछ भी करता, [उसे देखकर] बादशाह हँसता (प्रसन्न होता)।

७१३. इस प्रकार [वहाँ] रहते हुए [सौंरसी को] दस मास हो गए, तब राजा [नारायण] भगवान [पुत्र और पुत्रवधू का] समाचार प्राप्त करके प्रसन्न हुए। बादशाह के संदेश-वाहकों ने [आकर] सौंरसी की वार्ता कही, जिसे सुनकर राजा फूल कर शरीर से दुगने हो गए।

७१४. [उन्होंने कहा,] "अब मैं पुत्र को [वापस] ले आने के लिए

[अपने सेवक] भेजूँगा, [ताकि] मैं उसे जीते जी (अपने जीवन-काल में) [अपने] नेत्रों से देख लूँ ।" उलगानों (राज सेवकों) ने तरतरे (तीव्र-गामी वाहन) लिए, और बीच-बीच में ठहरते हुए वे दिल्ली पहुँचे ।

७१५. पूछते-पूछते वे सौंरसी के पास गए। [सौंरसी के] पैरों में लगकर उन्होंने पत्रिका हाथ में दी, और कहा, "हम नरनाथ (राजा) [नारायण] भगवान के भेजे हुए हैं।" और पूछने पर उन्होंने राजा का कुशल-समाचार कहा ।

७१६. पत्रवाहक कुमार [सौंरसी] से कहने लगे, "राजा बहुत सुख और चैन से हैं, [किंतु] उन्होंने [आपके विरह में] साथर (चटाई) पर शयन करते हुए शैया छोड़ दी है, इस प्रकार राजा दुःख सहन कर रहे हैं ।"

७१७. पत्रवाहकों ने [जो कुछ] कहा, सौंरसी ने सुना, और ऐसा सुनने पर उसके नेत्र आँसुओं से भर गए । [पिता की] पत्रिका लेकर वह नरनाथ (सौंरसी) गया और बादशाह के पास जाकर वह श्रेष्ठ नाथ (योगी) कहने लगा ।

७१८. "हे सुल्तान, सुनो।" सौंरसी ने कहा, "[मेरे वापस होने के लिए] [नारायण] भगवान के लिखे [लेख] आए हैं ।"

७१९. यह सुनकर बलवान बादशाह रीझा (प्रसन्न हुआ) और सौंरसी को दल (सेना) देकर ··· ···

७२०. "···और यह जानकर तुम गुजरात संभालो।" [यह कहते हुए सौंरसी को] तब बादशाह ने फरमान दिया और घोड़े-हाथी तथा गुणीजन (?) दिए ।

७२१. वहाँ के ताजियों (घोड़ों) का वर्णन कर रहा हूँ। उनके कंधे ऊँचे थे। एक [प्रकार के] घोड़े हरिआ (हरित) वर्ण (जाति) के थे, उनके कंधे बड़े और कान छोटे थे ।

७२२. श्वेत घोड़े चंचल गुणों के थे, [वे ऐसे सुंदर लगते थे] मानो चित्रकार द्वारा चित्रित हों। महुए, सब्जे, सुंदर सनेवी, शीराजी, मुगली और हाँसले भी थे ।

७२३. [ऐसे घोड़े भी थे जो] सिंधु नदी [के आसपास] पश्चिम देश में उत्पन्न थे; उनकी पूँछ बड़ी थी। कवि उनका स्वल्प वर्णन (उल्लेख मात्र) कर रहा है। कच्चल (काटर), काया (कर्क), तुखार (तुखारिस्तान के घोड़े), जरदे, नीले (नील), बोर, कयाह,

७२४. मुथार, और काबुली घोड़े जितने भी थे, वे [एकबार में] साठ कोस आते और चले जाते थे। इनमें पीले (जरदे), नीले (नील) तथा बोर अधिक थे, और भाँभर (भँवर ?) घोड़े तो ऐसी चाल चलते थे कि वे [मानों] भूत हों।

७२५. पर्वतीय (घोड़ों) के बहुत से गोट (झुंड ?) थे, फिर उनको भी दिया और उसकी चौगुनी संख्या में घोड़ियाँ भी दीं। अगम और अजेय सिंहली सेना के गजेन्द्र भी उसने दिए जो स्वतः उसके लाए थे।

७२६. [फिर] उसने सुल्तानी (अपने उपयोग के) मदमत्त हाथी भी दिए, जो ऐरावत के वर्ण (जाति) के थे। वे हस्ती मद प्रवाहित करते और अति मूल्यवान थे। [यह सब भेंटें देने के अतिरिक्त] बादशाह ने सौंरसी के ऊपर अपने हाथ से छत्र तौला (रक्खा)।

७२७. [सौंरसी ने] उसी दिन प्रस्थान किया। [अलाउद्दीन ने विदा के समय] छिताई को सीख दी, [जिस प्रकार पति, गृह जाते समय कोई अपनी पुत्री को देता है,] और [पहले] जो पचास पातरें उसको सौंपी थीं, उन्हें उसको देकर विदा करने के लिए बादशाह आप चला।

७२८. [इस सबसे ऐसा प्रतीत होता था कि] मानों छिताई का विवाह रहा हो, और बादशाह ने उसको अपने स्वामी के घर बिदा किया हो। छिताई को भी [उससे] बिछुरने का दुख हुआ, जिसको [आगे जाने पर] डेरे में उतारा गया।

७२९. छिताई और उसके स्वामी (सौंरसी) वहाँ [आगे के डेरे में] उतर गए, और हरिनों तथा नील गायों—सबको उन्होंने संग ले लिया। पशुओं का मनचीता मन चाहा–हुआ कि उन सब पशुओं को सौंरसी ने साथ कर लिया।

७३०. उनको संग लगा कर [सौंरसी ने] प्रस्थान किया, और साथ में बहुतेरे राणा और राय हो गए । उन्होंने [आगरे के निकट] चँदवार नगर में पड़ाव किया ··· ··· ··· ।

७३१. [फिर] पचास कोस चलकर [उन्होंने] पड़ाव किया, और एक कोस तक रखत (?) रख कर वे वहाँ से पुनः चल पड़े। चलते समय मार्ग में [सौंरसी] दौड़ा-दौड़ी और बगछोड़ (बाग छोड़कर घोड़ा दौड़ाने) का खेल खेलता था ।

७३२. और रानी रात को [जिस प्रकार के खेल] खेलती जाती थी, तुच्छ कविजन [नारायण दास] उसको समझा कर कहता है। कभी कोई दिन [ठीक] समझ कर छिताई नारी सब के साथ मिलकर आखेट करती।

७३३. नारी [छिताई] पुरुषों के वेश धारण करती, पाग बाँध कर वह भली लगती, [उसके शरीर पर] विविध प्रकार के बागे शोभा देते, और हाथ में उसके फूलों के हार।

७३४. राजा सौंरसी और छिताई मार्ग में चढ़ा-बढ़ी करके खेल खेलते। [इस प्रकार] खेलते हुए दोनों ही नर तथा नारी शोभा देते; वे दोनों ही पुरुष और नारी चतुर थे।

७३५. कुमार (सौंरसी) तथा कुमारी (छिताई) सिंसार (छिंछार-छींटे) जोड़ (छोड़) करके अंग (शरीर) की धमार करते [ऐसे प्रतीत होते] मानो आकाश (?) में फूल खिलकर शोभा दे रहे हों, अथवा स्त्री (छिताई) तथा पुरुष (सौंरसी) अनुवासित (सुवासित) हों (?)।

७३६. [वे ऐसे प्रतीत होते थे] मानो आकाश में रूपवती सुंदरी ··· ··· ··· ··· ··· ···। इस धमार में गजमुक्ताओं के हार टूट जाते, किंतु बाला (छिताई) को उनके गिरने का कुछ सार (ज्ञान) न होता।

७३७. वह हँसते-खेलते बचन बोलती [रहती]। और जब उसकी दृष्टि [उन टूटे हुए हारों पर] पड़ती, तब वह उन्हें उठाती। वहाँ राजा सौंरसी इस प्रकार दिखाई पड़ता जैसे तारा गणों के बीच [शुक्ल पक्ष में] चंद्रमा नित्य बढ़ता है।

७३८. [जब] नारी [छिताई] हाथी पर चढ़कर

कूच करतीं, वे नवल कुमारियाँ सोलह शृंगार करके [उन पर चढ़तीं] और उनके हाथियों के रंग लहरों के समान होते। कुछ अबलाएँ घोड़ों पर चढ़तीं।

७३६. हाथी जब मार्ग में दौड़ने लगते, बालाएँ भाग निकलतीं और नारी [छिताई] चौंक पड़ती। [इस प्रकार] राजा सौंरसी और नारी छिताई खेलते ....।

७४०. जिस प्रकार कल्पवृक्ष को पाकर चंद्रमा उस पर किरण-जाल बिछा देता है, उसी प्रकार जहाँ पंथ में रावत (सौंरसी) मैदान देखता, वहाँ वह चौगान खेलता, और उस चौगान में [नव] वधुओं के समान घूँघट डाले हुए नारियाँ भी अधिकता से [सम्मिलित] होतीं।

७४१. आगे से एक गैल (कूरियों के बीच का वह भाग जिससे होकर गेंद के निकल जाने पर जीत हार होती है) तक जाता था, तब तक दूसरा दौड़कर उससे जा लिपटता था। किंतु कोई नारी जब आगे चली जाती और सौंरसी के पास पहुँच जाती—

७४२. [सौंरसी को देखकर] वह सौंरसी की दुहाई करने लगीं। इस प्रकार [चौगान] खेलते हुए नारियाँ भी अधिक सुख से भर जातीं, और तब वह बाला (छिताई) शोर करती हुई [आगे] दौड़ जाती ...।

७४३. इस प्रकार [सौंरसी] चौगान खेलता, और [उसके साथ] सभी राजा इन्द्र के समान चौगान खेलते। सौंरसी ने [मार्ग में और विलंब न करके] घर जाने का निश्चय किया और वह देवगिरि गढ़ गया।

७४४. दौड़ कर जाने वाले दूत राजा [रामदेव] के पास गए। उसने जब [सौंरसी के आने का समाचार] सुना, उसको बहुत सुख और उल्लास उत्पन्न हुआ। वह हर्ष के साथ आगे होकर उसे लेने चला, और [उसने] सेना के हाथी-घोड़े पलाँदे।

७४५. घर-घाट पर जो बाजे बजा करते थे, वे बाजे [सौंरसी के] स्वागत के लिये चले। [इस स्वागत में] जो हाथी पलाँदे गए (कस कर तैयार किये गए उनका वर्णन कौन करे [उनका यथार्थ वर्णन भी उसी प्रकार अतिशयोक्तिपूर्ण लगेगा] जैसे [किसी] भिखमंगिनी की [प्रशंसात्मक] बातें हों।

७४६. राजा स्वागत के लिए चला। उसके हाथियों, रथों और घोड़ों की साज-सज्जा, अनिवार्य (?) थी। बाहर के द्वार (तोरण) तथा अन्य द्वारों पर भी बंदनवारों की शृंखला बँधी हुई थी और घाट-बाट सँवारे-सिगारे हुए थे।

७४७. कविजन नारायणदास कहता है कि फूल का जीवन समाप्त हो जाता है किंतु उसकी सुवास सदैव जीवित रहती है [उसी प्रकार छिताई के बिछुरे कितने दिन भी हो गए थे, माता के हृदय में उसके प्रति स्नेह अक्षुण्ण बना हुआ था, इसलिए] जब छिताई माता के पास गई, माता उसको गले से लगाकर उसासें लेने लगी।

७४८. नित्य नए रंग से [सौरसी की] मिहमानी राघव चेतन तथा मोल्हन के साथ होती थी। उनको भी राजा रामदेव मिलता था, और नित्य उन्हें भी वहाँ [जहाँ वे लोग ठहराए गए थे]। अंकमाल देकर भेंटता था।

७४९. राजा रामदेव उन्हें गढ़ के भीतर ले गया। उनके आगमन से उसे आनंद हुआ और उसने उन्हें पसाव (राजकीय उपहार) दिए। ब्राह्मण लय-स्वर के साथ वेद पढ़ते थे, और नित्य गीत-वाद्यादि तथा मंगलाचार होते थे।

७५०. अवसर (नृत्यगीतोत्सव) हुआ जिसमें गाजे-बाजे और निशान (?) का आयोजन हुआ; और [उस अवसर पर] सभी सुजान लोगों का [वस्त्राभूषणादि से] शृंगार किया गया। जहाँ पर राघवचेतन और मोल्हण होते, वहाँ पर महल में चंदन लेकर छिड़का जाता।

७५१. नर्तकियाँ नाचतीं और गीत गातीं, गर्जन-तर्जन [के दृश्य] तथा बहुतेरे प्रीति-प्रेम [के अभिनय] होते। वहाँ फुलवाड़ियों और फूलों की सुगंध [उसी प्रकार] बहुत होती, जैसे इन्द्रराज के घर में होती है।

७५२. [कोई] पढ़ते-कहते उन [सुखों] का अंत नहीं पा सकता, [इसलिए] उनमें से केवल मुख्य-मुख्य को विचार करके कहता हूँ। वे [नर्तकियाँ] राग गाती थीं, ताल बजाती थीं और अपने नेत्रों को घुमाकर [दर्शकों पर] कटाक्ष करती थीं।

७५३. वे कामिनियाँ काम-बाण चलाती थीं, और [इस संबंध में

उनकी कुशलता की] साक्षी देव-भामिनियाँ भरती थीं। वे काम-लतिकाएँ देखते ही चित्त को हर लेती थीं, [मानो] वे इन्द्रराज के घर में अवतरित हुई हों।

७५४. सात दिनों तक [लगातार] अवसर (नृत्यगीतोत्सव) हुआ, तब मोल्हण ने हँसकर रामदेव से कहा, " [अब हमें] घर जाने के लिए विदा करो, हम देवगिरि आकर सुखी हुए।"

७५५. राजा रामदेव हँस-हँसकर कहने लगा, "अब मुझे जीवन की सफलता प्राप्त हुई है। तुम्हारे चरणों का स्पर्श करने से मेरे पाप जाते रहे हैं और अब मैं जीवन में समस्त भाव से [धन्य ?] हूँ।"

७५६. हीरे, चुन्नियाँ और बहुत से लाल राजा रामदेव ने उनके आगे ला धरे। मणि-माणिक्य तथा मोती, जो बहुत से थे, [उसने] भेंट के रूप में थालों में भरकर ला रक्खे।

७५७. जिस प्रकार अर्जुन ने कृष्ण का [सत्कार करके उन्हें विदा किया था], रामदेव ने भी वहाँ [जहाँ वह ठहराया गया था] जाकर उसका सत्कार करके उसे विदा किया। [तदनंतर] राजा रामदेव ने राघव चेतन को जड़ाऊ आभरण भेंट करके लाल पहनाए और उसे विदा किया।

७५८. राघव [चेतन] बादशाह के पास [दिल्ली] गया, और राजा रामदेव ने उसे जो कुछ दिया था वह सब······

७५९. [सौंरसी के प्रत्यागमन की] बातें सुनकर राजा [भगवान नारायण] सुखी हुआ।

७६०. निश्चित रूप से [उसका आगमन] ज्ञात होने पर धौंसों पर चोट पड़ी, और राजा [भगवान नारायण] राव [सौंरसी से] मिला। राजा [भगवान नारायण][पुत्र के होने के कारण] परलोक [के संबंध] में आनंदित हुआ, इसलिए फिर वह किस [लौकिक] भोग के विषय में कामना करता ?

७६१. उसे जिस दिन सुंदरी कुमारी [छिताई] मिली, उसने नारी [छिताई] को द्वारसमुद्र गढ़ के भीतर पहुँचाया। छिताई तथा राजा [सौंरसी] चकडोल (चंडोल) पर चढ़े, और दौरहों (दौड़कर जाने वाले संदेश-वाहकों) ने वहाँ [गढ़ के भीतर] आकर [उसकी] सूचना दी।

७६२. सास और ससुर [इधर-उधर] आते-जाते [दिखाई पड़ते] थे; वे इतने प्रसन्न दिखाई पड़ते थे जैसे वसंत-ऋतु में झाड़ें फूली हुई दिखाई पड़ती हैं। छज्जे और छत्र अनुपम प्रकार से नूतन कराए गए, और [राजा भगवान नारायण के अधीनस्थ] सभी राजाओं को अत्यंत आनंद हुआ।

७६३. [उन राजाओं के] आगे राजा भगवान [नारायण] होते और [इसी प्रकार उनके] आगे सुजान कुमार सौंरसी होते। उस समय द्वारसमुद्र के कौतुकपूर्ण दृश्यों को देखने के लिए सारे जहान से—देश-विदेश से—सुजान आते।

७६४. स्थान-स्थान पर नारियाँ मंगल गातीं, जिन्हें सुनकर चतुर-जन आशय समझ-समझकर [आनंदित होते] रहते। स्थान-स्थान पर बाल-तरुणियाँ नृत्य करतीं, और [इसी प्रकार] स्थान-स्थान पर [राजा भगवान नारायण के अधीनस्थ] भूपालगण नृत्य (?) करते।

७६५. उस समय के दृश्य को देखकर देवता और मनुष्य हृदय में मुग्ध हो जाते। इसी भाँति [राजा भगवान नारायण ने] बहुत-सा दान [भी] दिया। [जिस प्रकार] राजा सौंरसी घर आया, नारायणदास ने [वह सारी कथा] उत्साहपूर्वक कही।

———

परिशिष्ट

विशिष्ट शब्दों के अर्थ

[नीचे दी हुई संख्याएँ 'छिताई वार्त्ता' के संपादित पाठ के छंदों की हैं]

६२. पयादे = (पदाति अथवा पदातिक) पैदल सेना । ज = (जु) जो (दे० ७३) । निसुरत खाँ = अलाउद्दीन का एक प्रसिद्ध सेनापति । पाटण = (पट्टन) बड़ा नगर । नयर = (नगर) ।

६३. धारि = (धार) सेना का अग्रभाग ।

६४. सुबस = (स्ववश) । मीडना=मींजना (दे० ७७) । कबाइ=(क़बा) घुटनों तक का एक लंबा ढीला पहनावा ।

६५. उपनी=उत्पन्न हुई ।

६७. मंत = (मंत्र) सम्मति । सई = से, साथ ।

६८. परचक्र=शत्रु-सेना ।

७०. मील्यो=(मीड्यो) मींजा । असो=(ऐसो) ऐसा (दे० ८४) ।

७१. सायर = (सागर) (दे० ३८६, ५६१) । बिचै = बीच में । बिरमे = रुके ।

७२. अलूखांन = (उलुग़ खाँ) अलाउद्दीन का भाई और एक प्रसिद्ध सेनापति । वाराम=न्योछावर (?) ।

७३. ज = (जु) जो (दे० ६२) । अवास = (आवास) भवन, निवास-स्थान ।

७४. पेम=(प्रेम) । गूझ=(गुह्य) भेद की बात ।

७५. नहु=नहीं । हकराइ=बुलाकर । सरिस=सामने ।

७६. कबुद्धि=(कुबुद्धि) । अजौं = आज भी । समदो = बिदा हो (दे० ६२, ६४, ७२७, ७२८, ७५७) ।

७७. मीडिआ=मींजते हैं (दे० ६४) ।

७९. हीदो=(हृदय) । कूर=(क्रूर) । मूर = मोंढ़ा ।

८१. पतिहा = पत्रवाह (दे० ७१६) ।

८२. पहूत=पहुँचे । मेलान=डेरा, पड़ाव । तिह = (तिहि) उस ।

८३. अनु=और (दे० १४१, २३०, ७३४) । कुसर = (कुशल) ।

८४. असौ=ऐसा (दे० ७०) । उल्हास=(उल्लास) (दे० ६३७) ।

८५. तणो=का ।

८६. करूप=(कुरूप) ।

८७. बयरियाँ=(बेड़ियाँ) । बलाइ=डलवा कर ।

८८. संत=(शांत) (दे० ५४८) ।

८९. मद=मत्तता । सद=सद्या ।

९०. नवि=न (दे० १५४) ।

९१. जांपइ=कहता है (दे० ५९९) ।

९२. समदौ=विदा दो (दे० ७६, १६४, ७२७, ७२८, ७५७) । बिहान=सवेरा ।

९६. जसै=जैसे । चालनी=चलनी, जिससे कोई वस्तु छानी जाती है ।

९७. तुखार=एक उत्तम जाति का घोड़ा, जो तुखारिस्तान, हिमालय के उत्तर-पश्चिम के एक देश में होता है (दे० ३८७) ।

९९. नाह=(नाथ) ।

१००. गय=(गज) । कणौं=कनक ।

१०१. समदे=विदा किया (दे० ७६, ९२, १६४) । मनुहारि=अनुनय-विनय ।

१०२. चित्र=चित्रित करो ।

१०४. बान=(वर्ण) (दे० ११२, १२४, १३९, ४२८) । समराइ=सँवराओ, ठीक कराओ । जान=समझ ।

१०५. नवतन=(नूतन) (दे० ७६१) । प्राहर=(प्राग्रसर) प्रमुख । सुतधार=(सूत्रधार) राजगीर (दे० ५२४) ।

१०६. कमठान= वास्तु-शिल्पी । सुकन=(शकुन) ।

१०७. खेत्रपाल=(क्षेत्रपाल) खेत की रक्षा करनेवाला देवता, ग्राम-देवता । भारी=खोदी (खुदवाई) । पुरस=(पुरुष) पुरुसा, एक पुरुष के लंबान की गहराई ।

१०८. चौबारे=चार द्वारों के कक्ष । चौपखा=परिखा, चहार दीवारी । हाटन=हाटों, बाजारों । पटना=(पट्टन) ।

१०९. रावन=(रमणीय) । रंग=रंगशाला । कोरि=छिद्र करके । लाजवर्द=हलके नीले रंग का एक बहुमूल्य पत्थर । नखस=(नक़्श) जड़े हुए । अकीक=(अक़ीक) एक प्रायः लाल मुलायम पत्थर जिसपर

कुछ उत्कीर्ण भी किया जा सकता है। सतखने=सात खंड के (दे० १०८)।

११०. केरि = (केलि)। खांडारि = (खंडाली) काम की इच्छा रखने वाली स्त्री। रहित=आहत।

१११. छत्र = छतरी। गोख = (गवाक्ष)। उझक दैइ=झाँकी (दर्शन) देता।

११२. बस्त=(वस्तु)। बान=(वर्ण) (दे० १०४, १२४, १३६)।

११३. स=सो, वह। भुइरे=भूमि-तल के भीतर बनाए हुए भवन। अनु अनु = और और, नाना (दे० ३८३, ७०४)।

११४. सुयंभ=(स्वयंभु) स्वतः उत्पन्न (दे० १७७)। सिंगार = शृंगार-वर्ती रमणियाँ। भरति=(भरत) भराव (दे० ११६)।

११५. जल कुकुरी = मुर्गाबी। मटामरे, आरि=जलपक्षी विशेष (दे० ३६५)।

११६. भरत = भराव (दे० ११४)। पुरयनि=कमल। पान=(पर्ण) पत्ते

११७. चलकर=चाल्हा, एक बड़ी जाति की मछली (?)।

११६. कठायल=कठहरे, काष्ठ के बने भवन या कक्ष। आन=(अन्य) और ही ढंग के।

१२०. गोमट=(गोमेद ?) एक प्रकार का लालिमा लिए हुए पीला बहु-मूल्य पत्थर (?)। पवारिन = पौरियों।

१२१. खुमरी=एक प्रकार की चिड़िया (?)। जन = (जनु) मानो।

१२२. कालिंद्रिह = (कालिंदी)।

१२३. तिहठा=उस स्थान पर। जीवन वारि = जेवनार। जिनसार=(जिन-शाला ?)। सिजवारि=शयनालय (?)।

१२४. बान=वर्ण (दे० १०४, ११२, १३६)।

१२५. साही = (साधी)।

१२६. नैषधि=(नैषध) राजा नल। निरषधि = दमयंती। भारथ = (भारत) महाभारत।

१२७. गज=हस्तिनी स्त्री।

१२८. खेड़न=खेड़ों (क्रीड़ाओं या खेलों) में। कवियन=(कविजन) ग्रंथकार —नारायण दास (दे० १४३, ५४२, ६६१)।

१३०. छजइ=छज्जे पर। उझकइ=झाँकती है।

१३२. त=(तु) तो।

१३४. नेवर=(नुपूर)। अपछर = (अप्सरा)।

१३५. चित्रंग=चित्रकार (दे० १४७)। जिसौ = जैसा। ठगि = ठगिनी। घालि = डाल दी। तिसौ=तैसा, वैसा।

१३६. खांति = आकांक्षा या अभिलाषा (?) (दे० १६६)।

१३७. अहु = यह।

१३८. णाटारंभ=(नाट्यारंभ) नाट्यशाला (दे० ३८३)।

१३९. जिसी = जैसी। तिसी = तैसी, वैसी। चरचि = व्यक्त करके। बानि= वर्णों में (दे० १०४, ११२, १२४ १७१)।

१४०. परवीन = प्रवीणा—एक प्रकार की वीणा। हिरिको=हिलगा हुआ, पास आया हुआ।

१४१. अनु=फिर (दे० ८३, २३०, ६९३, ७३४,)। सुबन=सुनिर्मित (दे० १४३, १७७, १८४, ६५५)। परइ=पड़े-पड़े, बिना चले। कंध= (स्कंध) डाल।

१४२. गुर्वनी=(गुर्विणी) गर्भवती।

१४३. कुसंबी = (कुसुंभी)। सुबन=सुनिर्मित (दे० १४१, १७७, १८४, ६५५)।

१४४. कंचकी=(कंचुकी) चोली। गूडरी = (कुंडली) सांप के गोलाकार बैठने की मुद्रा (दे० १७८)। चेटवा=(चेटुवा) शावक।

१४५. खंद = छेद कर। तिह=उसको।

१४६. ति=वह। सुरत=(स्मृति)।

१४७. चित्रंग=चित्रकार (दे० १३५)।

१४८. समागर=(समग्र) समाप्त।

१४९. त्रयाक्रम=स्त्री-कर्म। रोहित=लालिमा। तै=सो, वह। दौनै=दूने।

१५०. पुरषागति=पुरुषत्व की विशेषता। सजनाई = सज्जनता। निचइ= (निश्चय)। मित्रिया=(मैत्री)।

१५३. भानइ=भाँजता था। सद्रिढ=(सुदृढ़) । खांभ=(स्तंभ) (दे० १६३)।

१५४. नवि=नहीं (दे० ९०)। बिसठारो=दूतत्व (दे० ३१८)।

१५६. हेम=सोना। घड़ावो = (गढ़ाओ)। जोइ=देखो। संजोइ = एकत्र कर। पोस्ती = पोस्ते की ढोंढी पीनेवाला, आलसी। मोस्ती= धींगा-धींगी करनेवाला या मुटमर्द (?)। विरमन = रुकावट।

१५७. सगति=(शक्ति)।

१५८. अंतरधन=(अंतर्धान) । आगौनी = अगवानी । अविचार = (अभिचार) मंत्र-पाठ आदि । कुल-कर्मा=कुल के कर्म । आ = इसके (दे० ६८६) ।

१५९. सिफलात=(सफल) । सोहजै=शोभित होती है । निज=बिलकुल । र = और । सोज=सीवाई में, तक । चोज=(चौज) व्यंग्य-पूर्ण परिहास ।

१६०. रतन=रत्नरंग छवि । समानि=(समान) ।

१६१. जीवनवारि = जेवनार (दे० १२३) । बार=(वेला) समय ।

१६२. मोरावइ=घुमाती है । गरि=गले में । खोखरइ=खंखारकर । मेल्ह= खोल करके । लटकंती=लटकाए हुए । जु=(ज्यों) जैसी ।

१६३. एकति=एक स्त्री । खांभ=(स्तंभ) (दे० १५३) । ओडाइ=अंग-ड़ाती है । ज्वानि=(युवती) ।

१६४. समदे=विदा किया (दे० ७६, ६२, ७२७, ७२८, ७५७) । पेरोजा= (फ़ीरोज़ा) हरापन लिए हुए नीले रंग का एक बहुमूल्य पत्थर । लाल=लाल रंग का एक प्रसिद्ध बहुमूल्य पत्थर ।

१६५. चुनी = मानिक या किसी और रत्न का छोटा टुकड़ा ।

१६६. समरांति=स्मरण करके ।

१६६. कोंवर = (कोमल) । जानि=जानो, मानो । बाट=मार्ग । निलाट= (ललाट) ।

१७०. ओपइ=दीप्त होता (चमकता) है । तिसौ=तैसा, वैसा ।

१७१. भरीही = भरी है । बूकना = पीसना । जन=जनु, मानो । सान = सान करके । काक बक=कौवे और बगुले अर्थात् श्याम और श्वेत । बानि = वर्णों में (दे० १०४, ११२, १२४, १३६) ।

१७२. तरिका=(ताटंक) तरिवन । ताके=उसके । चाक= (चक्र) पहिए । पेच=बल, वक्रता । अनुखुटी=अनोखी ।

१७३. बनसी=मछली फँसाने की लग्गी । परवीन=(प्रवीण) । कीधे=किए ।

१७४. पवाली=प्रवाली, प्रवाल के । सधर=ऊपर का ओष्ठ (दे० ५०१) ।

१७५. दारिउं=(दाडिम) । लीला=(तिल) । जंगाल=तूतिया ।

१७६. आपन=स्वतः । कंठसरी=(कंठश्री) गले का एक आभरण । छुट = छुटा ।

१७७. जोन्न=जो अन्न । संधित=संधि करके । सुन्नन = सुनिर्मित (दे० १४१,

१४३, १८४, ६५५) सुयंभ=(स्वयंभु) स्वतः उत्पन्न (दे० ११४)।

१७८. गूडरी=(कुंडली) (दे० १४४)।

१७९. नलनी=(नलिनी)। बाई=कन्या।

१८०. वररि = बर्र [की कटि]। भरि = भार के कारण। नियान=(निदान)। सुछ्छ=(स्वच्छ)।

१८१. सुठांन=अच्छी ठनी हुई, सुंदर। नीसान = (निशान) चिह्न। कूंकू=(कुंकुम)। ति=वे या उसकी। पींडरी=पिंडलियाँ। मनहु=मानो।

१८३. चित्र गुपति=(चित्रगुप्त)। संचइ=सांचे में। संची=ढली।

१८४. दछन=(दक्षिण)। दल=पंखुरी। तन = (तें) से। सुबन = सुनिर्मित (दे० १४१, १४३, १७७, ६५५)।

१८५. पलिका=(पर्यंक)। गहाई = ग्रहण कराकर, दृढ़तापूर्वक।

१८६. गवरा = (गोरोचन)।

१८७. आदि = उद्गम। तर=(तरु)। मेद=मेदा, एक सुगंधित लकड़ी। छांटौ = छिड़का।

१८८. मिश्रत=(मिश्रित)। छंछार = फव्वारा। उजारै=प्रकाशित करता है।

१८९. खेओ = क्षिप्त किया, डाला।

१९१. ति=वे।

१९२. त्रिसौन=विशेष सौन।

१९४. तरहंडौ=नीचा।

१९५. नानानामि = ना, ना, नकार। चत्रगनी=चौगुनी।

१९६. हरुए=हलके, धीमे। खिरकीं = हट गईं। बहुराउ=वापस हुए।

१९७. सुधर = भली प्रकार धारण करने योग्य। साद = (शब्द) (दे० ५९९)। अहिलाद=(आह्लाद)।

१९९. खांति = आकांक्षा या अभिलाषा (?) (दे० १३६)।

२००. कमल बंध=आसन विशेष (?)। संध=पट्ट (?)।

२०१. बोलइ=बुलाता है।

२०२. समद्यौ=विदा किया (दे० ७६, ६२, १६४)। चकडोल=(चतुर्दोल) चंडोल।

२०३. अखारा = नृत्य-संगीत - समारोह। छुड़ाइ=खुलवाकर। हुंत=होता। नाटियइ = अभिनय करते।

२०४. नटवनि = नर्तकों ने (दे० ५६८)। सुध=शुद्ध। देसी = नृत्य का एक भेद।

२०५. तंति = (तंत्री)। देली=राग का एक भेद। गौंज = धूम (?)। कूर= (कूट) ढेरी। सुखौज = सुख-सामग्री।

२०६. नन=नहीं। बागुर=फँसाने का फंदा। बोकर = खाईं (?)। नेक = कुछ। साहि = (साही)।

२०७. नदारु = (नदाल) भाग्यशाली। मूल=जंगली (?)।

२०८. तुम्हनि = तुम लोग। पांड=(पांडु)। बलिबंड = बलवान।

२०९. बहुल = बहुतेरे।

२१०. आथमैं=सूर्यास्त के समय (दे० २२४)। सम = से। सरसि= समान। भिल्यौ = भिड़ा, पीछे लग गया। चोकरि=चौकड़ी।

२११. गुहराइ = पुकार कर। गाह=गहन, दुर्गम। पिछुंडइ = पिछाड़ी, पीछे-पीछे।

२१२. थाढो = खड़ा। ठाइ=स्थित या स्थापित कर।

२१३. निरंद=(नरेन्द्र)। गुनह = (गुनाह)। औन=(अयन) आश्रम, स्थान।

२१४. तिजहि = छोड़ दे।

२१५. आप = अर्पित कर।

२१६. सारि = काट कर, अलग कर।

२१८. अंदेस=(अंदेशा) भय, कष्ट।

२१९. तइ=से।

२२०. मेटइ=मिटाता है। अवसि=अवश्य करके। धन=(धन्या) स्त्री।

२२१. सकति = यदि शक्ति हो। तिहां=तब, ऐसी स्थिति में।

२२४. आथमइ=सूर्यास्त के समय (दे० २१०)। कीधउ=किया। भीड= संकट, विपत्ति।

२२६. बिषै = विष ही। विषै = (विषय)।

२२७. समदि = बिदाई में। पसाउ= (प्रसाद) भेंट (दे० ३४९, ७४९)।

२२८. सामह्यो=समुहाया, निकल पड़ा।

२२९. निर्मोलिक=अमूल्य। हैवति = (हयवती) अलाउद्दीन की एक हिंदू स्त्री (दे० २४५)। कैफीति=(कैफ़ियत) विवरण। खैरीति = (ख़ैरियत) कुशल।

२३०. अनु = फिर (दे० १३, १४१, २३०, ६९३, ७३४) जहमति=कष्ट ।

२३१. दूबरौ = (दुर्बल) ।

२३२. सइं = से । सौंज=सामग्री । जामदार=(जमादार) ।

२३३. परस=(स्पर्श) (दे० ७५६) ।

२३४. तनी = की । चाहि=देखि ।

२३५. अयान=(अज्ञान) ।

२३७. चितै=देखकर । जुहार=नमस्कार, अभिवादन ।

२३८. जिसे=जैसे ।

२३९. चारु = (चार) सेवक ।

२४०. झारि=संपूर्ण रूप से । धरयौ=रक्खा ।

२४१. सु=सो, वह । लावन = (लावण्य) नमक । हो = था । तनौ = का ।

२४२. समर = (स्मर) कामदेव । जानिकु = मानो ।

२४३. निअ = निज, अपने ।

२४४. सुरत = संभोग । निब = यथार्थ, वास्तविक ।

२४८. धींग = हट्टे-कट्टे मनुष्य ।

२४९. फुरमान = (फ़रमान) राजाज्ञा । उम्मरा=(उमरा) अमीर गण ।

२५०. सिलह = शस्त्रास्त्र । हलक=(हलक़ा बगोश) गुलाम, दास । लखु=लाख । अवघट=अटपटघाट । सौंसर = समतल (दे० २६८) । निसान=धौंसे ।

२५१. पलान्यौ = जीन कसी ।

२५५. कवोम (कौम) । सबानी=सभी । कुतानी = कितनीही । खरे= कठिन । न्याजी = नेजों (भालों) वाली । पाजी = पदाति, पैदल सेना ।

२५८. राते=(रक्त) लाल । गरदान=(गर्दन) गला । मुंडले = मुंडित । कषाए=घिसे (?) ।

२५९. गुरज = एक प्रकार की गदा । ढोवा = सैनिक एकत्रीकरण (?) (दे० ३०२, ३१८, ३२५, ४९६) । बुरज=(बुर्ज) गढ़ की दीवाल का वह निकला हुआ ऊपरी भाग जहाँ बैठने के लिए स्थान बना रहता है । पलानि=सवार-सेना ।

२६०. ठकुरई = राजकीय सेना । कूकरा उड़ान = वह दूरी जहाँ तक कुत्ता एक बार में दौड़कर जा सकता है । खेह=मिट्टी ।

२६१. बंदनि = सेवकों । देहुरे = (देवगृह) । मसीति = (मसजिद) ।

२६२. परिगही = संग्रहाध्यक्ष [परिग्रह = धनादि का संग्रह] (दे० ४९४, ५०२) ।

२६३. मांडिया=साधन एकत्र किए। दौरहा=दौड़कर जाने वाले दूत।

२६४. बाबसू=दूत, चर। पारि=(पालि) सरोवर आदि का बाँध (दे० ३६४, ३९६, ४१८, ४२४, ४४२)।

२६६. चौकी=सैनिक टुकड़ियाँ जो मुख्य सेना की सुरक्षा के लिए उसके आस-पास नियुक्त की जाती हैं। धाप=वह दूरी जितनी आदमी एक साथ दौड़ सकता है, दूरी की एक माप जो लगभग एक मील होती है।

२६७. टोपा=टोप, लोहे की एक टोपी (दे० २६८, २७२)। सेहथी=शक्ति, बरछी, साँग। पदरकि=पैदल (?)।

२६८. टोपा=टोप (दे० २६७, २७२)। आगरे=(अग्र) प्रवीण। सौंसर=समतल (दे० २५०)। पौलि=(प्रतोली) मुख्य द्वार।

२७०. रौरि=छेंक कर। परिगाहन=भिड़ने। माल=(मल्ल)। दंद=(द्वंद्व)।

२७१. जुझार=लड़ाके।

२७२. टोपा=टोप (दे० २६७, २६८)।

२७३. बरियाम=बली। जमधर=एक प्रकार की कटारी जो चौड़े और सीधे फल की होती है। खैकार=क्षय (नाश) करने वाले।

२७४. सुहर=(सुभट) (दे०३८७)। नराजी=छोटा नाराच। ओडन=ढाल (दे० २७८),

२७५. खिभिरी=खलबली।

२७६. धुरकटी=धुर (सेना के अग्रभाग) को काटने की क्रिया।

२७७. सनाह=कवच।

२८०. रोहि=अवरोध करके। परदल=शत्रु-सेना। छोहि=क्षुब्ध होकर।

२८१. ठाठा=[कवचादि से] सुसज्जित हाथी (तु० २९३)।

२८२. भरहरे=भाग पड़े।

२८३. कमान=तोप (दे० ४९७)। पथ्थ=(पाथ) जल। पाइक=(पदाति) पैदल सेना।

२८४. भुँवै=(भूमि)।

२८५. उसारी=उखाड़ करके (दे० ३४५)।

२८६. चाहई=देखता है। पनोहर=(पयोधर ?) बादल (?)।

२८९. उझकत=झाँकते समय। हवाई=एक प्रकार का युद्ध-यंत्र। कोट=परकोटा। हंसु=प्राण।

२६०. चालु=चलो। करानति (क्रांति) = मृत्यु। नाव=नाम।

२६१. बाननी = बाना धारण करनेवाली, नटी।

२६२. अनगंजे=अविनष्ट। गंजिए=नष्ट किए जावेंगे। साद=(शब्द)।

२६३. केनै=मूल्द, गति। बिकरार=(विकराल)। ठाठा=सुसज्जित हाथी (दे० २८१)।

२६४. अखुटाइ = समाप्त नहीं होता।

२६५. जि = जैसे। बिडरत=विदीर्ण होते, नष्ट होते।

२६६. कुम्हैडे = कुम्हड़े। निरवारि=निपटा कर।

२६७. बोथापोथि = लोटपोट। बगमेल = बाग छोड़कर, वेलगाम (दे० ७३२)।

२६६. सौं = साथ। थान=अदद।

३००. महानो=(महार्णव) महासागर। बिचरि = विचलित हो।

३०२. ससिहर = (शशधर) चंद्रमा। गिल्यौ = निगल गया। दिनमान= दिन भर। ढोवा = सैनिक एकत्रीकरण (दे० २५६, ३१८, ३२५, ४६६)।

३०४. खेम=(क्षेम)। अलोकु = अपलोक, मिथ्या कलंक (दे० ३७२)।

३०५. रजकाज = राजकार्य, राजधर्म।

३०६. संकरैं=संकट में। दसमै दाइं = दसवें दाँव में, अंतिम अवस्था में।

३०७. निग्रह्यो=पकड़ा हुआ, घिरा हुआ।

३०८. सतखनै = सात खंड के (दे० १०६)। अवास=(आवास) भवन।

३१०. कोरौ = विशुद्ध।

३१४. बागा=जामा, घुटनों तक लटकने वाला एक प्रकार का अंगरखा (दे० ७३३)। सौं = साथ। जमधर=एक प्रकार की कटार (दे० २७३, ३०१ ४०४)।

३१५. जमधर=एक प्रकार की कटार (दे० २७३, ३१४, ४०४)।

३१६. पानु=पीना। सांथरै = चटाई (दे० ७१७)। सचल = मैला-कुचैला (?)।

३१८. ढोवा=सैनिक एकत्रीकरण (दे० २५९, ३०२, ३२५, ४६६)। बसिठारौ = दूतत्व (दे० १५४)। नवि=नहीं। कुतवा=(ख़ुतबा) सम्राट् मानने की स्वीकारोक्ति।

३२०. रंथभौर देव=हम्मीर। लगु=पास।

३२१. छिडाइ=छुड़ाकर।

३२४. सैं=साथ ।

३२५. ढोवा = सैनिक एकत्रीकरण (दे० २५६, ३०२, ३१४, ४४६) ।

३२६. इताल = अभी । दौत=सवेरा (?) (दे० ३२६, ३३०, ४५१, ४८२, ४६१) ।

३२७. मलिक = सामान्य अमीर ।

३३०. दौत = सवेरा (दे० ३२६, ४५१, ४८२, ४६१) ।

३३१. खन=(क्षण) । सीयरो = (शीतल) ।

३३४. करकंटाई=(कर्कोटक) करायत साँप । नियान = (निदान) । कर-कंटकु=(कर्कोटक), करायत साँप ।

३३५. तूठौ=(तुष्ट) प्रसन्न ।

३३६. सुरखुरु=(सु.र्खरू) प्रशंसा का पात्र ।

३३८. कुमया = अकृपा ।

३३६. झंखत = दुःख या सोच करते ।

३४०. कनवृति=(कणवृत्ति) भिक्षावृत्ति ।

३४१. झवकौ=झपकी ।

३४३. भुनसारौ=सबेरा ।

३४४. रावर=(राजकुल) राजभवन (दे० ३८२, ४२६, ४५७) ।

३४५. उसारि = उखाड़ करके, खोल करके (दे० २८५) ।

३४६. तपा=तपस्वी । धूति = धूर्तता करके ।

३४८. भास=(भाषा) (दे० ५४२) । बिगोईं = बिगाड़ीं, पथभ्रष्ट कीं । तिरीचरित=(स्त्री-चरित्र) ।

३४६. कनै=(कनक) । पसाउ=(प्रसाद) उपहार (दे० २२७, ७४६) ।

३५०. करैउं=करूं ।

३५१. बीनयौ=बिनती की ।

३५२. सतु = सत, सतीत्व । जष्छिनी=(यक्षिणी) ।

३५५. पैज= (प्रतिज्ञा) । समुहाइ=सम्मुख आकर । मौपै=मुझसे । हूका= हूक, हृदय की पीड़ा । द्यावौं=दिलाऊँ ।

३५६. भगौहैं=भगवा वस्त्र । मसवासी=कल्पवासिनी, मास भर तक किसी तीर्थ में निवास करनेवाली स्त्री ।

३५७. सरिसु=से (दे० ३७३) ।

३५८. संभरि = सांभर ।

३५६. चुकवहिं=समाप्त करें, निपटावें। दुर्ग=दुर्गम। निवेसु=(निवेश) प्रवेश।

३६०. लीधइ=(लीन्हे) लिए हुए (दे० ३७६)।

३६१. भार=भारी। ढेँकुरी=एक प्रकार का युद्ध-यंत्र। जंत्र=मगरबी यंत्र, पत्थर फेंकने का काष्ठ का एक यंत्र।

३६२. कूरु=(क्रूर) बुरा (दे० ३७२)। बरि=बरु, मानो।

३६५. साहिबु=स्वामी।

३६६. सोर=(शोर)।

३६७. पिछानै=(पहिचानै)। धीठु=(धृष्ट)।

३६६. बंधु=बाँध, मर्यादा। पेट=पेट की बात, भेद।

३७०. मंत्रु=युक्ति। ब=अब (दे० ३८१)।

३७१. अलोक=अपलोक, मिथ्या कलंक (दे० ३०४)। अलोकी= अपलोकित) मिथ्या कलंक से कलंकित।

३७४. मनुहारि=अनुनय-विनय।

३७६. खल्याइ=खाली करके। पैजार=जूती।

३७७. खोल=ओढ़नी।

३७८. तरैया=पालकी या डोली के साथ उसके तले या नीचे चलने वाला अनुचर। सुखासनु=एक प्रकार की पालकी।

३७६. लीधी=लिया। (दे० ३५६)

३८०. भाइ=(भाव)।

३८१. ब=अब (दे० ३७०)।

३८२. रावर=(राजकुल) राजभवन। रंग=रंगस्थल।

३८३. अन अन=और-और, नाना (दे० ११३, ७०४)। अखारौ=अखाड़ा, नृत्य - संगीत - समाज। नाटारंभ=(नाट्यारंभ) नाट्यशाला (दे० १३६)। कलस=(कलश) मंदिर का ऊपरी भाग। तोरन=(तोरण) घर या नगर का बाहरी फाटक।

३८४. सोवन=(स्वर्ण) सोना।

३८५. ईस=(ईश) शिव।

३८६. मतंगुरे=हाथी। मैमंत (मदमत्त)।

३८७. ताजी=(ताज़ी) अरब देश का घोड़ा। तुरी=(तुरग) घोड़ा। तुखार=तुखारिस्तान (हिमालय के उत्तर-पश्चिम का एक देश) का

घोड़ा (दे० ६७) । सुहर = (सुभट) (दे० २७४) ।

३८६. साइरु = (सागर) (दे० ५६१) । उतंग = (उत्तुङ्ग) बहुत ऊँची । रावट = कसौटी का पत्थर । मुमानी = मोम जैसी चिकनाहट । रंग = रंग भवन । पेटा = मध्य भाग ।

३६०. मौजैं = लहरदार उठानें । पाट = विस्तार । पटाए = ढकते ।

३६२. गहिरवंतु = गंभीर व्यक्ति । पान = (पर्ण) पत्ते । न्यान = (ज्ञान) ।

३६३. निमसहिं = निवास करते हैं । कुलंग = एक प्रकार का पक्षी जिसका शरीर मटमैला, सिर लाल, और गर्दन लंबी होती है । क्रीलहिं = क्रीड़ा करते हैं ।

३६४. ढेक = लंबी चोंच और गर्दन वाला एक प्रकार का जल-पक्षी । मटामरे = एक प्रकार का जल-पक्षी (दे० ११५) । जलकुकरी = (जलकुक्कुटी) मुर्गाबी । आरि = एक प्रकार का जल-पक्षी (दे० ११५) । पारि = (पालि) सरोवर का बाँध (दे० २६३, ३६६, ४१८, ४२४, ४४२) ।

३६५. पुरइनि = कमल का पत्ता ।

३६६. फुलवादि = फुलवाड़ी (दे० ७५१) ।

३६८. त्रिपतई = (तृप्ति) ।

३६६. पारी = (पालि) सरोवर का बाँध (दे० २६३, ३६४, ४१८, ४२४, ४४२) ।

४०२. आसिष = (आशिस्) ईश्वरीय कृपा = ईश्वरीय देन । तिसौ = तैसा, वैसा ।

४०३. परसंग = (प्रसंग) । बनसी = बाँस की एक लंबी लग्गी जिसके द्वारा मछलियाँ फँसाई जाती हैं । साँट = बाँस की पतली कमची । पाट = रेशम । औसेरि = कष्ट में ।

४०४. तरिवन = (ताटंक) । जमधर = एक प्रकार की कटारी (दे० २७३, ३१४, ३१५) ।

४०५. चंग = सुंदर, अच्छे ।

४०६. मधुमणि = मधुरता की मणि (?) । नंक = नाक ।

४०७. कुरल = कुलेल ।

४०६. सचवै = सुखी होते हैं ।

४११. सबि = सभी ।

४१३. कोह = (क्रोध) ।
४१४. दिनियर = (दिनकर) ।
४१५. पिरि = पाले, वश में (दे० ४४६, ४४८) ।
४१७. उपकंठ = तट, किनारा ।
४१८. पारि = (पालि) सरोवर का बाँध (दे० २६३, ३६४, ३६६, ४२४, ४४२) ।
४१९. गोरा = गोली ।
४२०. चरच्यौ = भाँपा (दे० ४८१) । साहिबु = स्वामी, संभ्रांत व्यक्ति ।
४२१. पिछौंड़ी = पीछे की ओर ।
४२४. पारि = (पालि) सरोवर का बाँध (दे० २६३, ३६४, ३६६, ४१८, ४४२) ।
४२६. गहगह्यो = गद्‌गद्, प्रसन्न ।
४२८. किक्यान = घोड़ा (दे० ६४४) । बान = (वर्ण) (दे० १०४, ११२, १२४, १३६) । जिन्यौ = जीता है ।
४२६. सीझ्यौ = सिद्ध हुआ ।
४३०. अजुगुत = (अयुक्त) अनुचित । अंतु = मर्म ।
४३१. समाह = साधन-सामग्री ।
४३३. दापु = (दर्प) ।
४३८. कयाह = कालापन लिए पीला ।
४४२. षंषरि = गले का कफ (?) । दुरलभी = दुलहिन । पारि = (पालि) सीमा (दे० २६३, ३६४, ३६६, ४१८, ४२४) ।
४४३. सीरध = सिद्धि ।
४४४. अदग = बेदाग ।
४४६. दलपति = वह राजा जिसे सेना का बल विशेष हो । पिरि = पाले, वश में (दे० ४१५, ४४८) ।
४४७. को = कोई ।
४४८. पिरि = पाले, वश में (दे० ४१५, ४४६) ।
४५१. दौत = सवेरे (दे० ३२६, ३३०, ४८२, ४६१) ।
४५२. तरहौं = नीचे की ओर ।
४५५. जूठौ = झूठा ।

४५४. मुसाफु = धर्मग्रंथ ।

४५८, ४५०. रसाल = उपहार (दे० २५८) ।

४६१. जोगई = रक्षा की ।

४६८. पीठ = (पृष्ठ) ।

४७४. दूत्यौं = दूतत्व । ही = थी ।

४७५. ठयौ = ठाना ।

४७७. छुजै = छज्जे पर (दे० ४८६, ४९५) ।

४७८. समदाउ = प्रस्थान का सामान । कहलाउ = हलचल (दे० ४७८) ।

४८१. चरच्यौ = भाँपा (दे० ४२०) ।

४८३. दौत = सबेरे (दे० ३२६, ३३०, ४५१, ४९१) ।

४८५. मूचु = मुक्ति ।

४८६. उचकावहि = हटवावे, कूच करवावे । छाजै = छज्जे पर (दे० ४७७, ४९५) ।

४८७. लेसु = (लेश) थोड़ा (दे० ७२३) । प्रतिपारि = प्रतिपालन कर ।

४८८. कररिला = काला ।

४९०. पयाल = (पाताल) (दे० ५४४) । आपियौ = अर्पित किया । फनिंद = फणीन्द्र, शेष ।

४९१. दौत = सबेरे (दे० ३२६, ३३०, ४५१, ४८२) । पेस-पेसरी = (प्रेष्य) नौकर-चाकर ।

४९२. खूख = रिक्त स्थान ।

४९३. बदिरा = बंदे, सेवक (?) ।

४९४. परिगहीं = संग्रहाध्यक्ष (दे० २६२, ५०२) । मेलाण = ठहराव ।

४९५. छुजै = छज्जे पर (दे० ४७७, ४८६) । बाग = घोड़े की लगाम ।

४९६. ढोवा = सैनिक एकत्रीकरण (दे० ३०२, ३१८, ३२५) ।

४९७. बंग = (वक्र) । सुरंग = दुर्ग के भीतर छिपे-छिपे प्रविष्ट होने के लिए भूमि के नीचे-नीचे बनाया गया मार्ग । ठाठरी = सुरक्षा के लिए खड़ी की गई दीवालें । नालि = तुपकें । कंवाण = (कमान) तोप (दे० २०३) ।

४९८. खरहरहि = खरभर शब्द करके गिरता है । समुद = (समुद्र) ।

५००. जर = जटिल (?) । दांति = (दंतिन्) । भर = (भट) । असरार = निरंतर, अत्यधिक ।

५०१. आकाथ = व्यर्थ ।

५०२. परिगही = संग्रहाध्यक्ष (दे० ४६४) ।

५०५. तजिव = (तदिव) उसी प्रकार । सीह = (सिंह) । प्रतिहार = द्वारपाल ।

५०७. पहिली = आगे-आगे । बार = (बाला) ।

५०६. बिधि पूरब = (विधि-पूर्वक) ।

५११. दिष्या = (दीक्षा) ।

५१६. रयन = (रत्न) ।

५१८. क्रम = (कर्म) (दे० ६१६) ।

५२०. बंध = (बंधु) ।

५२२. ति = स्त्री ।

५२४. सुत्रधार = (सूत्रधार) राजगीर (दे० १०५) ।

५२६. बिगूती = बिगाड़ा (दे० ३४८) ।

५३०. संपरि = स्नान करके । सारि = अलग करके । भ्वैं = (भूमि) ।

५३१. हंस = प्राण । अख्खिर = (अक्षर) ।

५३५. ढोरि कै = ढुरका करके, नीचा करके ।

५४२. भास = भाषा (दे० ३४८) ।

५४४. सं = से । पयाल = (पाताल) (दे० ४६०) ।

५४६. मंझस्थलु = (मध्यस्थल) कटि । हरि = सिंह ।

५४८. संत = शांत (दे० ८८) ।

५५२. न्यौंध = बंधान, गुजारा ।

५५४. प्रवाह = भोजनादि आवश्यक सामग्री ।

५५७. जइ = (यदि) । बिह = (विधि) ।

५५६. चंद्रक्रांति = (चंद्रकांत) एक मूल्यवान पत्थर जिसके संबंध में प्रसिद्ध है कि वह चंद्रमा के प्रकाश में रक्खे जाने पर द्रवित होता है ।

५६०. कोपीन = (कौपीन) लँगोटी ।

५६१. साइर = (सागर) (दे० ७१, ३८६) ।

५६३. सिंगारु = (श्रृंगार) प्रेम ।

५६४. बिसाले = (विषाक्त) विषैले । सहारि = सहकार (आम) में । तार = ध्यान ।

५६५. विषइ = विष ही । विषइ = (विषय) ।

५६६. दाहिनी = प्रदक्षिणा । जात = (यात्रा) ।

५६८. मजलि = (मंजिल) ! काँठै = तट पर । कालिंद्री = (कालिन्दी) । नइ = (नदी) ।

५६६. घालि = डालकर ।

५७०. अंबु = जल ।

५७१. करस = (कलश) ।

५७२. माइ = माप । बरबट = बरबस ।

५७३. नौतम = (नवतम) ।

५७६. बिहि = (विधि) कर्म ।

५७७. जोग = योगी । चिकनिया = छैल ।

५७६. ब्यौरहिं = सुलझाती हैं । झार = (ज्वाला) ।

५८०. क्षुद्र घंटिका = करधन । नेउर = (नूपुर) ।

५८१. सधर = ऊपरका ओष्ठ (दे० १४०, १७४) ।

५८३. वींझौन = (विंध्यवन) । सावज = जंतु ।

५८४. ससोभित = (सुशोभित) । सफल = (सुफल) सुंदर फल ।

५८६. बंस = (वंशी), किंतु यहाँ आशय कदाचित् वीणा से है (दे० ६३५, ६४५, ६४६, ६६३) ।

५६०. साद = (शब्द) (दे० १६६, ५६६) । त्यागु = दान (दे० ५६३ ६३६, ६३८) ।

५६१. बगसे = बख्श दिए, प्रदान किए । रोझ = नीलगाय (दे० ६३४, ७२६) ।

५६२. नवग्रही = नवग्रह के वर्णों के नौ बहुमूल्य पत्थरों से जटित कलाई का एक आभूषण ।

५६४. लीन = गृहीता । इकसबदी = एक ही रट लगाने वाला ।

५६५. भरथ्थ = भरत, नाट्य शास्त्र के सुप्रसिद्ध आचार्य ।

५६६. जाणनहार के = जानने के, पहिचान के ।

५६८. नटवन = नर्तकों ने (दे० २०४) ।

५६६. साद = (शब्द) (दे० १६६, ५६०) । आइसु = (आदेश), नमस्कार (दे० ६२७) । जांपइ = कहता है (दे० ६१) । घाघरी = खोखली ध्वनि, खाली गला ।

६०२. निबंध = बंधन युक्त ।

६०६. जाण = ज्ञानी । सहिदान = चिन्ह ।

६०७. अस्सुपात = (अश्रुपात) ।

६०८. बिदुरे = (विदीर्ण) ।

६०६. मुगध = अज्ञ ।

६१२. तां लगि = उसी (इसी) लिए (दे० ६१३) । बाध्यौ = बढ़ा । असमान=(आसमान) ।

६१३. तां लगि = उसी (इसी) लिए (दे० ६१२) ।

६१४. मैन = (मदन) ।

६१५. निज = निश्चय ही ।

६१६. कलप = कलपना ।

६२१. सार = सभाचार, खबर ।

६२५. आइस = (आदेश) नमस्कार (दे० ५६६) ।

६२८. तइ = से । राल्यो = डाल दिया ।

६२६. तक्खिन = (तत्क्षण) ।

६३०. बुन्याद = (बुनियाद) वास्तविकता ।

६३१. न्यान = (ज्ञान) ।

६३३. भीना = भीगा हुआ ।

६३४. रोझ = नील गाय (दे० ५६१,७२६) ।

६३५. वंस = (वंशी) किंतु यहाँ आशय कदाचित् वीणा से है (दे० ५८६, ६४५, ६४६, ६६४) । भिष्यगु = (भिक्षुक) । को = कोई ।

६३६. त्याग = दान (दे० ५६०, ५६३, ६३८) ।

६३७. उल्हास = (उल्लास) (दे० ८४, ६६३, ७४४) ।

६४१. बीर = भाई ।

६४३. गजरु = प्रहर समाप्त होने पर कुछ देर तक अनवरत बजाया जानेवाला उसका सूचक घंटा ।

६४४. किक्यान = घोड़ा (दे० ४२८)।

६४५. बंसु = (वंशी), किंतु यहाँ आशय कदाचित् वीणा से है (दे० ५८६, ६३५, ६४६, ६६४)।

६४६. बिवान = (विमान) । बंसु = (वंशी) किंतु यहाँ पर आशय कदाचित् वीणा से है (दे० ५८६, ६३५, ६४५, ६६४) । आखरी=अक्खड़पन ।

६४९. जकी = विह्वित । थनथ्थूल = स्थूल स्तनों वाली ।

६५०. कांकही = कंघी । कौतिगु = (कौतुक) ।

६५१. सांकली = (श्रृंखला) गले की सँकड़ी ।

६५२. फूल = साँस का फूलना, घुटन ।

६५५. सुबन = सुनिर्मित (दे० १४१, १४३, १७७, १८४) ।

६५६. सिंगरी = सींग का बना एक बाजा । बाण = सारंगी के ढंग का एक बाजा । दुतारौ = (दोतारा) दो तारों का एक बाजा ।

६५७. बिचख्खिन = (विचक्षण) ।

६५९. सरमंडल, सरबीन (सरवीणा)—वाद्य विशेष के नाम हैं । मुरज = मृदंग की भाँति का एक वाद्य । मृदंग = ढोलक जैसा प्रसिद्ध वाद्य । पखावज = मृदंग जैसा एक वाद्य ।

६६०. कबीयण = (कविजन) ग्रंथकार नारायणदास के नाम के साथ प्रयुक्त विशेषण (दे० १२८. १४३, ५८२)।

६६१. संबर = साँभर, एक प्रकार का मृग ।

६६३. उल्हसी = (उल्लसित) (दे० ८४, ६३७, ७४४) ।

६६४. वंसु = (वंशी), किंतु यहाँ आशय कदाचित् वीणा से है (दे० ५८६, ६३५, ६४५, ६४६) ।

६६७. छोह = (क्षोभ) ।

६६८. चंप्यौ = धर दबाया । राह = (राहु) ।

६७४. पातिगु = (पातक) ।

६७५. पांच = (पञ्च) ।

६७७. अंकवारी = (अङ्क माल) भेंट (दे० ७५६) ।

६७८. खरूकै = खटकता है ।

६८०. परवानौ = (प्रमाण) ।

६८३. धनी = स्त्री ।

६८६. काइ = काया पर [की] ।

६८७. महुल = महल ।

६८८. आ = इस (दे० १५८) ।

६६२. पलिका = (पर्यंक) पलँग । बिरहाइ = अलग करके, समाप्त करके । कबि = (कवि) । कबि = (काव्य) ।

६६३. अनु = फिर (दे० ८३, १४१, २२०, ८३४) ।

६६४. ति = त्यौं ।

६६५. जौ = ज्यौं ।

६६६. रांक = (रंक) ।

६६७. सूरि = (सूर्य) । उग्रइइ = मुक्त हो ।

६६८. गइर महल = (ग़ैर महल) ।

७००. कसे = कैसे । बिरछे = विलास किया ।

७०१. अवसर = नृत्य-संगीतोत्सव (दे० ७०२, ७०५, ७०७, ७५०) । वइन = (वचन) ।

७०२. औसर = (अवसर) (दे० ७०१, ७०५, ७५०) । आइस = (आदेश) नमस्कार (दे० ५६६, ६२५) खिनु = (क्षण) ।

७०३. चंदुए = चँदोवे । अनु अनु = और ही और (दे० ११३, ३८३) ।

७०४. थै = से (राजस्थानी प्रभाव) ।

७०५. तइ = (तद्) । बरनी = वर्णवाली ।

७०७, ७०८. औसर = (अवसर) (दे० ७०१, ७०२, ७०७, ७०८, ७०६, ७५०, ७५४, ७३१ ।

७०६. उबिदि = उठाकर, समाप्त कर (दे० ७३१, ७२१) । औसर = (अवसर) (दे० ७०१, ७०२, ७०२, ७०५, ७०७, ७०८, ७५०, ७५४) । बराए=वितरित कराए । मिलान = ठहरने का स्थान, डेरा ।

७१०. मधुरी = मंद । कौंअर = (कोमल) । हरुए = हलके । जोल= (योग) योजना ।

७११. उवे = उठकर गए (?) (दे० ७०६, ७३१) ।

७१२. ह्यौ = हृदय में ।

७१३. रए = प्रसन्न हुए । नफरनि = दूतों ने । दौनइ = दूना ।

७१४. उरगाने = राजसेवक । तरतरे = तीव्र गतिवाले [वाहन] । अंतरि-वासइ = बीच में रुकते हुए ।

७१५. पठव्ये = भेजे हुए ।

७१६. पतिहा = पत्रवाह (दे० ८१) । सोइ = सो कर । साथरइ=चटाई पर (दे० ३१६) ।

७१७. इस = ऐसा ।

७१९. बलिवंड = बलवंत ।

७२०. गय = (गज) । गुणान = गुणीजन (?)

७२१. तीरी = (तुरग) घोड़े । हरीए = (हरित) घोड़ों की एक जाति । बरना = वर्ण के । करना = (कर्ण) ।

७२२. सेत (श्वेत), महुअ, सबज (सब्ज़ा), सनेही (सनेवी), सीराजी (शीराज़ी), सुगली, हाँसला—घोड़ों की विशिष्ट-जातियाँ है ।

७२३. सीह = सिंह, किंतु यहाँ आशय सिंधु से है [संभवतः सिंधु>सिंधु>सींहु>सीह] । लेस = (लेश) । स्वल्प (दे० ४८७) । करतर = (कच्चल), काया (कर्क ?), तुखार, जरदा (ज़रदा), नील, बोर तथा कयाह—घोड़ों की विशिष्ट जातियाँ हैं ।

७२४. भुथार, बोरु (बोरदुर ?), भांमर (भँवर ?)—घोड़ों की विशिष्ट जातियाँ । [घोड़ों की इन जातियों के वर्णन और उल्लेख १३वीं से १५वीं शताब्दी के संस्कृत के अनेक ग्रंथों में (दे० 'प्रेमी अभिनंदन ग्रंथ' पृ० ८१) तथा जायसी के 'पदमावत' (छंद ४६, ४९६ मेरे द्वारा संपादित संस्करण) में भी पाए जाते हैं ।]

७२५. गोट = समूह । थाई = वर्ष-वर्ष पर प्रसव करनेवाली घोड़ी । सिंघले = सिंहल के हाथी । सइन = सेना । आतम = (आत्म) अपने । गइण = (गजेन्द्र) बड़े हाथी ।

७२६. मइमत = (मदमत्त) । नई = (नइ) और । हथी = हस्ती । बानी = वर्ण (जाति) के ।

७२७. परस्थानौ = प्रस्थान । पातर = नर्तकियाँ । समदी = विदा होकर (दे० ७६, ९२, १६४, ७२८, ७५७) ।

७२८. समुदि = विदा किया (दे० ७६, ९२, १६४, ७२७, ७५७) ।

७२९. रोझ = नीलगाय । (दे० ५९१, ६३४) ।

७३०. मेल्हौ = छोड़ा।

७३१. मेलान = पड़ाव (दे० ७०६, ७११)। दोरा दौरी = दौड़ा दौड़ी [का खेल]। बगिमेल = बाग छोड़कर, बेलगाम (दे० २६७)।

७३२. जि = जिस प्रकार।

७३३. बागा = लंबा अंगरखा (दे० ३१४)।

७३४. उपरा ऊपर = चढ़ा-ऊपरी करके। गेलि = गैल (मार्ग) में। अनु = और दे० ८३, १४१, २३०, २६३)। दुए = दोनों।

७३५. तीरी = (स्त्री)। अनुवासा = (अनुवासित ?) सुवासित (?)।

७३६. तूटे = टूटे। गिरित = गिरते हुए।

७३७. जौ = ज्यौं। [उ] रगन=(उडुगण)।

७३८. सोर = सोलह। सहिदान = चिह्न। केकान = घोड़े।

७३६. चमकइ = चौंकती।

७४०. जाने = मानो। गुंठनि = अवगुंठन (घूंघट) में। वध = वधू ज = जिस प्रकार। अधिकानि = अधिक [सुंदर] प्रतीत हुए। आगइ थकी = आगे से।

७४१. गइल = कूरियों के बीच का वह भाग जिससे होकर गेंद के निकल जाने पर जीत-हार होती है। आगलि = आगे। सरी = गई।

७४२. कूह = कुहराम, हल्ला।

७४४. दौरवा = दौड़ने वाले, हरकारे। उपनौ = उत्पन्न हुआ। उल्हास = (दे० ८४, ६३७, ६६२)। समुद = प्रसन्नतापूर्वक। सइन = सेना।

७४५. घर सर = घर-घाट। आगइ हुंन = आगे होने, अगवानी करने। (दे० ७४६)।

७४६. सीकर = (शृंखला)। तोरण = प्रवेश-द्वार, बाहर का द्वार। बार= (द्वार)। घाट पाट = घाट-बाट।

७४७. दिन = नित्य।

७४६. पसाउ = (प्रसाद) भेंट (दे० २२७, ३४६)।

७५०. ओंसरे (अवसरे)=नृत्य-संगीतोत्सव में (दे० ७०१, ७०२, ७०५, ७०७, ७०८, ७०६, ७५४)।

७५१. गराज = गर्जन-तर्जन [के दृश्य]। फुलवाद = फुलवाड़ी (दे० ३६६)।

७५२. तार = (ताल) करताल।

७५३. दखित = देखते हुए।

७५४. अवसर = नृत्य-संगीतोत्सव (दे० ७०१, ७०२, ७०५, ७०७, ७०८, ७०६, ७५०)।

७५५. फरसे = स्पर्श किए (दे० २३२)। भाई = भाव।

७५६. अंकमाल = अँकवार (दे० ६७७)।

७५७. कन्हर = कृष्ण। समद्यौ = विदा किया (दे० ७६, ६२, १६४, ७२७, ७२८)।

७५८. असेस = (अशेष) समस्त।

७६१. नवतने = (नूतन) (दे० १०५)।

———